लगा, जैसे उन्होंने यह प्रश्न पूछकर अच्छा नहीं किया। वर्षकार ने विषादपूर्ण स्वर में कहा :

"मगध का भला होगा, तभी तो इस पापमय पुण्य को बटोरने का विषादमय आयोजन करना पड़ा है सेनापति ! अट्ठाईस वर्ष की अवधि व्यक्ति के जीवन में तो अर्थ रखती ही है, राष्ट्र के दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर देती है। आदरणीय भट्टिय पिछले अट्ठाईस वर्षों से चम्पारण्य में सघर्षरत हैं। किन्तु, वत्सराज उदयन के प्रताप से अंग का वचक राजा ब्रह्मदत्त अब भी जीवित है। अत:, अब ब्रह्मदत्त से पूर्व आदरणीय भट्टिय को ही नि:शस्त्र करना आवश्यक हो गया है। इसी में मगध का कल्याण है।···महाराज उदयन का स्कंधावार कहां है ?"

"अग की दक्षिणी सीमा पर, आचार्य !"

"तो उसे अवन्ति की सीमा पर भेजना होगा। अवन्तिराज प्रद्योत पांडुरोग से पीड़ित हैं। वैद्यराज कौमारभृत्य जीवक के ज्ञान का लाभ उठाना होगा।···अब तुम जाओ। महाराज से कह देना कि जीवक को प्रद्योत की चिकित्सा के लिए अवन्ति भेजने की व्यवस्था कर दें।"

"किंतु···।"

"किंतु-परंतु कुछ नहीं सेनापति सुनीथ ! मैं तुम्हारी आशका का अनुमान लगा सकता हूं। यहीं तुम भूल करते हो। मानता हूं कि प्रद्योत किसी मागध को देखना नहीं चाहते। किन्तु, जीवक एक मागध के रूप में नहीं, वैद्य और अतिथि के रूप में अवन्ति जायेंगे। जाओ और अंग पर अभियान के लिए प्रस्तुत रहो। आज्ञा मिलते ही प्रयाण-पटह का स्वर गूज उठे—यही मेरी इच्छा है।"

"आदरणीय भट्टिय के जीवित रहते क्या महाराज ऐसी आज्ञा देंगे ?"

"तब भट्टिय कदाचित् नहीं होंगे सेनापति ! देश के हित मे व्यक्ति का बलिदान होगा। महाराज आज्ञा ही नहीं देंगे, स्वयं प्रयाण भी करेंगे। अब तुम शीघ्रता से जाओ। देवदत्त के आने का समय हो गया। मैं नहीं चाहता कि हम लोगों को एकसाथ देखकर वह शंका या जिज्ञासा मे पड़े। इस धूर्त को उपयोगी बनाने में कई दिन लग गये। कुछ दिनों बाद तुम्हें

अंग की सीमा पर जाकर अंग-राज ब्रह्मदत्त के प्रति घृणा का प्रचार करने की व्यवस्था करनी है।"

"जैसी आज्ञा।"

सेनापति के प्रस्थान कर जाने के पश्चात् महामात्य गंभीर चिंतन में लीन हो गये। खंडहर में पूर्ववत् शांति व्याप्त हो गयी। बीच-बीच में वन्य जन्तुओं के चीत्कार गूंजते रहे। धूनी से अग्नि की लपटें उठती-गिरती रहीं। बाहर अखंड अंधकार घनीभूत बना रहा। दो घड़ी व्यतीत होने के बाद किसी की पदचाप सुनायी पड़ी। महामात्य ध्यानमग्न स्थिति में बैठे ही रहे।

प्रायः पंद्रह पल पश्चात् एक क्षीणकाय व्यक्ति महामात्य के समक्ष आकर खड़ा हो गया। उस व्यक्ति की छोटी-छोटी आंखें, छोटी किंतु नुकीली नाक, नाक के दोनों ओर उभरी हुई हड्डियां स्पष्ट कह रही थीं कि क्रूरता, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा, स्वार्थ और पशुता का भाव गृहस्थ और बौद्ध भिक्षु, दोनों को ही उपकृत कर सकता है। वह व्यक्ति अति सावधान प्रतीत होता था। महामात्य ने उसे देखते ही कहा :

"स्वागत है आर्य देवदत्त ! क्या समाचार है ?"

"सब कुशल है, आर्य ब्राह्मण ! ब्रह्मदत्त मेरी मुट्ठी में है।"

"तो आपको शीघ्र ही प्रस्थान कर देना है। तीर्थंकर वर्द्धमान चम्पारण्य में विराजमान हैं। भट्टिय नित्य-प्रति सायंकाल महावीर के प्रवचन सुनने जाते हैं। ब्रह्मदत्त को इस अवसर से···"

"मैं समझ गया आर्य ब्राह्मण ! किंतु, आपको अपना वचन तो स्मरण रहेगा न ? इस तथाकथित बुद्ध से प्रतिशोध लेकर ही मुझे शांति मिलेगी। इसने मुझे अपमानित किया, मुझे थू कहा।"

"निश्चय ही आपका उपदेश मगध का राजधर्म बनेगा। आप शास्ता बनेंगे और अजातशत्रु शासक। किंतु, आपको भी मेरी यह प्रतिज्ञा स्मरण रखनी है कि वैदेही-पुत्र अजातशत्रु को मगध के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करके ही मैं कोई अन्य कार्य आरंभ करूंगा।"

"हां, मुझे स्मरण है।"

"तो ठीक है। आप जायें और दायित्व को यथाशीघ्र संपन्न करें।"

"कदाचित् सात प्रहर भी न लगे महामात्य ! देवदत्त मनुष्य नहीं, विद्युत् है। साधारण व्यक्ति सिद्धार्थ के विरुद्ध खड़ा होने का साहस नहीं कर सकता।"

देवदत्त के चले जाने पर वर्षकार ने ताली बजायी। तत्क्षण, खंडहर के पीछे से पांच सैनिक निकल आये।

"अश्व प्रस्तुत करो।"

कुछ क्षण पश्चात् खडहर जनशून्य हो गया। धूनी की आग राख में सो गयी।

सूर्यास्त का समय था। चम्पारण्य से एक व्यक्ति निकला और अंग जनपद की सीमा से होकर आगे बढा। उस व्यक्ति की आयु पैंसठ-छियासठ वर्ष की होगी; किंतु, उसके अग-प्रत्यग के गठन से, उसकी चाल और उसके मुख-मडल से अपार शक्ति का स्रोत प्रस्फुटित होता-सा लग रहा था। वह मस्तक झुकाये, शातिपूर्वक, अनासक्त भाव से चला जा रहा था।

उस व्यक्ति के पीछे से चम्पारण्य से दो अश्वारोही निकले। दोनों ने आपस मे कुछ विचार-विमर्श किया और तब एक अश्वारोही नगर में, धवलगृह की ओर उड़ चला और दूसरा मद गति से उस अनासक्त व्यक्ति के पीछे चलता रहा।

वह अनासक्त व्यक्ति इन बातो से अनजान था। प्राय: पच्चीस रज्जु[1]

१. लगभग एक मील

के पश्चात्, अंग की सीमा में, एक कुंभकार का कुटीर था। कुटीर के बाहर कुछ दूर पर आम का एक वृक्ष था। उसी वृक्ष के नीचे कई श्रमण बैठे थे। पेड़ की जड के पास एक शिलाखंड था, जिस पर एक दीर्घकाय महापुरुष बैठे थे। उनका वर्ण स्वर्ण-सदृश, कांति-संपन्न निर्मल-गौर था। वे अपने दोनों पांव एकत्र कर, दोनों हाथ नीचे फैलाये एकाग्रचित्त हो बैठे थे। उनके मुखमंडल पर निस्पृह शारीरिक अनासक्ति और व्युत्सर्ग भाव, अपूर्व तितिक्षा और तपस्या, विस्मृतिपूर्ण आत्म-लवलीनता और धर्म-ध्यान-संपृक्त होकर अलौकिक रश्मियां बन प्रस्फुटित हो रहे थे। मौन ही जैसे संदेश था उनका।

वह व्यक्ति पास आकर खड़ा हो गया। महापुरुष ने दृष्टि उठाये बिना ही कहा :

"हे राजन् ! तुम्हें अभय है। जैसे तुम अभय की कामना करते हो, वैसे ही तुम भी अभयदाता बनो। इस अनित्य जीव-लोक में तुम हिंसा के प्रति क्यों आसक्त हो ?"

"कर्तव्य की प्रेरणा से भगवन् ! जो वचन दिया उससे विमुख होना वीरोचित कार्य नहीं होगा। यह हिंसा मैं अपने लिए नहीं, वीरता की परंपरा को निष्कलंकित रखने के लिए कर रहा हूं।"

"जो अबुद्ध हैं—परमार्थ को नहीं जानते और सम्यग्दर्शन से रहित हैं, ऐसे संसार में पूजे जानेवाले वीर पुरुषों का सांसारिक पराक्रम अशुद्ध है, और वह संसार-वृद्धि में सर्वशः सफल होता है।"

"आपका कथन सत्य है आशुप्रज्ञ ! किंतु, मेरा मन मुझे धिक्कारता है। मैंने इतने संग्राम जीते, और अब अंत में, जब अपने श्वसुर का प्रतिशोध लेने का समय आया तब मैं द्विधा से आक्रांत हो रहा हूं। इस तरह क्या मैं अपना लोक-परलोक नष्ट नहीं कर रहा हूं ?"

"नहीं राजन् ! यहीं तुम भ्रम में हो। दुर्जय संग्राम में सहस्र-सहस्र शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा एक अपनी आत्मा को जीतना ही सर्वोत्कृष्ट जय है। अपने-आपको जीतो। अपने-आपको जीतना ही वास्तव में दुर्जय है। अपनी आत्मा का दमन करने वाला इहलोक तथा परलोक में सुखी होता है। राजन् ! अपने हृदय के भीतर उत्पन्न विष-लता को, सर्व प्रकार

से छेदन कर, समूल उखाड़ फेंको। इस तरह विष-फल से मुक्त हो जाओगे। गंध, रस और स्पर्श को तुम जीत चुके। अब रूप, शब्द और भाव को भी पराजित करो। तभी द्वेष का हेतु दूर होगा। तभी वीतराग बनोगे।"

वह व्यक्ति महापुरुष की गम्भीर वाणी सुनकर विभोर हो उठा। उसे लगा, जैसे प्रकाश-पंथ प्रशस्त हो गया। उसने महापुरुष की तीन बार प्रदक्षिणा की और कहा :

"मुझे निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा हुई है, उसमें विश्वास हुआ है, रुचि हुई है। मैं आपके प्रवचन के अनुसार जीवन व्यतीत करने को प्रस्तुत हूं। आप कहते हैं वह सत्य है, असंदिग्ध है। मैं अपने सैनिकों को अपना निर्णय सुनाकर, कल चरणों में उपस्थित होऊंगा। मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा।"

इसके पश्चात् वह व्यक्ति शांत, स्थिर-चित्त हो चम्पारण्य की ओर लौट चला।

रात्रि का अंधकार घनीभूत हो चुका था। पथ एवं कर्मांत जन-शून्य हो गये थे। दूर, चम्पारण्य में हिंस्र पशुओं का गर्जन सुनायी पड़ रहा था। किंतु, वह व्यक्ति निर्भय, निरपेक्ष, निरहंकार होकर स्थिर गति से चला जा रहा था कि चम्पारण्य के पास पहुंच कर अचानक ही सैकड़ों अश्वारोही सैनिकों ने उसे घेर लिया। उस व्यक्ति ने सिर उठाकर देखा। सैनिकों के नायक से उसकी आंखें मिलीं। उल्का के प्रकाश में नायक की आंखें चमक रही थीं। उस अनासक्त, शान्त-चित्त व्यक्ति ने मुस्कराकर पूछा :

"क्या इच्छा है अंगराज ब्रह्मदत्त ?"

नायक और कोई नहीं, अगराज ब्रह्मदत्त ही था। उसने होंठ चबाते हुए कहा :

"इच्छा मेरी नहीं, तुम्हारी थी। यही अवसर है कि तुम अपने हृदय का कांटा निकाल सकते हो।"

"जो इच्छा थी, वह मिट चुकी राजन् ! जो राग-द्वेष से रहित होता है, जो काषाय रूपी बंधन से उन्मुक्त है, जो सर्वशः स्नेह-बंधनों को काट चुका, वह पाप-कर्मों को रोक, अपनी आत्मा में लगे हुए शल्य को समूलतः उखाड़ डालता है। ऐसा ही शास्ता ने कहा है। यही नियामक का प्रवचन है। और यही मेरी अनुभूति है।"

ब्रह्मदत्त इतनी बात सुनकर अट्टहास कर उठा। चम्पारण्य के सघन वृक्षों से टकराकर, अट्टहास की ध्वनि भयावह हो उठी। ब्रह्मदत्त का अश्व हिनहिना उठा। किंतु वह अनासक्त व्यक्ति मौन ही रहा। ब्रह्मदत्त अचानक गर्जन कर उठा :

"तुम्हारी धूर्त्तता मेरे सामने नहीं चलेगी, भट्टिय हेमजित ! अट्ठाईस वर्षों से तुमने मेरी प्रजा को संत्रस्त कर रक्खा है। किंतु, आज कोई न कोई निर्णय कर ही लेना है। यह मत सोचो कि तुम्हारे प्रवचन के छद्म और तथाकथित अनासक्त भाव के अभिनय से मैं प्रभावित हो जाऊंगा। सैनिको ! बन्दी बना लो इस दस्यु को।"

आज्ञा की देर थी। दो अश्वारोही आगे बढ़ कर अश्व से उतर पड़े और भट्टिय हेमजित की ओर बढ़े। तत्क्षण चम्पारण्य की ओर से दो बाण सनसनाते हुए आये और दोनों सैनिकों के वक्ष में घुस गये। बाण के साथ ही उद्घोष का स्पष्ट स्वर सुनायी पड़ा :

"सावधान ! यदि किसी सैनिक ने आर्य भट्टिय को बंदी बनाने का दुस्साहस किया तो उसकी मृत्यु निश्चित है। सावधान अंगराज ! अपने सभी सैनिकों के साथ पीछे लौट जाओ। तुम हमें नहीं देख रहे हो, किंतु हम तुम्हें देख रहे हैं।"

ब्रह्मदत्त और उसके सैनिकों ने चम्पारण्य के घनीभूत अंधकार में आंखें गड़ाकर देखा। सबके-सब भय से मूर्छित-से होने लगे। भट्टिय के पराक्रम से वे अनभिज्ञ नहीं थे। क्षण-भर वे सब किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े रहे कि चम्पारण्य से फिर उद्घोषणा हुई : "इधर क्या देखते हो ? हम सहज ही तुम सबका विनाश कर सकते हैं। किंतु, हमें ऐसी आज्ञा नहीं है। हमें विवश मत करो। पांच पल के भीतर यहां से भाग जाओ; अन्यथा हम युद्ध की घोषणा करेंगे।"

ब्रह्मदत्त के समक्ष और कोई मार्ग नहीं था। उसने सैनिकों को आदेश दिया। सभी सैनिक लौट चले। आर्य भट्टिय पूर्ववत स्थिर भाव से चम्पारण्य की ओर अग्रसर हुए। तभी चम्पारण्य से दो अश्वारोही बाहर आये और भट्टिय के पास पहुंचकर अश्व से उतर पड़े। भट्टिय ने मुस्कराकर कहा :

"मेरे तुच्छ प्राण बचाने के लिए तुम्हें मिथ्या भाषण करना पड़ा वरुणदत्त ! किंतु, इसकी आवश्यकता नहीं थी।"

"आप कहते क्या हैं आर्य ! आपके प्राण और तुच्छ !"

"हां बंधु ! सत्य ही कहता हूं। तुम दो ही थे। फिर भी तुमने ब्रह्मदत्त पर ऐसा प्रकट किया कि तुम सहस्त्रों हो। यह सब क्या है ? किंचित् सोचो तो कि हम अट्ठाईस वर्षों तक क्या करते रहे ? किसका हित किया ? नहीं वरुण ! देवी चन्द्रबाला ठीक ही कहती थीं। हम सभी भ्रम में थे, अंधकार में दौड़ रहे थे। असत्य के पीछे भागते-भागते हमारे साधन और साध्य, दोनों ही असत्य हो गये थे। कल प्रातःकाल मैं तीर्थंकर वर्द्धमान के चरणों में···।"

"आर्य !" वरुणदत्त चीत्कार कर उठा। किंतु, आर्य भट्टिय तब तक मुंह के बल भूमि पर गिर चुके थे। वरुणदत्त ने देखा, भट्टिय की पीठ के भीतर एक सपत्र बाण गहरा धंसा हुआ था और रक्त की धारा फूटकर बह रही थी। क्षण-भर के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। तभी दूर पर तूर्य-निनाद सुन पड़ा। एकसाथ कई उल्काए प्रज्वलित हो उठीं। 'अंगराज की जय' के निनाद से संपूर्ण चम्पारण्य दहल उठा। वरुणदत्त ने प्रत्युत्पन्नमति से काम लेकर भट्टिय हेमजित का शव अश्व पर लाद लिया। तब तक शत्रु के अश्वारोही निकट आ चुके थे। किंतु, घड़ी-भर में ही वरुणदत्त का कम्बोजी अश्व चम्पारण्य के अछोर आंचल में छिप गया।

गिरिव्रज में उत्साह की लहर दौड़ रही थी। जिसे देखो, वही प्रसन्नता और उमग में उन्मत्त हो नाचता फिर रहा था। राजपथ पर, वीथियों में, श्रेष्ठिचत्वरों में, सामंतों एवं राज्याधिकारियों के प्रासादों और श्रेष्ठियों की अट्टालिकाओं में नागरिकों की भीड़ उमड़ी पड़ रही थी। कहीं नृत्य हो रहा था, तो कही गान; कही दुर्लभ कापिशायिनी की धारा बह रही थी, तो कही मैरेय और प्रसन्ना की; कही लोग ऊंचे स्वरों मे बातें कर रहे थे, तो कहीं कानाफूसी; कहीं पुष्करिणियों मे जल-क्रीड़ाएं हो रही थीं, तो कहीं खुले नभ के नीचे इन्द्रजाल-विद्या का प्रदर्शन! कहने का अर्थ यह कि चतुर्दिक् उल्लास एवं उत्साह के वातावरण में नागरिकों का सहज सहयोग प्राण फूंक रहा था।

प्रसन्नता एवं उत्साह का कारण भी था। मगध के प्राण, गिरिव्रज के प्रियदर्शी, सुविख्यात अगदंकार कौमारभृत्य जीवक अवन्ति से सकुशल लौट आये थे। उनके सकुशल लौट आने की किसी को आशा नहीं थी। मगध के दुर्धर्ष शत्रु अवन्तिराज चण्डप्रद्योत के चंगुल से बच निकलने की आशा स्वयं जीवक को भी नहीं थी। और वे मात्र लौट ही नहीं आये थे, मगध और अवन्ति की अट्ठाईस वर्ष से चली आ रही शत्रुता की खाई को भी पाट आये थे। उन्होंने चण्डप्रद्योत के पाडुरोग का उपचार करके अपने गुण का चमत्कार तो प्रदर्शित कर ही दिया, साथ ही वत्स, अंग और वज्जि जनपदों की आकांक्षाओं पर पानी भी फेर दिया था; क्योकि अवन्ति और

मगध महाजनपद मित्र-संबंध में आबद्ध हो गये थे।

बाह्यास्थानमंडप में भव्य समारोह का आयोजन हो रहा था। दौवारिक नायकों को आदेश दे रहा था, नायक प्रतिहारी को और प्रतिहारी प्रहरी को। कर्मकरगण बाह्यास्थानमंडप को सजाने-संवारने में व्यस्त थे। सभ्यों के अतिरिक्त, आठ सहस्र ग्रामिकों एवं साधारण नागरिकों के बैठने का प्रबंध भी था। स्थानाभाव के कारण बाह्यास्थानमंडप के नीचे प्रांगण में परिवस्त्रा[1] तथा वितानक[2] लगा दिये गये थे।

यद्यपि दिन के प्रथम प्रहर के पश्चात् सभा आरंभ होने वाली थी, तथापि प्रात.काल से ही लोग एकत्र होने लगे थे। प्रथम प्रहर के आरंभ में ही वितानक एवं परिवस्त्रा खचाखच भर गये। इतने लोकप्रिय थे कुमार जीवक !

प्रथम प्रहर समाप्त होते-न होते बाह्यास्थानमंडप भी भर गया। सम्राट के पुत्र राजा दर्शक, अभय, अजातशत्रु, हल्ल और बेहल्ल तथा सामंत, श्रेणिय नेता, राज्याधिकारी, ग्रामिक एवं अमात्य गण मंचातिमंच आ विराजे। महामात्य वर्षकार के पधारते ही सभामंडप में शांति छा गयी। किंतु, वह शांति क्षण-भर के लिए ही रही। कौमारभृत्य जीवक के पधारते ही लोग उनका जयजयकार करने लगे। राजकर्मचारी लोगों को शांत रखने में सचेष्ट हो गये। तभी महाराज के पधारने की घोषणा हुई। लोगों ने श्रद्धा से देखा कि परम भट्टारक परम वैष्णव परम माहेश्वर सार्वभौम सम्राट् श्रेणिय कुल-गौरव भट्टिय हेमजित कुलावतंस परमपाद महाराज बिम्बिसार गौरवपूर्ण गति से सभामंडप में चले आ रहे हैं। उपस्थित लोग, अभ्यर्थना मे, आसन से उठ खड़े हुए। सभा में जैसे प्राणप्रतिष्ठा हो गयी। महाराज बिम्बिसार के आर्यपट्ट पर विराजते ही उपस्थित सभ्यगण भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गये।

सबसे पीछे एक व्यक्ति बैठा था, जिसने अपनी पूरी देह और सिर कंबल में छिपा रक्खा था। उस रहस्यमय व्यक्ति की छोटी-छोटी आंखें अजातशत्रु पर लगी थीं।

महामात्य वर्षकार ने महाराज की अनुमति पाकर उपस्थित सभ्यों

---

१. कनात २. शामियाना

को संबोधित किया :

"उपस्थित सभ्यगण जानते हैं कि मगध तथा अवन्ति की शत्रुता अट्ठाईस वर्षों से चली आ रही थी। उस शत्रुता को दूर करने के कोटि-कोटि प्रयत्न विफल हुए। मगध को इससे बहुत हानि भी पहुंची। किंतु, प्रसन्नता की बात है, कि विख्यात वैद्य कौमारभृत्य जीवक के साहस, विवेक और विद्या के प्रभाव से आज मगध और अवन्ति मित्रता के सूत्र में आबद्ध हो गये हैं। और आज हम इसीलिए यहां एकत्र हुए हैं कि इस महान कार्य के लिए महाराज प्रशस्ति-पत्र एवं आशीर्वचन देकर कुमार जीवक को गौरवान्वित करें। मैं मगध-प्रजा, ग्रामिकों एवं सभ्यों की ओर से महाराज से अनुरोध करता हूं कि वे इस पुनीत कार्य को संपन्न करें।"

इतना कहकर वर्षकार बैठने ही जा रहे थे कि पीछे से कोलाहल का स्वर सुनायी पड़ा, और तभी एक गंभीर विषादपूर्ण वाणी संपूर्ण सभा-मंडप में गूंज उठी :

"ठहरो, आयुष्मान् महामात्य !"

सभी लोग आगंतुक का महामात्य के प्रति व्यक्त संबोधन सुनकर चौंक उठे। आगंतुक सैनिक वेश में था। उसकी आयु प्रायः साठ-बासठ वर्ष की होगी। उसके बायें कंधे पर एक शव पड़ा था, जिसकी पीठ में बाण चुभा हुआ था। यह दृश्य देखकर लोग कांप उठे। क्षण-भर में सभा-मंडप का उल्लसित वातावरण परिवर्तित हो गया। अब वहां भय, जिज्ञासा, क्षोभ आदि की प्रतिक्रिया संतरण करने लगी।

मात्र वह रहस्यमय व्यक्ति स्थिर भाव से अजातशत्रु को देखता रहा। इस नये विस्फोट का उस रहस्यमय व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

महाराज बिम्बिसार ने किंचित् कौतूहल एवं रोष से पूछा :

"कौन हो तुम ? सभा में इस तरह विघ्न उपस्थित करने का अनुपयुक्त अधिकार किस प्रकार प्राप्त कर लिया ? क्या तुम्हें राजसभा का शिष्टाचार नहीं मालूम ?"

आगंतुक व्यक्ति ने मगधपति के उपेक्षापूर्ण क्रुद्ध स्वर पर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया। वह पूर्ववत् उदासीन, किंतु दृढ़ स्वर में बोला :

"मैं कौन हूं, इसका उत्तर आपको आयुष्मान् महामात्य वर्षकार देंगे। राजन् ! संकटकाल में मर्यादा या शिष्टाचार की अपेक्षा नहीं होती। जीवन-पर्यंत जिसका साथ देने का व्रत लिया था, आज उसका शव मेरे कंधे पर है, और अब आपको इस शव का बोझ उठाना है। धर्म की ऐसी ही मर्यादा है।"

बिम्बिसार ने वर्षकार की ओर देखा और किंचित् कौतूहलपूर्ण गांभीर्य से पूछा :

"किंतु, यह शव है किसका और···।"

"यह शव उस प्रतापी व्यक्ति का है, जिसने बार्हद्रथ वंश के अंतिम दुराचारी राजा रिपुंजय और उसके स्वार्थ-लोलुप महामात्य पुलिकसेन का विनाश करके मगध को मुक्त किया। यह शव उस महापुरुष का है, जिसने मगध को आपके जैसा पराक्रमी राजा··· !"

"पिताश्री का ?" बिम्बिसार बीच ही में अधीरता से बोल उठे और आर्यपट्ट से उतरकर आगंतुक के पास दौड़ते हुए जा पहुंचे : "किसने इनकी ऐसी दशा की ?"

तब तक बहुत-से राजकर्मचारी दौड़कर वहां आ पहुंचे। शव को वहीं एक ऊंचे काष्ठासन पर रख दिया गया। महाराज बिम्बिसार अपने पिता भट्टिय हेमजित की ऐसी दशा देखकर क्रोध से पागल हो उठे। उनकी आंखों से चिनगारियां बरसने लगीं। वर्षकार ने भट्टिय की पीठ में चुभा हुआ बाण निकाल लिया था। उस बाण को वर्षकार के हाथों से लेते हुए बिम्बिसार ने अपना प्रश्न दुहराया : "कौन है वह धृष्ट पातकी ?"

"जिसका वध करने का आपने वचन लिया था।" आगंतुक ने कहा।

बिम्बिसार ने अधीर होकर कहा :

"पहेलियां न बुझाओ, योद्धा ! यदि मैंने वचन नहीं भी लिया होगा, तो अब लेता हूं। इस भरी सभा में मृत पिता के शव की सौगन्ध खाता हूं कि यदि इसी बाण से उस हत्यारे का वध न किया, तो अन्न-जल त्याग कर प्राण दे दूंगा।"

आगंतुक योद्धा की आंखों से अश्रुधारा उमड़ पड़ी, जिसे रोकते हुए

वह बोला :

"जब आप पांच वर्ष के बालक थे और अपने माता-पिता के साथ चम्पारण्य में वनवासी बने हुए थे, तभी ब्रह्मदत्त ने अपने भ्राता और आपके नाना महाराज दधिवाहन की छद्म से हत्या कर दी और अंग के आर्यपट्ट पर अधिकार कर लिया। उस समय भट्टिय ने प्रण किया था कि वे ब्रह्मदत्त का संहार करके अपने श्वसुर की हत्या का प्रतिशोध लेंगे। और तब आपने अपनी तोतली वाणी में प्रण किया था कि·· "

"मुझे स्मरण है, योद्धा ! भली भांति स्मरण है।···महामात्य ! अंग पर अभियान करने का प्रबंध कीजिए !" मगधपति चीख उठे।

"इसमें समय लगेगा महाराज !" महामात्य वर्षकार ने स्थिर एवं निरपेक्ष भाव से निवेदन किया। महाराज ने किंचित् उग्र स्वर में प्रश्न किया :

"क्यों ?"

"परिस्थिति के अनुकूल होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"—महामात्य ने पूर्ववत् स्वर में कहा। महाराज बिम्बिसार प्रतिशोध की ज्वाला में घुट रहे थे। तड़पकर बोले :

"हम परिस्थिति को बदल देंगे, महामात्य ! आप प्रबंध कीजिए।"

"अभी प्रबंध नहीं हो सकता।"

"महामात्य ! मैं मगधपति बिम्बिसार आपको आदेश देता हूं। पूर्णिमा तक अभियान का प्रबंध हो जाना चाहिए। दस दिन का समय आपके लिए पर्याप्त है।"

"मगध की प्रजा के नाते वर्षकार आपके आदेश को स्वीकार करता है। किंतु···।"

"किंतु क्या ?"

"मंत्रि-परिषद् में महामात्य के नाते मुझे आपके आदेश पर विचार करना होगा। अंग आपके अधीन नहीं है। उसे अधीनस्थ करना है। इसके लिए प्रजा को बलि देनी होगी, संपूर्ण मगध को प्रस्तुत करना होगा। इतना बड़ा निर्णय करने के पूर्व परिषद्, ग्रामणी एवं सभा की स्वीकृति आवश्यक होगी।"

आपादमस्तक कंबल में आच्छन्न उस रहस्यमय व्यक्ति ने वर्षकार को देखा। उसकी आंखों में घृणा का भाव चमक रहा था। भाग-दौड़ में उसके सिर पर से कंबल हट गया। वह रहस्यमय व्यक्ति और कोई नहीं, देवदत्त था। देवदत्त ने शीघ्रतापूर्वक अपना सिर पुनः ढंक लिया।

आगंतुक योद्धा ने वर्षकार की ओर गर्व से भर कर देखा और महाराज से कहा :

"आयुष्मान् महामात्य का कथन उचित है महाराज ! यह अभियान किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं है, देश के विरुद्ध है। अतएव, आपको अपने देश के राजकर्त्रियों, सभ्यों आदि का परामर्श ले ही लेना चाहिए।"

महाराज बिम्बिसार चिंता में डूब गये। वे उद्विग्न होकर वहीं चक्कर काटने लगे। तभी वर्षकार ने निवेदन किया :

"मैं महाराज की व्यथा का अनुभव करता हूं। महाराज विश्वास रक्खें, आदरणीय भट्टिय का प्रतिशोध निश्चय ही लिया जायेगा।"

"अच्छी बात है, महामात्य ! एक प्रहर पश्चात् आप मुझसे मंत्रणा-गृह में मिलिए। पिताश्री के अंतिम संस्कार की व्यवस्था कीजिए। और··· और योद्धा ! आप कौन हैं ?"

"मेरे पिता महावीर वरुणदत्त !"—योद्धा बोले-बोले तब तक वर्षकार ने विनम्रतापूर्वक महाराज के प्रश्न का उत्तर दे दिया। संपूर्ण सभा में हलके कोलाहल की लहर दौड़ गयी। महाराज के नेत्रों में विस्मृति की गौरवपूर्ण आभा संतरित कर उठी। उल्लास एवं उत्साह की उद्दाम लहरें परिस्थिति के कगारों से टकराने लगीं।

देवदत्त फिर भी अजातशत्रु को ही देखता रहा और भयावह योजनाएं बनाता रहा।

क्षण-भर मौन रहकर बिम्बिसार ने वरुणदत्त से कहा :

"मैं आपका अभिनंदन करता हूं। आपके पराक्रम एवं पिताश्री के प्रति आपकी अखंड श्रद्धा से मैं अपरिचित नहीं हूं। आपके त्याग तथा तप को मागध जन अपना आदर्श मानकर सदा स्मरण करेंगे।···महामात्य ! इनके आवास की राज्योचित व्यवस्था की जाये।"

इसके पश्चात् सभा भंग हो गयी। देवदत्त अजातशत्रु की ओर

बढ़ा, किंतु अजातशत्रु तब तक प्रस्थान कर चुका था।
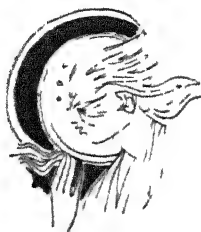
तीन प्रहर रात्रि बीत चुकी थी। धवलगृह के चारों ओर प्रहरी-गण सन्नद्ध थे। तभी एक व्यक्ति धवलगृह के कमल-वन से बाहर निकला और गृह-दीर्घिका के सहारे ऊपर चला। वह व्यक्ति भीत, शंकालु और सावधान था। उसने अपनी संपूर्ण देह आच्छादनक मे छिपा रक्खी थी। उस समय गृह-दीर्घिका पर कोई प्रहरी न था। अतएव, उस व्यक्ति को ऊपर पहुचने मे कही बाधा नही पहुची। वह ऊपर पहुचकर सीधे वासगृह के पार्श्व के प्रकोष्ठ मे जा पहुचा। उक्त प्रकोष्ठ मे कोई नही था। वह व्यक्ति वहां रक्खी मजूषा मे से सावधानीपूर्वक कुछ निकालने ही लगा था कि पीछे से किसी ने धीमे मे स्वर कहा :

"मगध के भावी सम्राट् को मात्र मौक्तिकमाल चुराने के लिए चौर्य-मार्ग का अवलब लेना शोभा नही देता !"

वह व्यक्ति इस अप्रत्याशित हस्तक्षेप से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसने घबराकर नवागंतुक को देखा, जो पात्र-चीवर धारण किये कोई बौद्ध भिक्षु-सा दीखता था। उस व्यक्ति ने टूटते स्वर मे पूछा :

"तु···तु···तुम···आप कौन हैं ?"

"मैं अर्हंत् सम्यक्-सम्बुद्ध हूं। वैसे, मेरा नाम देवदत्त है। युवराज अजातशत्रु ! तुम्हारा कल्याण करने के निमित्त ही मैं अपने दिव्य बल से यहा आ पहुचा हूं। यह अट्ठारह सेर का मौक्तिकमाल अलभ्य होते हुए

भी तुम्हारे लिए मिट्टी है।"

युवराज अजातशत्रु ने अनिच्छापूर्वक मौक्तिकमाल को मंजूषा में रख दिया और कहा :

"आपका कथन उचित ही है शास्ता ! किंतु, महाराज का प्रसाद हल्ल और वेहल्ल को प्राप्त है। मुझे सूचना मिली है कि वे इस मौक्तिक-माल को…"

"हल्ल और वेहल्ल को दे देना चाहते हैं। यही तो कहना चाहते हो कुमार ?"

"जी हां !"

"कोई चिंता नहीं। जब तुम मगध के सम्राट् बनोगे तब यहां की सभी संपत्ति तुम्हारी होगी—यह मौक्तिकमाल भी।"

"किंतु, मैं तो कुमार दर्शक और कुमार अभय से छोटा हूं।"

"तो क्या हुआ ? तुम्हारा पुरुषार्थ, तुम्हारी शक्ति और तुम्हारा साहस बड़ा है। इसके अतिरिक्त, तुम्हें मेरा प्रसाद प्राप्त है। तुमने देखा नहीं कि दुर्धर्ष प्रहरियों एवं प्रतिहारियों से रक्षित इस धवलगृह में मैं अनायास ही प्रवेश पा गया। तुम्हें मेरी दिव्य शक्ति पर आस्था रखनी चाहिए।"

"आस्था है, तभी तो आपको शास्ता कहता हूं। मैं तो आपके दिव्य चमत्कार से सहसा भयभीत हो गया।"—अजातशत्रु ने विनम्रतापूर्वक कहा : "तो मुझे क्या करना होगा ?"

देवदत्त ने चारों ओर देखकर धीमे स्वर में पूछा :

"महत्वाकांक्षा की किस सीमा तक जाना चाहते हो ?"

"वह तो असीम है, शास्ता !"

"फिर तो किसी सीमा तक जाने में तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी ? अपनी महत्वाकांक्षा की अग्नि में तुम अपनी संपूर्ण मर्यादा झोंक देने को प्रस्तुत हो ?"

"प्रस्तुत हूं। भंते !"

"फिर मेरे आदेश का अक्षरशः पालन करना होगा।"

"उसके लिए भी प्रस्तुत हूं। किंतु…"

"किंतु क्या ?"

"महामात्य वर्षकार की आज्ञा से आपके आदेश का संघर्ष न हो। वे मेरे आचार्य हैं और भाग्य-नियंता भी। उनके समक्ष जाते ही मेरी वाणी मूक हो जाती है, मेरा तेज विलुप्त हो जाता है। और मेरी महत्वाकांक्षा का उद्वेलन समाप्त हो जाता है।"

"यह तुम्हारा भ्रम है कुमार ! वर्षकार महामात्य हो सकते हैं— भाग्य-नियंता नहीं। फिर भी कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी सीमाओं को स्वीकार करता हूं। किंतु, एक वचन देना होगा।"

"आज्ञा।"

"दिग्विजय में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा और धर्म-विजय में तुम मेरी सहायता करोगे।"

"मैं समझा नहीं !"

"तुम्हारी राह में बाधक तुम्हारे भाई और पिता हैं। मेरी राह में गौतम, जो अपने को बुद्ध कहता है। हम दोनों एक-दूसरे के बाधक को दूर करने में एक-दूसरे के सहायक बनें।"

"मैं वचन देता हूं, शास्ता ! महाराज ने अपने बड़े पुत्र दर्शक को मगध का राजा बना रक्खा है, और कहीं मैं विद्रोह न कर दूं, इसलिए मुझे नगर के शासन-प्रबंध में सम्मिलित कर लिया गया है। गौतम बुद्ध को मैं गिरिव्रज छोड़ने पर विवश कर दूंगा।"

"तो ठीक है। मैं चलता हूं। कल से, मैं जहां रहता हूं, वहां आकर परामर्श ले लिया करो।"

देवदत्त वहां से चल पड़ा। देवदत्त को भगवान बुद्ध के भाई और प्रिय शिष्य के रूप में सभी जानते-पहचानते थे। अतएव, उसे धवलगृह से बाहर जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। मगधपति बिम्बिसार के राज्य में भिक्षुओं पर कोई प्रतिबंध नहीं था।

अजातशत्रु विचारों के झंझावात झेलता हुआ अपने प्रासाद में चला आया। वह देवदत्त के चमत्कार को देखकर अभिभूत हो चुका था। और तब उसकी महत्वाकांक्षा की अग्नि और भी प्रज्वलित हो उठी।

प्रातःकाल होते ही वह रथ पर चढ़कर सैनिक सज-धज के साथ

देवदत्त के पास पहुंचा और विचार-विमर्श करके पुनः प्रासाद में लौट आया। अजातशत्रु पर देवदत्त की माया इतनी सघन रूप में छा गयी कि वह नित्य ही सायं-प्रातः पांच सौ रथों के साथ देवदत्त के उपस्थान को जाने लगा।

मगध की पूर्वी सीमा के पास अंग में मद्य की एक दूकान थी, जिसका स्वामी सूर्यास्त होते ही मद्य बेचने में व्यस्त हो जाता था। सार्थवाह, दस्यु, योद्धा, सामंत, आटविक आदि विभिन्न प्रकार के लोग वहा एकत्र होते, मद्य पीते, हो-हल्ला मचाते और चल देते। निकट ही दो निषद्याएं थीं, जिनमें कभी-कभी कुछ यात्री रात्रि व्यतीत करने के लिए ठहर जाते थे।

उस दिन सायंकाल होते ही एक व्यक्ति निषद्या से निकलकर मद्य की दूकान पर पहुंचा और पीने बैठ गया। कितने व्यक्ति आये, मद्य पीकर उनमें से अधिकांश चले भी गये। किंतु, वह व्यक्ति पीता ही रहा। एक प्रहर रात्रि बीत चली। आनेवालों की संख्या घटती गयी; निरंतर पीते रहने वालों की संख्या बढ़ती गयी। भीड़ कम हो गयी, किंतु हो-हल्ला बढ़ गया। उस व्यक्ति ने पार्श्व में बैठे भद्र पुरुष से पूछा :

"आप अंग के नागरिक हैं क्या ?"

"निस्संदेह !" उस भद्र पुरुष ने अहंकार से भरकर कहा। मद्य पीते-पीते उसकी आंखें लाल हो आयी थीं। मद्य का प्रभाव उसके स्वर और मस्तिष्क पर स्पष्ट हो आया था। क्षण-भर रुककर उसने अपनी बात जारी रखते हुए पूछा : "क्या मैं अंग का नागरिक नहीं दीखता ? ऐं···?" उस

व्यक्ति ने छूटते ही उत्तर दिया :

"क्यो नही, क्यों नही। आप साक्षात् अंगनिवासी-से दीखते है।"

"अंगनिवासी-से नही, साक्षात् अंगनिवासी !"

"हां-हां, वही। किंतु…"

"किंतु क्या ?"

"आप पराक्रमी क्षत्रिय दीखते हैं। इसीलिए, किंचित् शंका हुई थी।"

"हां, मैं क्षत्रिय भी हूं और पराक्रमी भी। किंतु, इसमें शंका की क्या बात है ?"

"मैंने सुना कि अंग में पराक्रमी क्षत्रिय नहीं बसते।"

इतनी बात सुनते ही नागरिक क्रोध से आग हो उठा। तमककर खड़ा हो गया और खड्ग खीचता हुआ गरज उठा :

"सावधान ! उठा अपना शस्त्र और देख ले अंग का पराक्रम !"

वह व्यक्ति स्थिर बैठा-बैठा मद्य की चुस्की लेते हुए बोला :

"आप तो व्यर्थ रुष्ट हुए जाते हैं, पराक्रमी ! राज्य में आये हुए निर्दोष यात्री पर खड्ग उठाना यदि पराक्रम है, तो उपस्थित है मेरा मस्तक। इसका विच्छेद करके अपना पराक्रम सिद्ध कर लीजिए। किंतु, फिर भी मैं जो-कुछ कहूंगा, सत्य ही कहूंगा।"

तब तक वहा एकत्र सभी लोग, कौतूहलवश, उन दोनों के निकट आकर खड़े हो गये थे। दूकान का स्वामी ऐसी घटनाओं से अभ्यस्त हो चुका था। मद्य की वह दूकान दस्युओं, आटविको और योद्धाओं के संघर्ष-स्थल के रूप में कुख्यात थी। अतएव, दूकान का स्वामी चुपचाप कार्षापण गिनने में लगा रहा। अंगवासियों के प्रति यात्री के विचार सुनकर वहां जितने भी अंगवासी थे, सभी क्रोध से पागल हो उठे। एक ने कहा :

"इस दुष्ट का सिर काट लो।"

किसी ने कहा : "इसकी बोटियां काटकर श्वान को खिला दो।"

किसी ने कहा : "नहीं ! इसे बन्दी बनाकर महाराज ब्रह्मदत्त की सेवा मे ले चलो।"

तब एक व्यक्ति, जो ब्राह्मण दीखता था और कुछ ही देर पहले दूकान में प्रविष्ट हुआ था, बोल उठा :

"आप लोग पहले इसकी पूरी बात तो सुन लीजिए !" उपस्थित लोगों ने हां में हां मिलायी। उस पराक्रमी अंगवासी ने कहा :

"हां-हां, बोल ! तूने क्यों ऐसा आरोप लगाया ?"

उस व्यक्ति पर क्रुद्ध भीड़ के गर्जन-तर्जन का जैसे कोई प्रभाव नहीं पड़ा हो, ऐसा उसकी मुद्रा से आभास मिल रहा था। उसने चषक की मदिरा कंठ के नीचे उंड़ेलते हुए कहा :

"देवता-तुल्य अग्रज को छल से मारकर उसकी पुत्री और दौहित्र को वनवास देनेवाला व्यक्ति जिस राज्य में पूजित हो, उस राज्य के नागरिक को आप क्या कहेंगे ?"

"कदर्य ! मृत ! ! पुंसत्वहीन ! ! !"—सभी एक साथ चिल्ला उठे।

"फिर आप लोग मेरा शिरोच्छेद करने को क्यों कहते हैं ? मेरा अपराध ? जो कुछ आप लोगों ने अभी कहा उसकी तुलना में मेरा आरोप तो नगण्य है।"

"किंतु, ऐसा पूज्य व्यक्ति अंग में कौन है ?" कई व्यक्ति एकसाथ पूछ बैठे। वह व्यक्ति पूर्ववत निश्चिंतता से बोला :

"अंगराज ब्रह्मदत्त !"

"क्या कहा ?" सब लोग एकसाथ चिल्ला उठे।

"वही जो आपने सुना।"

"सुनी-सुनायी बातों पर हम अंगवासी विश्वास नहीं करते।"—दो-तीन अंगवासी एकसाथ बोल उठे। यात्री ने चषक की मदिरा मुंह में उंड़े-लते हुए कहा :

"वश चले तो मैं भी विश्वास नहीं करूं। किन्तु, क्या करूं ? ऐसे पवित्र मुख से यह अपवित्र बात सुनी है कि अविश्वास करने का पाप नहीं कर सकता।" यात्री की बात सुनकर वह पराक्रमी व्यक्ति, जो निश्चय ही योद्धा था, गरज उठा :

"कौन है वह पवित्र मुख ? उस मुख को मैं···"

"सावधान, योद्धा !" योद्धा की बात बीच में ही काटता हुआ वह यात्री चषक फेंककर उठ खड़ा हुआ—"उस पवित्र मुख के प्रति अभद्र शब्द का प्रयोग मत करना, अन्यथा···"

"अन्यथा क्या ?"—योद्धा ने गरज कर पूछा।

यात्री ने अपना खड्ग खींचते हुए कहा : "अन्यथा मागध का पराक्रम तुम्हारा विनाश करके ही तृप्त होगा।"

योद्धा अट्टहास कर उठा। किंतु, उसके अट्टहास में उसकी दुर्बलता ध्वनित हो उठी। वह अपना खड्ग हवा में उछालता हुआ बोला :

"तो हो जाय दो-दो हाथ।"

"मैं प्रस्तुत हूं योद्धा ! किंतु, निरपराध पर मैं शस्त्र नहीं उठाता।"

"यह क्यों नहीं कहते कि मृत्यु से डर लगता है।"

"मृत्यु से नहीं योद्धा, अकारण ही कलंक का टीका न लग जाय, इस बात से भय खाता हूं।"

"किंतु, आप लोगों में वाद-विवाद जिस विषय को लेकर है, वह विषय तो पीछे छूट गया। वह पवित्र मुख कौन-सा है, यह तो इस यात्री ने बताया ही नहीं।" ब्राह्मण ने मध्यस्थता करते हुए कहा।

दो-तीन व्यक्ति एकसाथ बोल उठे :

"हां-हां, यह तो बताया ही नहीं कि वह पवित्र मुख कौन है ?"

यात्री ने खड्ग म्यान में रखते हुए कहा :

"वे हैं अंग की गौरव और मगध की जननी। आप लोग उनका नाम सुनते ही नतमस्तक हो जायेंगे।"

"स्पष्ट क्यों नहीं कहते, यात्री !" ब्राह्मण ने अनुरोध के स्वर में कहा।

यात्री ने कहा : "उनका नाम है भिक्षुणी चन्द्रबाला—आपके अंग देश के स्वर्गीय महाराज दधिवाहन की सुपुत्री और तीर्थंकर महावीर की प्रथम शिष्या।"

"वे ऐसा मिथ्या भाषण कभी कर ही नहीं सकतीं। तुम व्यर्थ ही उन पर लांछन लगा रहे हो।" योद्धा ने कहा। यात्री क्षण-भर उस योद्धा की ओर देखता रहा और बोला :

"हाथ-कंगन को आरसी क्या ? लगभग पच्चीस रज्जु पर ही तो वे ठहरी हुई हैं।"

"तो चलो अभी…!" उस योद्धा ने द्वार की ओर हाथ से संकेत करते हुए कहा। यात्री प्रस्तुत हो गया।

कुछ ही क्षणों में उस यात्री के साथ बहुत-से अंगवासी देवी चन्द्रबाला के उपस्थान की ओर चल पड़े।

चम्पा नगरी में विक्षोभ की लहर उठ रही थी। अधिकांश दूकानें बंद पड़ी थी। श्रेष्ठि-चत्वर में भीड़ तो थी, किंतु व्यापार के नाम पर वहां गोष्ठियां चल रही थीं। आक्रोशपूर्ण वार्तालाप चल रहा था।

जिस चम्पा नगरी में सायंकाल होते ही उल्लास छा जाता था, जहां मैरेय एवं कापिशायिनी की धारा बहने लगती थी, जो रंग-बिरंगे परिधानों मे सजे-सवरे सामन्तों से खिल उठती थी, वही चम्पा नगरी आज विषाद में डूबी हुई थी। व्यापारीगण क्रोध से उबल रहे थे। गृहपतियों की भृकुटियां चढी हुई थी।

प्रतिदिन राजकोष रिक्त होने की सूचना मिलती, प्रतिदिन नये-नये कर लगाने की घोषणा होती; किंतु, प्रजा-रंजन के निमित्त राजा ब्रह्मदत्त कोई योजना नही बनाता। ब्रह्मदत्त को सैन्य सगठन और अपने विलास से अवकाश ही नही मिलता कि वह प्रजा की चिंता करे।

कर के बोझ से नागरिक तिलमिला उठे थे, व्यापारियो ने अपना व्यापार प्राय: बंद कर दिया था। फलस्वरूप सपूर्ण अंग जनपद की दशा शोचनीय हो उठी थी।

सैनिक उद्दंड हो रहे थे और प्रजा संत्रस्त। राजा ब्रह्मदत्त ने शासन-व्यवस्थ के परपरागत नियमों को तिलांजलि दे दी थी। परिषद् या सभा का चिह्न तक मिट गया था।

इसी बीच मागध यात्री ने अंग के कुछ सामंतों एवं योद्धाओं के सम्मुख देवी चन्द्रबाला से कुछ ऐसी बाते स्वीकार करवा ली कि संपूर्ण अग ज्वालामुखी बन गया ।

यद्यपि महाराज दधिवाहन का देहांत हुए कई वर्ष बीत चुके थे, तथापि जब अंगवासियों ने सुना कि युद्ध के समय वत्सराज सतानिक ने महाराज को नही मारा, बल्कि उनका हत्यारा स्वयं ब्रह्मदत्त है, और जब अगवासियों ने सुना कि राजसिहासन हड़पने के लिए उसने अपने भाई को तो मारा ही, भाई की बेटी की हत्या करवाने का भी षड्यंत्र रचा, तब अगवासी घृणा एवं क्रोध के अतिरेक से उन्मत्त हो उठे।

सायंकाल के समय प्रतापी सामंत सुमन के प्रासाद के भीतरी कक्ष मे मंत्रणा चल रही थी। कक्ष के बाहर द्वार पर दो विश्वासपात्र प्रहरी सन्नद्ध थे। कक्ष मे कुल तीन व्यक्ति विराजमान थे; स्वयं सामंत सुमन, मगध के प्रख्यात सेनापति सुनीथ और बौद्ध भिक्षु देवदत्त। सामंत सुमन कह रहे थे : "वह सब तो ठीक है। किंतु, ऐसी स्थिति में मेरा सहयोग आपको नही मिल सकता, आर्य सेनापति ! मैं राष्ट्र से द्रोह नही कर सकता।"

सेनापति सुनीथ ने गंभीर स्वर में कहा :

"आप सहयोग न दें, यह दूसरी बात है। किंतु, मेरा यह निश्चित मत है कि महाराज बिम्बिसार के साथ सहयोग करके आप राष्ट्र से द्रोह नहीं करेंगे। आपका राजा ब्रह्मदत्त पातकी है। इसने वत्सराज सतानिक को अंग पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। क्यों ? क्या देश का हित करने के लिए ? और जब सतानिक चम्पा को ध्वस्त करके भी महाराज दधिवाहन को पराजित नहीं कर सके और अपने देश वत्स को लौट गये, तब इस नराधम ने छल से अपने बड़े भाई महाराज दधिवाहन की हत्या कर दी और अंग का राजसिहासन हथिया लिया। दधिवाहन देव की बेटी चन्द्रबाला को पथ की भिखारिन बनने पर विवश कर दिया। क्या

इस पर भी ब्रह्मदत्त हर्यंक कुल के आर्यपट्ट पर बैठने योग्य है ? क्या इसकी सेवा एवं अनुशासन में रहना वीरोचित धर्म है ?"

सामंत सुमन एक लंबी सांस खींचकर क्षण-भर मौन रहे, फिर बोले :

"मैं आपसे सहमत हूं, आर्य सेनापति ! इस पातकी राजा की सेवा करना गौरव की बात नहीं है। बल्कि, अधर्म है। किंतु, इसमें अंग का क्या दोष है कि इसके विरुद्ध विद्रोह करूं ?"

"कौन कहता है कि आप अंग के विरुद्ध विद्रोह करें ? मैं तो ब्रह्मदत्त को दंड देने की बात कह रहा हूं। निस्संदेह, आप हमारा साथ न देकर अंग के साथ विद्रोह करेंगे।"

"वह कैसे ?"

"क्योंकि तब ब्रह्मदत्त हमारा सामना करेगा। ब्रह्मदत्त के साथ होंगे आप, अंग की प्रजा और अंग के सैनिक। हमें फिर आपके विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ेगा। और इस तरह अंग को हानि पहुंचेगी।"

"उससे क्या ? देश तो कलंकित न होगा।"

"क्यों, ब्रह्मदत्त के राजा बने रहने से क्या आपके देश अंग का गौरव बढ़ गया है ? देश वास्तव में है क्या ?"

"प्रजा ही देश है। उसकी संस्कृति, धर्म, भाषा और उसकी भावनाएं ही देश के सूक्ष्म रूप हैं।"

"तो क्या शेष जम्बूद्वीप की संस्कृति से आपके अंग की संस्कृति भिन्न है ?"

"नहीं।"

"फिर आप अपने देश को ब्रह्मदत्त की कुत्सित मनोवृत्तियों के घेरे में क्यों सीमित कर देना चाहते हैं ? ये सोलह महाजनपद वास्तव में एक ही देश के विभिन्न खंड हैं। इस देश की सीमाएं हिमवत और समुद्र हैं, चम्पा नदी या गंगा नहीं। आज नहीं तो कल, ये सभी कृत्रिम सीमाएं ढह जायेंगी। पातकी राजाओं ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए ही ये कृत्रिम सीमाएं खड़ी कर रक्खी हैं।"

"आपका विचार सत्य होते हुए भी सर्वमान्य नहीं है आर्य सेनापति !"

"सत्य को अमान्य कर देने से वह मिथ्या नहीं हो जाता।"

"मैं लाचार हूं, सेनापति?"

"तुम लाचार नहीं, मोहांध हो?" भिक्षु देवदत्त, जो अब तक चुप बैठा था, बोला: "और जो मोहांध होते हैं, वे ही अधर्म में लिप्त होते है। मुझे देखो। मैं किस देश का हूं? तथागत किस देश के हैं? सारिपुत्र और मौद्गल्यायन किस देश के है? हमारे संघ में कोई शाक्य है तो कोई मागध, कोई कोशलीय है तो कोई तक्षशिलीय। फिर भी हम अनुशासनबद्ध हैं। तुम क्या सोचते हो कि हमारा संघ गौरवविहीन है?"

'नहीं भंते, मैं ऐसा सोचने का पाप नहीं कर सकता।"

"फिर तुमने देश-देश की रट क्यों लगा रक्खी है? देश तो कई हैं। एक देश तुम्हारा परिवार है, दूसरा देश अंग है, तीसरा देश जम्बूद्वीप है और चौथा देश हमारा संघ है। ज्यों-ज्यों तुम्हारा मोह फटता जायेगा, एक से दूसरे देश में प्रवेश पाते चले जाओगे।"

"अच्छी बात है भंते, मैं आप लोगों के प्रस्ताव पर विचार करूंगा। किंतु, अब इतना निश्चित जानिए कि यदि मैं सहयोग न दूंगा तो विरोध भी नहीं करूंगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।" मगध-सेनापति सुनीथ ने कहा: "आवश्यकता या अवसर आने पर फिर मिलूंगा।"

इसके पश्चात् सेनापति सुनीथ और भिक्षु देवदत्त वहां से चल दिये। सामंत सुमन वहीं बैठे विचार में डूबे रहे। उन्हें समय का ज्ञान भी नहीं रहा कि तभी प्रहरी ने आकर निवेदन किया:

"धवलगृह में महाराज ने आपको स्मरण किया है।"

सामंत सुमन चौंक उठे। रात्रि उतर आयी थी। ऐसे असमय में महाराज ने क्यों बुलाया? सुमन किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके। नीचे अलिंद में अश्व प्रस्तुत करने का आदेश देकर वे वस्त्र-शस्त्र धारण करने के लिए उठ खड़े हुए।

सामंत सुमन के यहां से विदा लेकर सेनापति सुनीथ निषद्या की ओर चल पड़े, जहां उन्हें दो दिनों तक विश्राम करना था, और भिक्षु देवदत्त चम्पा के धवलगृह की ओर चल पड़ा। मगध महामात्य वर्षकार की योजनानुसार देवदत्त को उसी रात ब्रह्मदत्त से मिल लेना था।

भिक्षु देवदत्त को धवलगृह में प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। कारण, सभी प्रहरी एवं प्रतिहारी जानते थे कि देवदत्त को राजा ब्रह्मदत्त गुरु एवं पूज्य के रूप में मानते हैं।

मुखशाला में ही ब्रह्मदत्त ने देवदत्त का स्वागत किया :

"पधारिए शास्ता ! कैसे कष्ट किया ?"

"तुम्हें सावधान करने आया हूं, राजन् ! यह सामंत सुमन मगध के कृतघ्न कुलीन बिम्बिसार से मिलकर तुम्हारा आर्यपट्ट तुमसे छीन लेना चाहता है।"

"यह आप कहते क्या हैं भंते ! सामंत सुमन तो राज्य के अनन्य सेवक हैं, मेरे विश्वासपात्र हैं, अंग के कुबेर और शत्रुओं के लिए यम हैं।"

"अब यह तुम्हारे लिए यम बन गया है। विश्वास न हो तो परीक्षा कर देखो।"

"मुझे आप पर विश्वास न होगा तो और किस पर होगा ? किन्तु परीक्षा किस प्रकार ली जाय ?"

" ऐसा करो, यहां से मेरे प्रस्थान कर जाने के बाद उसे अपनी सेवा

में आमंत्रित करो और उससे पूछो कि मगध-सेनापति सुनीथ का उसने अपने प्रासाद में क्यों स्वागत किया। और इस अपराध के लिए उसे बीस सहस्र कार्षापण दड भरने की आज्ञा दो। यदि वह तुम्हारा अनन्य भक्त होगा तो दंड भरने में रंचमात्र भी आनाकानी नहीं करेगा।"

"किंतु, क्या यह सच है कि मगध-सेनापति उसके घर गया था।"

"हां, मैंने अपनी आंखों से देखा है। उसी से पूछ लेना।"

"अच्छी बात है। मैं उसके प्रासाद की ईंट-ईंट निकलवा लूंगा। बीस सहस्र कार्षापण का दंड भर देना उसके लिए बायें हाथ का खेल है।"

"नहीं, तुम्हें ऐसा नहीं करना है ? जो दंड मैंने कहा है, वही दंड देना है। हां, उसे हतोत्साहित करने के लिए भली भांति अपमानित करते रहना। राजसभा में उसे पदच्युत करके निम्न कोटि का आसन देना। किंतु, सावधान! किसी पर यह बात प्रकट न हो कि तुम उसे किस अपराध के लिए दंड दे रहे हो।"

"ऐसा ही होगा, भन्ते !"

"अच्छा, तो मैं चलता हूं।"

भिक्षु देवदत्त के प्रस्थान करते ही राजा ब्रह्मदत्त ने सामंत सुमन के यहां दूत भेज दिया। कुछ ही काल पश्चात् सामत सुमन आ उपस्थित हुए। ब्रह्मदत्त ने उन्हें बैठने को आसन भी नहीं दिया। सुमन को यह असाधारण स्थिति असह्य लगी। फिर भी वे शात-चित्त खड़े रहे। ब्रह्मदत्त ने अपने पर संयम रखते हुए पूछा :

"क्यों सामंत सुमन! अपने अपार वैभव से आपको संतोष नहीं हुआ, जो देश और राजा से द्रोह करके दूसरे के सत्व पर अधिकार करना चाहते हैं ?"

"मैं आपका तात्पर्य नहीं समझ सका महाराज !" सुमन ने आश्चर्य-चकित होकर प्रश्न करने के स्वर में पूछा। ब्रह्मदत्त का क्रोध उभरता आ रहा था। फिर भी उसने संयत स्वर में कहा :

"आश्चर्य है, सामंत सुमन ! इतने बड़े राज्य को उलटने का षड्यंत्र रचने वाले मस्तिष्क में एक छोटी-सी बात अपना अर्थ ढूढ़ रही है !"

"महाराज ! राज्य तो राजा का प्रताप क्षीण होने पर उलटा करते

हैं। षड्यंत्र तो निमित्त-मात्र होता है। किंतु, मैं इन बातों से किस प्रकार संबद्ध कर दिया गया, यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

"और आपकी समझ में यह बात आ गयी कि मेरा प्रताप क्षीण हो रहा है!"

"जब आप पूछते हैं तब कहना ही पड़ेगा कि 'हां'। क्योंकि आप जानते हैं कि मैं मिथ्या-भाषण को सबसे बड़ा पाप समझता हूं।"

ब्रह्मदत्त गरज उठा : "सामंत सुमन! आप भी भली भांति जानते हैं कि मैं आपको एक पल में मिटा सकता हूं।"

ब्रह्मदत्त की यह बात सुनकर सामंत सुमन क्रोध से भर उठे, किंतु, संयत स्वर में बोले :

"मैं सामंत हूं और आप राजा। निश्चय ही आप मुझे एक पल में मिटा सकते हैं। किंतु, जहां कहीं भी अन्याय के चरण पड़ते हैं, वहीं विद्रोह के ज्वालामुखी का सृजन हो जाता है। और उसे मिटा सकना आपके लिए संभव नहीं होगा।"

"जब चम्पा में ज्वालामुखी आग उगल रहा था, तभी मेरा उदय हुआ था सामंत! ज्वालामुखियों से खेलना मेरी दिनचर्या बन गया है। किंतु, आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया?"

"आपका प्रश्न प्रच्छन्न है।"

"और आप अपना षड्यंत्र भी तो प्रच्छन्न रखना चाहते हैं।"

"मैंने कोई षड्यंत्र नही किया।"

"क्या मगध-सेनापति सुनीथ आपके यहां···"

"हां, आये थे।"

"तो क्या यह षड्यंत्र नहीं हुआ?"

"आतिथ्य करना षड्यंत्र नहीं है।"

"यह षड्यंत्र है सामंत! तुमने अंग के साथ द्रोह किया है। तुम्हें इसका दंड भरना होगा।"

राजा ब्रह्मदत्त के मुंह से 'तुम' संबोधन सुनकर सामंत सुमन क्रोधातिरेक से उन्मत्त हो उठे। किंतु, विवेक ने उन्हें संयमित रक्खा। उन्होंने शांत स्वर में प्रतिवाद किया :

"मुझे अपमानित करने से आपको कोई लाभ नहीं होगा राजन् ! मैं जीवनपर्यंत अंग की सेवा करने का अभ्यस्त हो गया हूं । ऐसी परिस्थिति मत उत्पन्न कीजिए कि मुझे अपने किये पर पश्चात्ताप करना पड़े ।"

"तुम्हारी सेवाओं का ध्यान रखकर ही तुम्हें साधारण दंड दिया जाना है। कल प्रात.काल बाह्यास्थानमंडप में उपस्थित होकर सभासदों के सम्मुख तुम्हें अपनी भूल स्वीकार करनी होगी और बीस सहस्र कार्षापण दंड भरना होगा ।"

"यह अन्याय है।"

"मैं कुछ नही सुनना चाहता। अब तुम जा सकते हो ।"

"किंतु…"

"मैंने कहा कि तुम जा सकते हो। प्रतिहारी !"

ब्रह्मदत्त की कर्कश पुकार प्रतिहारी तक पहुंची ही थी कि सामंत सुमन वहां से प्रस्थान कर गये। वे अभी किसी अशोभन घटना का दायित्व नही लेना चाहते थे ।

प्रतिहारी आ पहुचा।

"नायक रुद्रभद्र को बुलाओ।"

"जो आज्ञा !"

कुछ ही क्षण पश्चात् नायक रुद्रभद्र आ उपस्थित हुआ। ब्रह्मदत्त ने आज्ञा दी :

"सामंत सुमन के प्रासाद के चारों ओर गुप्तचर नियुक्त कर दो। यदि सामंत अंग की सीमा से बाहर जाने का प्रयत्न करे तो उसे बंदी बना लो। आवश्यकता पड़ने पर उसके प्राण लेने में भी संकोच मत करना।"

नायक इस अकल्पनीय आदेश को सुनकर स्तंभित रह गया।

ब्रह्मदत्त चीख उठा : "जाओ !"

नायक की चेतना लौट आयी। वह घबराकर वहां से चल पड़ा।

पूर्णमासी का चांद मध्याकाश में पहुंच चुका था । फाल्गुनी हवा के हलके झोंकों में लता-द्रुम झूम रहे थे। यदा-कदा किसी पक्षी का स्वर वातावरण को चौंका देता था और फिर चारों ओर निस्तब्धता व्याप जाती थी। गिरिव्रज की नगरवधू सालवती के एकशालिक के द्वार पर महाराज बिम्बिसार के अंगरक्षक सन्नद्ध थे। वहीं पर दो रथ भी खड़े थे।

एकशालिक के भीतर, पुष्करिणी के तट पर संगमर्मर का चबूतरा बना हुआ था, जिस पर महाराज बिम्बिसार बैठे थे और उनकी गोद में बैठी थी अपूर्व सुंदरी नगरवधू सालवती। दोनों ही मौन थे। तभी अचानक सालवती महाराज की गोद से हटकर बैठ गयी। महाराज ने किंचित् आश्चर्य से मुस्कराते हुए पूछा :

"क्या बात है, प्रिये !"

"एक छोटा-सा निवेदन है महाराज !"

"मगध की अनन्य सुंदरी, समस्त जनपद के उन्माद की प्रेरणा, वैशाली की अम्बपाली के प्रदीप्त सौंदर्य को भी म्लान कर देनेवाली चिर-यौवना सालवती एक छोटा-सा निवेदन करे, आश्चर्य है !"

"मेरा निवेदन तो मेरे लिए जीवन-मरण का प्रश्न है महाराज ! मैं तो इसे आपकी दृष्टि में छोटा बता रही थी।"

"तो आदेश करो सुमुखि ! तुम्हारे जीवन-मरण के प्रश्न का उत्तर यदि साम्राज्य त्यागने से भी मिले तो मैं प्रस्तुत हूं।"

"इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो।"

"पहले आप वचन दें।"

"क्या तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं है ?"

"है ! तभी तो वचन प्राप्त करना चाहती हूं।"

"एवमस्तु !"

"महाराज ! आज से बीस वर्ष पूर्व मैं मां बन गयी थी।"

"हैं !"

"हां, महाराज ! आपको स्मरण होगा, मैंने कुछ मास तक आपके दर्शन नहीं किये थे। अस्वस्थ होने का कारण बता दिया था, किंतु वास्तव में उन दिनों मेरी कोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।"

"फिर !"

"वह पुत्र मुझे वापस चाहिए।"

"किंतु, तुम्हारा पुत्र है कहां ?"

"वह आपके संरक्षण में है।"

"कौन है वह ? उसका नाम ?"

"यह मैं नहीं जानती। मैं उसे देखकर पहचान भी नहीं सकती।"

"फिर मैं कैसे पहचान सकता हूं ? मैं तो इस तथ्य से भी अपरिचित था। तुमसे किसने कहा कि वह बालक मेरे संरक्षण मे है ?"

"जिसने मुझे मेरे पुत्र से विलग कर दिया।"

"कौन है वह क्रूरात्मा ?"

"महामात्य वर्षकार !"

"वर्षकार !"

"हां, महाराज ! उन्होने मुझसे कहा कि गर्भवती स्त्री में पुरुषों को कोई आकर्षण नहीं रह जाता। महाराज भी इसके अपवाद नही हैं। यदि तुम चाहती हो कि महाराज फिर से अम्बपाली के प्रेम-पाश में न बंधे और तुम्हारे ही प्रेमी बने रहें तो अपना गर्भ गुप्त ही रक्खो।"

"फिर !"

"मैंने अस्वस्थता का कारण बताकर सबसे मिलना-जुलना बंद कर

दिया। मुझे एक पुत्र हुआ···छोटा-सा, फूल की तरह सुंदर, ओस की तरह सुकुमार, उगते सूर्य की तरह दीप्तिमान और···और मैं अपने लाल को हृदय से लगा भी नहीं सकी कि आर्य वर्षकार उसे आपके संरक्षण में ले गये।"

"वर्षकार मेरे संरक्षण में ले गये !"

"हां।"

"किंतु, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम। तुमने यह बात आज तक छिपा क्यों रक्खी ?"

"आर्य वर्षकार का ऐसा ही आदेश था।"

"तो क्या अब वर्षकार ने इस रहस्य को प्रकट करने का आदेश तुम्हें दे दिया है ?"

"नहीं। किंतु, अब मेरी क्रूरता में प्राण नहीं हैं। इसीलिए आपसे आज भिक्षा मांग रही हूं।"

महाराज बिम्बिसार विचार में डूब गये। एकशालिक के सुरम्य, सुन्दर, सुवासित वातावरण से दूर महाराज का मन गिरिव्रज नगर में भटकने लगा।··· 'वर्षकार कहां होंगे !···अपने प्रासाद में !···मंत्रणा-गृह में ! ···किसी निषद्या में !···जहां भी होंगे, मगध के उत्कर्ष की चिंता में गतिशील होंगे।···किंतु मगध, सालवती की गोद सूनी करके मगध को क्या प्राप्त होगा ?···इसमें क्या रहस्य है ?'—महाराज सोचते रहे। सालवती व्यग्र हो उठी :

"किस विचार में पड़ गये प्रभो ! क्या मेरा निवेदन बहुत भारी पड़ गया ?"

"नहीं प्रिये ! मैं इस छोटी-सी घटना का अर्थ नहीं समझ पाया। आर्य वर्षकार अकारण ही कोई काम नहीं करते। उनका प्रत्येक प्रयत्न मगध की सुदृढ़ता में एक ईंट जोड़ने के बराबर है। किंतु···अच्छी बात है। मैं अपना वचन पूरा करूंगा।"

"एक अनुरोध और।"

"कहो।"

"मेरी पुत्री अनुला किसी भयंकर रोग से पीड़ित है। बहुत-से वैद्योंने

उपचार किये, शत सहस्र कार्षापण व्यय कर दिये। फिर भी मेरी अनुला को कोई लाभ नहीं हुआ। अतएव…"

"राजवैद्य कौमारभृत्य जीवक को आदेश दूं कि यह अनुला का उपचार करे। यही कहना चाहती हो न ?"

"हां प्रभो ! पुत्री के बचने की आशा नहीं रही, फिर भी अंतिम प्रयत्न कर लेना चाहती हूं।"

"कल ही भेज दूंगा।"

सालवती आश्वस्त हुई। वह फिर महाराज की गोद में लुढ़क गयी। मदिरा के कई स्वर्ण-पात्र वहां इधर-उधर लुढ़के पड़े थे। पुष्करिणी का जल हलका-हलका उद्वेलित हो रहा था और उस पर चांदनी थिरक रही थी। …सालवती सोच रही थी…कोई विशेष बात नहीं…उसके विचार में क्रमबद्धता नहीं थी।…उसने पैंतीस वसंत देख लिये थे…अब उसकी पुत्री अनुला ने भी पंद्रह वसन्त देख लिए हैं…'अनुला…अरे ! महामात्य वर्षकार ने अनुला को राज्य-संरक्षण में क्यों नहीं लिया…अनुला को जन्म देने के पूर्व भी तो मैं गर्भवती हुई थी…उस समय भी तो पुरुषों ने मुझे देखा था…महाराज ने देखा था…हां, अनुला जब गर्भ में आयी, उसके पांचवें, छठे और सातवें महीने वर्षकार एक वैद्य को ले आया करते थे !… उस वैद्य ने मेरी परीक्षा ली थी।…सातवें महीने के बाद न वर्षकार आये और न वैद्य !… क्यों !…अंतिम बार मेरी परीक्षा करके वैद्य मुस्कराया था।…क्यों ?…और यह अनुला ?…किसकी है ?…आर्य कुमार दर्शक मेरे पास आया करते थे…आह !…कितनी शांति मिलती थी उनके सहवास में…कितने आनंदमय थे वे दिन ?…और अभी मैं आर्य कुमार दर्शक के पिता महाराज बिम्बिसार की गोद में पड़ी हूं… निस्स्नेह !"

चंद्रमा पश्चिम में ढलने लगा। लता-द्रुमों की छाया लंबी होकर स्वच्छ धवल वातावरण पर भी छाया का आभास देने लगी। महाराज जैसे नींद से चौंकते हुए बोले :

"अब चलना चाहिए।"

"क्यों ? अभी तो ब्राह्म मुहूर्त भी नहीं हुआ।"

"कल प्रातःकाल ही कुछ आवश्यक कार्य संपन्न करने हैं।"

सालवती ने कातर दृष्टि से महाराज की ओर देखा। उस दृष्टि में विरह-व्यथा के अतिरिक्त असहाय होने का भाव उद्दाम हो रहा था, किंतु, पलकें निष्कम्प थीं। महाराज के मन में हुआ कि उनके विछोह की वेदना ही सालवती की आंखों में तैर रही है। अतएव, वे अधीर होकर बोले—"हम लोग फिर मिलेंगे सालवी ? शीघ्र मिलेंगे।"

सालवती को महाराज का भ्रम कल्याणकारी लगा। किंचित् दुखी होकर बोली :

"महाराज को मुझ अकिंचन की सुधि आयेगी तब न ?"

"ऐसा मत कहो सालवी ! मेरी पांच सौ प्रजावतियां हैं, एक-से-एक रूपवती, एक-से-एक आकर्षक ! किंतु, मेरा मन तो तुम्हारे ही अनुभावों में लिपटा रहता है।"

"मन तो क्षण का बिम्ब है···वह भी सूक्ष्म ! क्षण बदलता है तो मन का बदल जाना भी स्वाभाविक है।"

"यदि क्षण का अर्थ बीस वर्ष है, तो तुम्हें अपने विश्लेषण पर दुखी नहीं होना चाहिए।"

"वार्तालाप में महाराज से कोई जीता है, जो मैं जीतूंगी ?"

दोनों के थकित हास से लता-द्रुम कांप गये। हंसी की गूंज अभी कांप ही रही थी कि महाराज ने ताली बजायी। सालवती की परिचारिका, पार्श्व के द्रुम-वितान से निकलकर वहां आ उपस्थित हुई। महाराज ने आदेश दिया :

"हम लोग प्रस्थान करेंगे। रथ प्रस्तुत करो।"

"जो आज्ञा !"—कहकर परिचारिका द्वार की ओर दौड़ गयी।

एकशालिक में हलचल मच गयी। कुछ ही देर में महाराज का रथ धवलगृह की ओर दौड़ा जा रहा था।

सालवती को किंचित् आश्चर्य हुआ। अनुला की चिकित्सा के लिए जीवक को सालवती के यहा भेजकर महाराज बिम्बिसार अन्तर्धान हो गये। कई दिन बीत गये। सालवती महाराज की प्रतीक्षा ही करती रह गयी। ऐसा कभी नही हुआ कि महाराज ने वचन देकर पूरा न किया हो। सालवती को असीम वेदना सालती रही। 'कही उसका पुत्र इस लोक से···' और इसके आगे वह सोच नही पाती थी; उसकी आखो के आगे अधेरा छा जाता था।

जीवक के स्वागत मे सालवती ने कोई उत्साह नही दिखाया। कारण, अनुला की चिकित्सा कराते-कराते वह निराश हो चुकी थी। किंतु, जीवक असाधारण वैद्य था। उसने अनुला के रोग को पहचान लिया और ओषधि दे दी। दो दिन बाद ही अनुला के स्वास्थ्य मे चमत्कारिक परिवर्तन दृष्टि-गोचर हुआ।

जीवक प्रत्येक दिन अनुला को देखने आता और उसके निकट कुछ समय बैठकर चला जाता था। चार-पाच दिन बाद ही अनुला में वार्त्तालाप करने और उठने-बैठने की शक्ति आ गयी। उसके मुखमंडल का पीलापन दूर होने लगा। ओषधि के प्रभाव से उसमे उसी प्रकार सौदर्य उभरने लगा जिस प्रकार सूखी नदी मे बाढ़ आती है। इस परिवर्तन को देखते ही, साल-वती उत्साह से भर गयी। उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही।

पाचवे दिन जीवक के पधारने ही सालवती ने दौडकर उसका स्वागत

किया। उस दिन उसने पहली बार जीवक को ध्यान से देखा। वह एक अनिर्वचनीय आनंद से भर उठी। उसे लगा, जैसे वह जीवक को अनंत-काल से जानती-पहचानती है। उसकी इच्छा हुई कि वह बढ़कर जीवक का माथा चूम ले। किंतु, उसने अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखकर जीवक को अनुला के पास पहुंचा दिया।

अनुला पर्यंक की पीठिका के सहारे लेटी हुई थी। जीवक को देखते ही मान से भर उठी। बोली :

"यही आपने वचन दिया था ?"

"वचन !"—जीवक किंचित् आश्चर्य एवं अनुस्मरण के स्वर में बोला।

"वाह ! आप तो भूल भी गये। रोगिणी मैं हूं और स्मरण-शक्ति आपकी जाती रही।"

"आप···आपको भ्रम हो गया होगा।" जीवक ने अचानक ही कह तो दिया, किंतु तत्क्षण ही उसने अनुभव किया कि ऐसा कहकर उसने उचित नहीं किया। और तब वह संकोच से आरक्त हो उठा। अनुला पर इस व्यवहार का प्रभाव उलटा ही पड़ा। वह खिलखिलाकर हंस पड़ी और हंसती हुई ही बोली :

"मैं स्वस्थ हो रही हूं, यह भ्रम है या मैं अस्वस्थ थी, वह भ्रम था ?"

"आप मेरा उपहास कर रही है !"—जीवक ने मुस्कराते हुए कहा। उसकी आंखों में वय का कौतूहल विहंस रहा था। सोद्देश्य अनुभाव से देखता हुआ वह बोलता रहा—"मैं वैद्य हूं और वैद्य को प्रत्येक रोगी के रोग का हेतु, रोग-निरोध तथा ओषधि का ज्ञान रहता है।"

"फिर विलंब क्यों वैद्यराज ! न जाने कितनी लंबी अवधि से मैं मरणासन्न पड़ी हूं। अब तो ऊब गयी इस असाध्य वेदना से।"

"यही तो अंतर है एक सामान्य जन एवं वैद्य में। सामान्य जन समय को अनावश्यक या व्यवधान मानता है, जबकि वैद्य समय को अनिवार्य एवं एक साधन समझता है। अभी आपके मनोवांछित रोग के उपचार का समय नहीं आया।"

"मैं आपसे छोटी हूं। अतएव, मेरे लिए 'आप' का प्रयोग न करके

आप मुझे देश-काल की चेतना से विमुक्त होने में किंचित् योग तो दे ही सकते हैं। इसमें मेरा उपचार नहीं तो उपकार अवश्य है।" अंतिम वाक्य कहते समय अनुला का स्वर स्निग्ध एवं किंचित् अवरुद्ध हो उठा। जीवक के जीवन में ऐसा संयोग कभी नहीं आया था। वह व्यामोह में पड़ गया। उसने ध्यानपूर्वक अनुला को देखा और देखता ही रह गया—ध्यान पीछे छूट गया, चेतना विलुप्त होने लगी। चिकित्सा-शास्त्र के चतुर्व्यूह[1] देश-काल से परे स्थित महाकाश में तिरोहित होते-से दीखने लगे।

अचानक ही जीवक को ध्यान आया कि वह वैद्य है। वैद्य को रोगी के नियंत्रण में नहीं, बल्कि रोगी को ही वैद्य के नियंत्रण में रहना श्रेयस्कर है। अन्यथा वैद्य कर्तव्यच्युत ही नहीं होगा, अपितु वह धर्म-विमुख होकर कलंकित सेवा की परंपरा छोड़ जायेगा। जीवक ने संयत स्वर में कहा : "अभी आपके उपचार में ही मैं आपका उपकार देखता हूं आर्ये ! ओषधि रक्खे जाता हूं। नियमित रूप से इसका सेवन करते जाइए। अब आपके स्वस्थ होने में विलंब नहीं है। मैं कल आकर देख जाऊंगा।"

जीवक के प्रस्थान का प्रस्ताव सुनते ही अनुला अचानक निस्तेज हो गयी। उसका मुखमंडल वेदना से आक्रांत हो उठा। उसकी आंखें बंद हो गयीं। जीवक ने यह परिवर्तन परिलक्षित किया। अनुला की मूक वेदना जीवक के अंतर्मन में प्रतिध्वनित हो उठी। कृत्रिम नियंत्रण की मर्यादा सहज उद्वेलन के प्रवाह को भला कब तक आबद्ध किये रह सकती है। जीवक की संपूर्ण देह सिहर उठी। वह उठ खड़ा हुआ। अनुला ने अपनी आंखें बंद किये ही पूछा :

"कल किस समय पधारेंगे ?"

"संध्या काल।" जीवक में साहस नहीं रह गया था। वह तत्क्षण ही त्वरित गति से बाहर निकल आया। अनुला का हृदय चीत्कार कर उठा। उसके प्राण बाहर निकलने को व्यग्र हो उठे। किंतु, कोई उपाय नहीं था। वह वहीं पर्यंक पर औंधी पड़ गयी।

सालवती ने जीवक को त्वरित गति से बाहर जाते देखा। वह कोई साधारण नारी नहीं थी। उसने जीवक को बहुत निकट से और सरस दृष्टि

१. कर्ता, कारण, करण और कार्य

से देखा था। वह स्वयं ही अतल अपार सागर के तट पर बैठी हुई चिर-पिपासित निरपेक्ष प्रेमिका बनी न जाने कब से किसी की प्रतीक्षा में बैठी थी। उसने अनुभूतियों को जन्म लेते और विस्मरण का ग्रास होते देखा था। अनायास ही उसकी आंखों के समक्ष अपनी ही विपन्न मूर्ति तैर गयी, जो मूर्ति साक्षात् अनुला-सी लगी। उसे लगा कि वह नहीं, स्वयं अनुला ही उसकी विस्मृत अनुभूतियों की प्रतिमूर्ति बनी उसी अथाह, अपार सागर की ओर बढ़ी चली जा रही है, जिस अथाह, अपार सागर के अंध-कारपूर्ण तट पर न जाने वह कब से बैठी है—चिरपिपासित, उद्वेलित, निस्संग, निस्संबल, एकाकी !

सालवती अनायास भागती हुई अपनी प्यारी पुत्री के पास जा पहुंची। वहां का दृश्य देखते ही वह आसन्न विपत्ति से आशंकित हो उठी। उसका मातृत्व जाग्रत हो उठा। अपनी पुत्री को विनाश की लपटों से बचा लेने के लिए उसका विवेक प्रज्वलित हो उठा। वह बड़े ही संयमपूर्ण एवं सामान्य स्वर में अनजान-सी बोली :

"कष्ट बढ़ गया क्या पुत्री ?"

"एं···हां···हां मां !"—अनुला संभलती हुई बोली : "पेट में पीड़ा होने लगी थी। अब ठीक हो रहा है।"

सालवती अपनी पुत्री के पास ही पर्यंक पर बैठ गयी और उसके आंसू पोंछती हुई बोली :

"इतना अधीर नहीं होना चाहिए। तुम अब बच्ची नहीं हो। इस तरह रोने-चीखने लगोगी तो मेरी क्या दशा होगी ! मैं तुम्हारी मां हूं। तुम्हारी वेदना मुझसे देखी नहीं जायेगी। यदि तुम्हारी ऐसी ही दशा कुछ दिन और बनी रही तो मैं···"

"बस करो मां !"—अनुला ने अपनी मां के मुंह पर हाथ रख दिया और कहा : "अब कभी नहीं रोऊंगी, घातक पीड़ा होने पर भी नहीं।"

"नहीं, तुम ऐसा नहीं करोगी। तुम्हें जो भी कष्ट हो, जैसी भी इच्छा हो, मुझे बता दो। मैं कोई उपचार तो नहीं ही कर पाऊंगी, किंतु व्यथा प्रकट कर देने से तुम्हारा मन तो हलका हो जायेगा।"

"ठीक है मां !"

"और देखो, मैं नगरवधू हूं। नगरवधू के नाते मुझे जीवन के सभी सुख-साधन उपलब्ध हैं। शत सहस्र लोग मेरे मात्र संकेत पर अपना तन-मन-धन न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते हैं। किंतु, नारी को जो सुख त्याग में प्राप्त होता है, वह ग्रहण में नहीं। उसे पराये के मुंह से प्रशंसा एवं प्रकीर्तन सुनने मे आनंद नही मिलता, बल्कि वह अपनों के प्रेम एव प्रतारण से जीवन पाती है, और ये राजकुल के सदस्य ऐश्वर्य से आनंद का क्रय करते हैं। इनमें अपना बनने या बनाने की रंचमात्र भी इच्छा नहीं होती। ये लोग उपकृत करने के भाव से आक्रांत रहते हैं। अतएव, इन्हे कुछ देने की आकांक्षा कभी मत सहेजना।"

"किंतु, मां, ये भी तो मनुष्य हैं।"

"ये नाममात्र के मनुष्य हैं। इनकी मनुष्यता राष्ट्रीय एवं सामाजिक न्याय की वेदी पर चढ चुकी होती है।"

"राष्ट्रीय न्याय के सम्मुख तो नतशिर होना ही चाहिए।"

"राष्ट्रीय न्याय को मान्यता देना एक बात है और राष्ट्र के नाम पर राजकुल के मनोरंजन का साधन बन जाना दूसरी बात। महाराज बिम्बिसार की पाच सौ रानियां राष्ट्रीय न्याय की वेदी पर उत्सर्ग नहीं हुईं, बल्कि, राजा की कुत्सित महत्वाकांक्षा का ग्रास बन गयी। जहां भावी इतिहासकार मगध के उत्कर्ष का उल्लेख करेंगे, वही आज के पुरुष के अधः-पतन पर पाद-टिप्पणी भी अंकित कर देंगे।"

"किंतु, राजकुल के सभी सदस्य तो एक जैसे नहीं होते मां !"

"उन्हीं अपवादों के कारण समाज का विघटन रुका हुआ है पुत्री ! तुम्हारी निर्मल भावनाएं फलीभूत हों—यही मेरा आशीर्वाद है। असाधारण इच्छा है तो तुम्हें अपनी दृष्टि, पथ एवं धीरज भी असाधारण ही बनाना होगा। अब विश्राम करो। अभी तुम पूर्णतया स्वस्थ नहीं हुई।"

सालवती चुपचाप वहां से चली गयी। अनुला अपनी मां को जाते हुए देखती-देखती कुछ सोचने लगी। बाहर का अंधकार गवाक्षों एवं वातायनों पर आकर सघन हो उठा। प्रासाद की मुखशाला में नृत्य-गीत-वादित्र

का झंकार मुखरित हो उठा। सांध्य-रागिनी की आलाप-लहरी हवा पर संतरण करती हुई अनुला के कक्ष तक भी पहुंचती रही किंतु, बहुत हलकी, अस्पष्ट, निष्प्राण !

मगध महामात्य वर्षकार अपने प्रासाद की मुखशाला में व्यस्त भाव से, किंतु मंद पग धरते हुए, चक्कर काट रहे थे। उनके मुखमंडल पर विभिन्न विचारों की रेखाएं आ-जा रही थीं। रह-रहकर वे द्वार की ओर देख लेते थे और फिर चलने लगते थे। प्रातःकाल का समय हो चला था। किंतु, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी, उसका कहीं भी पता नहीं था।

अब उनके मुखमंडल पर विचार के स्थान पर चिंता की रेखाएं उभरने लगीं। तभी प्रतीहारी ने आकर सूचना दी :

"द्वार पर सेनापति सुनीथ उपस्थित हैं।"

"उन्हें शीघ्र यहां ले आओ।"

महामात्य की चिंता दूर हुई। सुनीथ को देखते ही उन्होंने किंचित् आश्चर्य से पूछा :

"और कुमार अजातशत्रु कहां हैं ?"

"कुमार अभी भिक्षु देवदत्त के पास गये हैं।"

यह बात सुनते ही वर्षकार की भृकुटी तन गयी। उन्होंने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा :

"देवदत्त के पास कुमार का बारंबार जाना मुझे अरुचिकर प्रतीत होता

है। क्या कुमार को मेरा संदेश प्राप्त नहीं हुआ ?"

"जी हां श्रीमन् ! मेरा विश्वास है कि कुमार अब आते ही होंगे।"

"ठीक है।—प्रतीहारी !"—महामात्य अचानक पुकार उठे। प्रतिहारी के उपस्थित होते ही महामात्य वर्षकार ने आदेश दिया : "अभी मैं कुमार अजातशत्रु के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति से नहीं मिलना चाहता। महाराज बिम्बिसार से भी नहीं।"

"जो आज्ञा !" कहकर प्रतिहारी चला गया। वर्षकार क्षण-भर मौन रहे। सुनीथ ने मौन भंग करते हुए कहा :

"अग की सीमा पर दस सहस्र सिंहपाद सैनिक प्रस्तुत हैं।"

महामात्य ने आंखें उठाकर सेनापति सुनीथ की ओर देखा; किंतु, वास्तव में वे सुनीथ को न देखकर कहीऔर देख रहे थे। उनका मन बहुत दूर-दूर पहुंच रहा था। वे उसी मुद्रा में स्वगत भाषण करते-से बोले :

"अभी सिंहपाद सैनिकों से काम नहीं लेना है। उन्हें मगध की सेना के संपर्क में आने देना घातक भी हो सकता है। सेनापति ! मगध का आर्यपट्ट विषम परिस्थिति में पड़ गया है।"

"वह विषम परिस्थिति क्या है आर्य ब्राह्मण ?"

"उसके पांच उत्तराधिकारी !"

"पांच उत्तराधिकारी !"—सेनापति सुनीथ चौंक उठे। महामात्य वर्षकार ने विचार-तंद्रा में डूबे-डूबे ही कहा :

"हां, पांच उत्तराधिकारी। सर्वप्रथम हैं दर्शक, जो महाराज के नाम पर लगभग तेईस वर्ष से मगध का शासन चला रहे हैं। दूसरे हैं अभयकुमार, तीसरे हैं विमल कुन्दन, जिनकी माता अम्बपाली को महाराज वचन दे चुके हैं कि उनकी कुक्षि से जन्मा हुआ पुत्र मगध के राजसिंहासन पर बैठेगा और चौथे हैं अजातशत्रु जिन्हें मगध का राजा ही नहीं अंग, वैशाली तथा कोशल का सम्राट् बनना है।"

"और यह पांचवां कौन है।"

"गणिका सालवती का पुत्र जीवक ?"

"हैं !…जी…व…क…सालवती से महा…रा…ज का पुत्र है ?"

"हां !"

"किंतु, इस रहस्य को तो कोई नहीं जानता।"

"मुझे अपने गुप्तचर से सूचना मिली है कि कल रात सालवती ने महाराज से वचन ले लिया।"

"क्या ?"

"कि उसे उसका पुत्र वापस मिल जाय।"

"तो क्या महाराज जानते हैं कि···"

"महाराज कुछ नहीं जानते। मात्र मैं जानता हूं। सालवती ने मेरे छल को भी महाराज के समक्ष प्रकट कर दिया है। तुम जानते ही हो कि जीवक को महाराज कितना चाहते हैं। सबसे भयंकर बात तो यह है कि जीवक जितना लोकप्रिय व्यक्ति मगध राज्य में कोई नहीं है। जिस दिन प्रजा को मालूम हो जायेगा कि जीवक राजकुमार है, उसी दिन अजातशत्रु का मार्ग सदा के लिए अवरुद्ध हो जायेगा।"

"फिर क्या करना होगा ?"

"देश में जब अधिकार की चेतना सुगबुगाने लगे या गृहकलह की आशंका हो तब सत्ताधारी को चाहिए कि वह समय रहते प्रजा में राष्ट्रीयता की अग्नि प्रज्वलित कर दे। और मैंने इसी विचार से अभी महाराज के साथ अमात्य-मंडल की बैठक बुलवायी है।"

"किंतु, राष्ट्रीयता की अग्नि कैसे प्रज्वलित होगी ?"

"पड़ोसी राज्य को आक्रमणकारी घोषित करके। अंग से हमारी पुरानी शत्रुता है और यही अवसर है कि हम अंग के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें। अब हमें शीघ्र ही कुमार अजातशत्रु को···"

"आचार्य को प्रणाम करता हूं !"—महामात्य पूरी बात कह भी नहीं पाये थे कि कुमार अजातशत्रु ने वहां पहुंचकर उनकी अभिवंदना की। महामात्य ने छूटते ही उत्तर दिया :

"आर्यकुमार को मेरा आशीर्वाद है तथा मगध साम्राज्य के भावी सम्राट् को मैं प्रणाम करता हूं।"

महामात्य की यह बात सुनकर अजातशत्रु के मुख पर किंचित् आक्रोश झलक आया। यद्यपि अजातशत्रु ने प्रयत्नपूर्वक अपने आक्रोश का शमन कर दिया, फिर भी वर्षकार से उसका यह भाव छिपा नहीं रह सका। वर्षकार

ने आत्मविश्वास की मुस्कान के साथ पूछा : "क्यों, मेरे आशीर्वाद पर विश्वास नही है ?"

अजातशत्रु निस्तेज हो गया। उसने प्रतिरोध के स्वर में निवेदन किया :

"विश्वास क्यो नहीं है ! किंतु..."

"किंतु क्या ?"

"महाराज के जीवन-काल में ही जब दर्शक का शासन है, तब उनके स्वर्गवास के पश्चात् क्या होगा ?"

"महाराज ने अपने जीवन-काल में ही अपना अधिकार उत्तराधिकारी को सौंपकर शुभ परंपरा की स्थापना कर दी है। अतएव, तुम्हें भी महाराज के जीवन-काल मे ही सम्राट् बनना है। आज मैं मगध सेनापति सुनीथ के समक्ष तुम्हें आर्यकुमार घोषित करता हूं। सम्राट का निर्वाचन तो प्रजा के प्रतिनिधियों के समक्ष ही होगा।"

"किंतु आचार्य, मुझसे बड़े तो अभयकुमार हैं। इस अभिषेक को क्या प्रजा मान लेगी ?"—अजातशत्रु ने जिज्ञासा प्रकट की। वर्षकार ने गंभीर स्वर में घोषणा की :

"प्रजा को शक्ति-संपन्न, संवेदनशील राजा चाहिए, जो उसका पालन कर सके, उसकी जन्मभूमि की रक्षा और वृद्धि कर सके। अभयकुमार या दर्शक जैसे कदर्य राजा से कोई प्रयोजन सिद्ध होने को नही है। तुम्हे आज ही छद्म वेश में अंग की राजधानी चम्पा के लिए प्रस्थान कर देना है।"

"चम्पा !"—सेनापति सुनीथ तथा अजातशत्रु, दोनों ही एकसाथ आश्चर्य से बोल उठे। वर्षकार ने दोनों की ओर देखते हुए कहा :

"हां, चम्पा ! किंतु वहां तुम्हें नगर में निवास नही करना है। चम्पा नगर के पास ही चन्दना गांव है। चन्दना गांव में चम्पा के श्रेष्ठी कुलाजिन का बहुशालिक बना हुआ है। श्रेष्ठी कुलाजिन मगध का मित्र है। उसी के बहुशालिक मे तुम्हें निवास करना है।"

"मुझे करना क्या होगा ?"

"चम्पारण्य में दस सहस्र सिंहपाद सैनिक हैं। वे सभी तुम्हारे अंगरक्षक हैं। आदेश मिलते ही वे तुम्हारे नाम पर मर मिटेंगे। उन सबका नायक

है सिंहरथ। किंतु, तुम्हें कुछ करना नहीं है। तुम्हें वहां कोशल का व्यापारी बनकर रहना है, विश्राम करना है। बहुशालिक के चारों ओर पहाड़ियां हैं। कुछ ही दिनों में तुम्हारे सभी सिंहपाद सैनिक धीरे-धीरे वहां एकत्र हो जायेंगे। ज्यों ही अंग की सेना, चम्पा से निकलकर, सीमा पर एकत्र मगध की सेना का सामना करने पहुंचे, तुम अपने दस सहस्र सैनिकों के साथ सैन्यविहीन, अव्यवस्थित चम्पा नगर पर अधिकार कर लोगे। नित्य मेरा संदेश तुम तक पहुंच जाया करेगा।"

"आचार्य की जैसी आज्ञा।"

"अब तुम जा सकते हो। किसी को मालूम न हो कि तुम चम्पा की यात्रा कर रहे हो।"

"ऐसा ही होगा।"

अजातशत्रु के प्रस्थान के पश्चात् वहां क्षण-भर शांति व्याप्त रही। सुनीथ महामात्य वर्षकार के समक्ष बालक थे। उनकी आयु भी कोई विशेष नहीं थी—यही तीस-पैंतीस होगी। उनकी गौरवर्ण बलिष्ठ देह, प्रदीप्त मुखमंडल एवं मेघ-सदृश गंभीर वाणी से कोई अनजान व्यक्ति भी प्रभावित हो जाता था। मात्र महामात्य वर्षकार के समक्ष वे प्रभावहीन हो जाते थे।

अंत में महामात्य ने ही शांति भंग की। वे बोले :

"सुनीथ, आज मुझसे महाराज बिम्बिसार सालवती के पुत्र के संबंध में सूचना मांगेंगे। विचित्र धर्म-संकट है। तुम चाहो तो मुझे इस धर्म-संकट से मुक्त कर सकते हो।"

"मैं अपने प्राणों की बलि देने को भी प्रस्तुत हूं आचार्य!"

"उसकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हें करना यह है कि अंग पर अभियान के समय अभयकुमार तथा जीवक को भी अपने साथ कर लेना है। महाराज तो जायेंगे ही। मेरे लिए अंग में जो कुछ करणीय था, सो कर चुका। अतएव, मैं यहीं रहूंगा और इस अवधि में सालवती को राह पर लाने की चेष्टा करूंगा। यदि बीस वर्ष का कोई भव्य युवक मिल जाय तो मेरा कार्य सरल हो जायेगा। इस प्रकार, कदाचित् जीवक के चरित्र की भी परीक्षा हो जायेगी।"

"आप निश्चित रहे, आचार्य ! कौमारभृत्य जीवक तथा अभयकुमार को अग ले जाने का दायित्व मेरा। युवक की भी खोज करता हूं, आशा है, मिल ही जायेगा।"

"एक और दायित्व सौपता हूं।"

"आज्ञा कीजिए।"

"अभयकुमार को भगवान बुद्ध से मिला दो। भगवान बुद्ध के सपर्क में जो भी जाता है, प्रज्वलित होकर निष्कंप बना रहता है; और निष्कंप ज्वाला से सत्ता को कोई आशंका नही होती।"

"मैं समझ गया आचार्य ! ऐसा ही होगा।"

"तो अब मत्रणा-गृह में चलें। समय हो गया।"

दोनों रथ पर आरूढ़ होकर धवलगृह की ओर चल पड़े। सूर्य आकाश में आ चुका था।

अंग पर आक्रमण के संबंध में अमात्य-मंडल महाराज बिम्बिसार से विचार-विमर्श करता रहा और महाराज बिम्बिसार का मन कहीं और भटकता रहा। वे उस समय की प्रतीक्षा में थे, जब महामात्य वर्षकार के अतिरिक्त सभी अमात्य वहां से प्रस्थान कर जायं। विजय-यात्रा की सभी योजनाओं एवं उसके विभिन्न पक्षों पर विचार पूरा करके सभी अमात्य मत्रणा-गृह से जाने लगे। महामात्य वर्षकार भी जाने को उद्यत हुए कि महाराज ने कहा :

"महामात्य ! आप ठहरें।" महामात्य रुक गये। सबके प्रस्थान कर जाने पर महाराज ने पूछा : "महामात्य ! आज से प्रायः बीस वर्ष पूर्व आप सालवती के पुत्र को उठा लाये थे ?"

"मै नही, राजसेवक उठा लाये थे।"

"इससे कोई अंतर नही पड़ता।"

"बहुत अंतर पड़ जाता है।"

"वह कैसे ?"

"मैं उठा लाया होता तो वह बालक मेरे संरक्षण में होता। राजसेवक उठा ले गये, इसलिए वह बालक राजा के संरक्षण मे है।"

"फिर भी कोई अंतर नही पड़ा। यह सब कुछ आपके ही आदेश से संपन्न हुआ।"

"जी हां, श्रीमन् ! मेरे ही आदेश से यह कार्य संपादित किया गया। किंतु, मैंने महामात्य के नाते यह आदेश दिया, वर्षकार के नाते नहीं। अतएव, आपकी सूचना में और मेरे कथन में बहुत अंतर है।"

"यह आपने अंतर-अतर की रट क्या लगा रक्खी है ! जो मैं पूछता हूं, उसका उत्तर दीजिए।"

"मैं जानता हूं महाराज कि आप क्या पूछना चाहते हैं। इसीलिए अंतर की बात कह रहा हूं।"

"यही तो मुझे दुख है कि आप मेरा आशय नहीं समझ रहे है। मैं जानना चाहता हूं कि वह बालक कहां है ?"

"इसीलिए मैं कह रहा था कि दोनों में अंतर है। बालक मेरे पास होता तो मैं निवेदन कर देता कि वह अमुक है और अमुक स्थान में रहता है।"

"तो क्या आपने उसे देश से निष्कासित कर दिया है ?"

"जी नही।"

"फिर वह कहां है ? उसे यथाशीघ्र मेरे समक्ष उपस्थित किया जाय।"

"महाराज की आज्ञानुसार यथाशीघ्र उस युवक को आपकी सेवा में उपस्थित कर दिया जायेगा।"—वर्षकार ने अति विनम्र स्वर में

निवेदन किया।

"कब तक ?"

"निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।"

"महामात्य वर्षकार के मुंह से यह क्या सुन रहा हूं ?"

"परिस्थिति ही ऐसी है महाराज !"

"इस साधारण-सी बात में परिस्थिति कहां से उत्पन्न हो गयी ?"

"यह बात साधारण नहीं है।"

"एक मां को उसके पुत्र से मिला देना साधारण बात नहीं तो और क्या है ? आप अकारण ही प्रत्येक बात को असाधारण एवं रहस्यमय बना देने के अभ्यस्त हो गये हैं। मैंने स्पष्ट आदेश दिया और उसका पालन भी उसी स्पष्टता से होना चाहिए और शीघ्र !"

महामात्य वर्षकार ने किंचित् गंभीर स्वर में निवेदन किया : "उस शीघ्र की अवधि भी निश्चित कर दें तो मुझे सुविधा होगी।"

"कल संध्या काल तक !"

"कल संध्या काल तक ? असंभव !"—महामात्य ने आश्चर्यसूचक स्वर में अपनी असमर्थता प्रकट की। महाराज क्रोध से तिलमिला उठे। उन्होंने कठोर स्वर में कहा : "महामात्य !"

"महाराज !"

"मुझे लग रहा है कि इन दिनों आपने मेरे आदेश का विरोध करना ही अपनी नीति बना ली है।"

"यह मेरा दुर्भाग्य है महाराज कि आप ऐसा सोचते हैं। किंतु, बात सर्वथा इसके विपरीत है। मुझे बहुत-सी बातों का विचार रखना होता है।"

"तो क्या मेरी प्रतिष्ठा का विचार आपको नहीं है ?"

"ऐसा कहकर आप मुझ पर अन्याय कर रहे हैं।"

"मैं ठीक कह रहा हूं। यदि मेरी प्रतिष्ठा का आपको विचार है तो सालवती के पुत्र को कल संध्या काल तक उपस्थित करने का उपक्रम कीजिए। मैं सालवती को वचन दे चुका हूं।"

"महाराज मेरी धृष्टता क्षमा करें। ऐसा वचन देते समय आपको

समिति, सभा एवं अमात्य-मंडल की सहमति ले लेनी चाहिए थी। किंतु, आपने ऐसा नहीं किया। अतएव, मैं लाचार हूं।"

"मैं आपको आदेश देता हूं।"

"यदि आपके इस आदेश को अमात्य-मंडल एवं समिति स्वीकृति दे दे तो मैं या तो शिरोधार्य करूंगा या त्याग-पत्र दे दूंगा। किंतु, मंत्रि-परिषद् एवं समिति की बैठक बुलाने के पूर्व अपने प्रस्ताव के परिणाम पर विचार कर लीजिए।"

"कैसा परिणाम ?"

"मगध का विनाश !"

"वह कैसे ?"

"आपने भरी सभा में अपने पिता के बध का प्रतिशोध लेने का प्रण किया था। कदाचित् आप अपना वह प्रण भूले नहीं होंगे।"

"उस प्रण का सालवती को दिये गये वचन से क्या संबंध है !"

"वही बताता हूं। आपने भरी सभा में प्रण किया और किसी सभासद ने आपके प्रण का विरोध नहीं किया। अर्थात् आपके प्रण का सभा ने अनुमोदन कर दिया। निदान, आज हम आपके प्रण को पूरा करने के निमित्त अंग पर आक्रमण करने की योजना बनाने में संलग्न हैं। यदि सालवती को दिये गये वचन को पूरा करने के लिए हमें लाचार कर दिया गया, तो आपका प्रण एवं समिति का अनुमोदन निरर्थक हो जायेगा। क्योंकि तब हम अंग पर आक्रमण नहीं कर पायेंगे और इस प्रकार जिस योजना पर हम कोटि कार्षापण से अधिक व्यय कर चुके हैं, वह योजना धरी की धरी रह जायेगी। आप सोच सकते हैं कि इस अपव्यय का परिणाम क्या होगा ? प्रजा क्या सोचेगी ?"

"किंतु, सालवती को पुत्र मिल जाने से अंग पर आक्रमण की योजना किस प्रकार विफल हो जायेगी ?"

"राजकुमार अभय कौन हैं ?"

"मेरा पुत्र है।"

"आपने अभी संपूर्ण राजसत्ता कुमार दर्शक को क्यों सौंप रक्खी है ?"

"मेरा वह बड़ा पुत्र है। किंतु, मेरे पश्चात् वह मगध के आर्यपट्ट पर नहीं बैठ पायेगा, इसीलिए उसे सम्मान एवं अधिकार देने के हेतु मैंने अपने जीवनकाल में ही उसे राजा बना दिया है।"

"और आपके पश्चात् राजकुमार विमल कुन्दन राजसिंहासन पर बैठेंगे ?"

"हां।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैंने विमल की मां देवी अम्बपाली को ऐसा ही वचन दे रक्खा है।"

"और कुमार अजातशत्रु का क्या होगा ?"

"उसे काशी का मंडलेश्वर बना दूंगा।"

"और अभयकुमार का क्या होगा ?"

"उसे भी कहीं का मंडलेश्वर बना दूंगा।"

"फिर भी आपके तीन पुत्र बच रहे।"

"तीन कौन ?"

"महारानी चेलना के पुत्र हल्ल और वेहल्ल तथा सालवती का पुत्र !"

"ऐं !···ओह···यह···यह तो मैंने सोचा ही नहीं था।"—महाराज भयंकर रूप से चौंक उठे। वर्षकार बोलते रहे : "सालवती को ज्यों ही उसका पुत्र मिलेगा, एक नयी और भयावह समस्या उठ खड़ी होगी। मगध की सत्ता का एक नया उत्तराधिकारी उत्पन्न हो जायेगा। आपके पुत्रों के हृदय में ईर्ष्या एवं आशंका की अग्नि प्रज्वलित हो उठेगी, मागध जन द्विधाग्रस्त हो जायेंगे, आपको धर्म-संकट घेर लेगा और तब परिस्थिति से लाभ उठाकर अंगराज ब्रह्मदत्त मगध पर आक्रमण कर देगा। फिर आप शेष परिणाम स्वयं सोच सकते हैं।"

महामात्य का तर्क सुनकर महाराज विचलित हो उठे। उन्होंने इस दृष्टि से इस विषय पर विचार ही नहीं किया था। महाराज बिम्बिसार विभिन्न भावनाओं से ग्रस्त होकर किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये।···महामात्य के कथन में उन्हें सचाई दीख पड़ी। उन्हें अपने-आपसे ग्लानि होने

लगी।...'सच तो, मैंने अपने निजी स्वार्थ के चलते देश को गृह-कलह के कगार पर ला खड़ा कर दिया है, रानियां एवं सैकड़ों प्रजावतियां मेरे नाम पर धवलगृह में अपनी अवस्था के असंख्य सोपान पर डगमगाती चढ़ती चली जा रही हैं और मैं गणिकाओं की मृग-मरीचिका के पीछे पागल बना फिरता रहा हूं !...कब मैंने अपनी प्रजा के हित का ध्यान रक्खा ?...वैशाली में अम्बपाली के पास ?...गिरिव्रज मे गणिका सालवती के सहवास मे ?...पांच सौ रानियों से विवाह करते समय क्या मुझे अपने देश की चिंता थी या अपनी वासना का ध्यान था या अपनी असमर्थता का ?'...

महाराज को मौन देखकर महामात्य वर्षकार ने वस्तुस्थिति भांप ली। उन्होंने विनम्र, किंतु दृढ़ स्वर में निवेदन किया :

"महाराज के वचन को पूरा करने के निमित्त यह सेवक अपने प्राणों की भी आहुति दे देगा। किंतु, हमें मगध की सुरक्षा एवं समृद्धि का भी ध्यान रखना है।"

"फिर क्या किया जाय ?"

"अंग-अभियान के पश्चात् इस पर विचार किया जायेगा।" वर्षकार ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

महाराज धरातल पर आ गये थे। बोले : "किंतु, मैंने सालवती को वचन जो दे दिया है।"

"आपने उसे पुत्र लौटा देने का वचन दिया है; किंतु कब तक, इसकी चर्चा तो हुई नहीं है।"

"आप कैसे जानते हैं ?"

"आपकी एवं राज्य की सुरक्षा के निमित्त मुझे प्रत्येक मुख्य स्थान पर राजसेवक नियुक्त करना पड़ता है।"

"ओह !"

"आप चिंतित न हों। सालवती से कह दें कि मगध पर संकट है। अतएव, इस संकट के दूर होने पर ही अन्य कार्य की ओर ध्यान दिया जायेगा। सालवती प्रबुद्ध नारी है। उसे मगध से प्रेम है। चुप हो जायेगी। वैसे मैंने उसके पुत्र का पता लगाने के लिए दूत भेज दिया है।"

महाराज बिम्बिसार ने महामात्य की बात स्वीकार कर ली। किंतु,

उनका हृदय भावनाओं से आक्रांत हो उठा। बहुत देर तक वे खिन्न मन हो मन्त्रणागृह मे ही बैठे रहे।

बिल्व ग्राम में पर्याप्त चहल-पहल मची हुई थी। सबसे अधिक उल्लास ग्रामणी के एकशालिक में छाया हुआ था। एकशालिक गांव के बाहर विशाल आम्र-वन में स्थित था। गांव के सब लोग मिलकर आम्र-वन को सजाने-संवारने में लगे हुए थे। वहां की भूमि को स्वच्छ करके उस पर गोबर का लेप लगाया जा रहा था। निरर्थक एवं कंटीले लता-द्रुम उखाड़कर फेंक दिये गये थे। बच्चों में कौतूहल था, युवकों में उत्साह और वृद्धों में अपार श्रद्धा !

भगवान बुद्ध आज रात-भर वहीं आम्र-वन में ठहरने को थे। वे गिरिव्रज जा रहे थे। उनके साथ एक सहस्र भिक्षुओं का संघ भी चारिका कर रहा था। भगवान बुद्ध ने उस ग्राम के ग्रामणी का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। गांव के लोग अपना भाग्य सराह रहे थे।

बिल्व ग्राम का ग्रामणी समृद्ध गृहस्थ था। उसके आठ पुत्र थे, जिनमें से पांच राजसेवा में नियुक्त थे। गाय, बैल एवं अश्व भी उसके पास पर्याप्त संख्या में थे। गांव में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी।

उसी गांव में एक वृद्ध ब्राह्मण था। उसके एकमात्र पुत्र का नाम था पुष्पपाल। ब्राह्मण बहुत ही निर्धन था। फिर भी उसने अपने उद्धत पुत्र पुष्पपाल को तक्षशिला जाकर शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। पुष्पपाल

तक्षशिला गया। वहां जाकर उसने क्या-कुछ किया, यह तो वही जाने, किंतु वहां से लौटने पर उसे कहीं भी कोई पद नहीं मिला। वह गिरिव्रज से भी निराश लौट आया और अपनी झोंपड़ी में ही अकर्मण्य हो जीवन-यापन करने लगा।

जिस समय आम्र-वन में भगवान बुद्ध के स्वागत की उल्लासपूर्ण व्यवस्था हो रही थी, उस समय वृद्ध ब्राह्मण अपने पुत्र को समझा रहा था :

"इस तरह अकर्मण्य होकर बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। कुछ उद्यम करो।"

"क्या उद्यम करूं ? जहां कहीं जाता हूं, वहीं तिरस्कार एवं उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। निर्धनता मेरे लिए घातक शाप बन गयी है। किसी को विश्वास ही नहीं होता कि मैं तक्षशिला का स्नातक हूं।"

"निराश होने से तो काम नहीं चलेगा पुत्र ! घर में एक दाना भी नहीं है। बुद्ध के अनुयायियों ने ब्राह्मणों की भिक्षा-वृत्ति का भी अधिकार छीन लिया। यज्ञ पर से लोगों की श्रद्धा उठती जा रही है। सातों शास्ताओं[1] ने गार्हस्थ्य जीवन की नींव को झकझोर दिया है। ऐसी दशा में यदि तुमने धीरज त्याग दिया, अपनी विद्या एवं कौशल का सदुपयोग नहीं किया तो हम लोगों का विनाश निश्चित है। घर में तुम्हारी बहन सरमा कुमारी बैठी है। कुछ न कुछ उपाय तो करना ही है पुत्र !"

"आज कुछ ही देर में भगवान बुद्ध हमारे गांव में पधारने वाले हैं। वे संसार को मार्ग दिखलाने निकले हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो उन्हीं से मार्ग-दर्शन करने का अनुरोध करूं।"

"इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है भला ! किंतु, ध्यान रहे, भगवान बुद्ध ब्राह्मणों को बहुत ऊंची दृष्टि से नहीं देखते।"

"यह मैं सुन चुका हूं। आज अनुभव भी हो जायेगा।"

संध्या काल होने पर ब्राह्मण-पुत्र पुष्पपाल ने दूर पर जयजयकार का निनाद सुना। वह समझ गया कि भगवान बुद्ध बिल्व-ग्राम में पधार गये।

१. अजित-केश-कंबल, पूरण-कस्सप, पकुध-कच्चायन, मक्खलिगोसाल, संजय-बेलट्ठिपुत्त, गौतम बुद्ध और निगंठ-नातपुत्त

वह भागा-भागा आम्र-वन में जा पहुंचा। आम्र-वन में रात्रि-स्थान, सांध्य-स्थान, सयन, कुटी, मंडप आदि बड़े ही सुरुचिपूर्ण ढंग से स्थापित किये गये थे। भगवान बुद्ध के लिए उन्हीं के अनुरूप बहुत ही सुंदर गंध-कुटी बनवायी गयी थी। ग्रामणी ने कदाचित् अपना सर्वस्व भगवान बुद्ध की सेवा में समर्पित कर दिया था।

पुष्पपाल ने देखा, पश्चिम-आकाश में सूर्यास्त हो रहा था और पूर्व दिशा से संध्या काल में प्रदीप्त सूर्य का उदय हो रहा था। भगवान बुद्ध उसी प्रकार शनैः-शनैः आम्र-वन की ओर चले आ रहे थे, जिस प्रकार ऊषा-कालीन सूर्य उदित होता है। उनके पीछे भिक्षुओं का समुदाय था। गांव वालों ने बहुत ऊंचे स्वर में भगवान का जयकार करना आरंभ किया। ज्यों-ज्यों भगवान निकट आते गये, त्यों-त्यों जयकार का घोष मंद पड़ता गया, मानो उड़ती हुई धूल पर पानी की बौछार पड़ती जा रही हो। भगवान निकट आते गये, शांति का साम्राज्य स्थापित होता गया। सभी लोगों का उल्लास एवं उत्साह श्रद्धा एवं विनम्रता में परिवर्तित हो गया। भगवान आम्र-वन में पधार गये। चारों ओर अखंड शांति का अलौकिक प्रकाश परिव्याप्त हो गया।

पुष्पपाल चमत्कृत होकर देखता रहा। भगवान एक वृक्ष के तले विराजमान थे। भिक्षु-गण भी वहीं एक ओर बैठे थे। पुष्पपाल सोच रहा था—'यह महापुरुष कितना पूज्य है ? इसे कहां से यह अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई ?···क्या यह तक्षशिला गया ?···क्या इसने आचार्यों की सेवा की ?···फिर···फिर···!'···भगवान प्रवचन कर रहे थे :

"···मैंने उपदेश किये हैं—चार स्मृति-प्रधान; चार सम्यक्-प्रधान; चार ऋद्धि-पाद; पांच इंद्रियां; छह बल; सात बोधिअंग आर्य; अष्ट-आंगिक मार्ग···फिर भी ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'क्या जानने, क्या देखने के अनंतर दोषों का क्षय होता है ?' भिक्षुओ ! अ-पंडित, अ-दर्शक, आर्य-धर्म में अ-व्रती रूप को आत्मा करके जानता है।···उसका सिद्धांत कृत्रिम है···वह संस्कार है। उसका वह संस्कार अ-विद्या से जन्मा है। भिक्षुओ ! वेदना से युक्त अ-पंडित को तृष्णा उत्पन्न होती है और उसी से उत्पन्न है वह संस्कार। इस प्रकार वह संस्कार कारण से उत्पन्न है।

जो तृष्णा है, वह भी अनित्य, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। भिक्षुओ ! ऐसा जान लेने पर भी दोषो का क्षय हो जाता है। और वह रूप को आत्मा करके नही देखता, न रूपवान् को आत्मा करके देखता है, बल्कि वह रूप मे आत्मा को देखता है।"

पुष्पपाल सुन रहा था और सोच रहा था—'मुझमे वेदना है, संस्कार है, तृष्णा है—सब कुछ है। तो क्या मैं मूर्ख हूं?···अज्ञानी हूं?···क्या सभी देवता बन सकते हैं?—क्या सभी वेदना से, संस्कार से, तृष्णा से मुक्त हो सकते हैं···क्या?"

भगवान अमृत की वर्षा कर रहे थे। उनकी सुमधुर, गभीर वाणी वायुमडल मे सतरण कर रही थी: "अधर्म को अधर्म, धर्म को धर्म··· विनय को विनय···अविनय को अविनय···कहने वाला धर्मवादी है।"

पुष्पपाल ने अनुभव किया कि सत्य सर्वोपरि है। "किंतु, क्या सत्य बोलना ही यथेष्ट है?"

भगवान कह रहे थे. "जन्म से कोई वृषल नही होता; जन्म से कोई ब्राह्मण नही होता। कर्म से वृषल होता है, कर्म से ब्राह्मण होता है!"

ग्रामणी करबद्ध होकर भगवान के समक्ष बैठा था; बहुत-से ग्रामीण शांतचित्त बैठे अमृत-पान कर रहे थे; भिक्षुगण भी यथास्थान विराजमान थे। उपदेश का काल समाप्त हुआ। एकात पाकर पुष्पपाल ने भगवान के चरणो मे निवेदन किया:

"मैं अधकार मे हूं भगवन्! तक्षशिला मे शिक्षा पाकर भी अकर्मण्य बैठा हूं। घर पर वृद्ध पिता हैं और एक अविवाहिता बहन। घर मे अन्न का एक दाना भी नही है; किंतु कुछ उपाय नही सूझता। वेदना एवं ग्लानि से घुट रहा हू। आत्महत्या करने की इच्छा थी कि आपके आगमन की सूचना मिली। भगवन्! मुझे अपनी शरण मे ले लीजिए, अपने सघ में सम्मिलित कर लीजिए।" पुष्पपाल की आखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। भगवान ने करुणापूर्ण नेत्रों से पुष्पपाल को देखा और क्षण-भर देखते ही रहे। पुष्पपाल को लगा, जैसे उसके कष्ट का समुद्र सूखता जा रहा है, जैसे उसके सामने का अधकार फटता जा रहा है। तभी

उसके कानों में भगवान की वाणी सुनायी पड़ी :

"तथागत का धर्म कर्तव्य एवं दायित्व से पलायन की शिक्षा नहीं देता। संघ में सम्मिलित होने से पूर्व तुम्हें अपने पिता की अनुमति लेनी होगी। किंतु, अभी तुम्हारे वृद्ध पिता एव तुम्हारी असहाय बहन को सहायता की आवश्यकता है; और वह तुम्ही दे सकते हो। सर्वप्रथम अपने दायित्व का निर्वाह करो। फिर पिता की अनुमति लेकर मेरे पास आओ।"

"किंतु भगवन् ! मैं करूं तो क्या करूं ? मुझे तो लगता है कि जीविकोपार्जन के सभी साधन मेरे लिए अनुपलब्ध हैं।"

"शुभ कर्मों के द्वार कभी बन्द नहीं होते। प्रयत्न करो। वेदना एवं वेदनाजनित भावनाओं तथा सिद्धांतों से बचो। तुम्हारे दुःखों का निवारण होगा।"

पुष्पपाल कुछ विचित्र भाव लेकर वहां से चल पड़ा। उसके मन में तर्क-वितर्क उठते रहे : 'मनुष्य क्या संकल्प से उद्‌भूत है ?···यदि हां, तो वह संकल्प क्या सहज है···? या···या परिस्थिति-जन्य ?···यदि संयोग न हो···वियोग न हो···भाव न हो···अभाव न हो···तो···तो क्या मनुष्य में तर्क-वितर्क आयेगा, निश्चयात्मक अथवा सकल्पात्मक अनुभूति उत्पन्न होगी ?···किंतु···किंतु, मैं तो मूल में ही भूल कर गया···संकल्प स्वयं अभाव-जन्य है···अर्थात् सहज नहीं है···सब कुछ कदाचित्···कदाचित्—?'—पुष्पपाल मन-ही-मन प्रलाप-सा करता हुआ चला जाता रहा। सामने गांव की पुष्करिणी थी। पुष्पपाल वहीं दूर्वादल पर बैठ गया। ग्रीष्म की चांदनी पुष्करिणी के जल पर बिखरी हुई थी। हलकी-हलकी हवा चल रही थी। पुष्पपाल को थोड़ी शांति मिली। प्रकृति का सहज रूप उसे आकर्षक लगा। वह तन्मय हो गया। बहुत काल बीतने पर उसकी तंद्रा टूटी। वह चुपचाप अपने घर की ओर लौट चला। क्षुधा के अतिरेक से उसका पेट जल रहा था, उसके पांव डगमगा रहे थे, उसकी आंखें चिनगारियां उत्पन्न कर रही थीं। वह जानता था कि घर में भी खाने को कुछ नहीं है और उसके पिता उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे कि कदाचित्···

"ओ ब्राह्मण ! ओ···अरे ओ पुष्पपाल !"

पुष्पपाल चौंककर खड़ा हो गया। उसे ही ग्रामणी का अनुज पुकार रहा था। पुष्पपाल को रुकते देखकर वह दूर से ही ऊंचे स्वर में बोला : "आपको ही पुकार रहा हूं। इधर आइए।" पुष्पपाल जब उस गृहस्थ के निकट पहुंचा तब गृहस्थ ने पूछा : "भोजन करेंगे ?"

पुष्पपाल आश्चर्यचकित होकर गृहस्थ का मुंह देखता रह गया। उसे विश्वास नहीं था कि आज भी उसके पेट में अन्न का दाना जा पायेगा। उसे तब भी विश्वास नहीं हुआ, जब गृहस्थ ने दुबारा प्रश्न किया। क्योंकि वह जानता था कि उस रात एक सहस्र भिक्षुओं ने उसके यहां भोजन किया था और उसी में उस गृहस्थ तथा ग्रामणी की दशा बिगड़ गयी होगी।

"हां, हां, भोजन क्यों नहीं करेंगे। इसमें पूछने की क्या बात है ! शीघ्र ला दो।"—तभी ग्रामणी ने आकर अपने अनुज से कहा। जब गृहस्थ भोजन लाने के लिए भीतर जाने लगा तब जाकर कहीं पुष्पपाल को विश्वास हुआ। वह प्रफुल्लित हो उठा। उसने भगवान बुद्ध को मन-ही-मन प्रणाम किया। तत्क्षण दो भूखी मूर्तियां उसकी आंखों के आगे तैर गयीं। वह अनायास ही बोल उठा :

"मैं यहां भोजन नहीं करूंगा। घर पर मेरे पिता और बहन···"

"हां, हां, मैं समझ गया। अवसर मिला है तो अपने स्वर्गवासी पूर्वजों को भी आज ही खिला दो।"—गृहस्थ ने किंचित् लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया। पुष्पपाल का सारा उल्लास जाता रहा। वह तिलमिला उठा। तभी ग्रामणी ने कहा :

"ठीक तो है। तीन व्यक्तियों के योग्य भोजन ले आना। उतना पकवान तो शेष रह गया है। कौन खायेगा ? बेचारा निर्धन ब्राह्मण आज तो भरपेट खा ले।"

गृहस्थ भोजन लाने चला गया। पुष्पपाल ग्लानि से भर उठा; किंतु, क्षुधा के आतंक ने उसके पांव जकड़ दिये थे। अतएव, वह वहीं निश्चल बना रहा। गृहस्थ ने भोजन लाकर पत्तलसहित उसके हाथ में रख दिया।

पुष्पपाल के हाथ में पकवान देखकर उसके वृद्ध बुभुक्षित पिता चमत्कृत-से हो उठे। उसकी बहन का भी मुख मिला। किंतु, पुष्पपाल मौन

ही रहा। वृद्ध ब्राह्मण अपनी प्रसन्नता के कारण पुत्र की व्यथा को नहीं देख सके। बहन को किंचित् आभास मिल गया। नारी स्वभाव से ही संवेदनशील होती है। भावनाओं एवं वृत्तियों के जगत में नारी पुरुष से सदा ही दस वर्ष बडी होती है। सरमा ने अपने भाई की व्यथा से अनजान बनते हुए उल्लासपूर्वक भोजन परोस दिया। ज्यों ही पिता-पुत्र भोजन करने बैठे, कुटिया के बाहर से किसी ने पुकारा—"कोई है ?"

पिता-पुत्र के हाथ का प्रथम ग्रास थाली में ही रह गया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और तब पुष्पपाल शीघ्रता से बाहर जा पहुंचा। वहां एक देदीप्यमान साधु खड़े थे; ठीक भगवान शिव की प्रतिमूर्ति-से दीखते थे। पुष्पपाल ने झुककर उनकी अभिवन्दना की। साधु ने आशीर्वाद न देकर ध्यानपूर्वक, बल्कि तीक्ष्ण दृष्टि से पुष्पपाल को देखा और कहा :

"मैं हूं मक्खलिगोसाल !"

मक्खलिगोसाल का नाम सुनते ही पुष्पपाल घबरा गया। मक्खलिगोसाल विश्वविख्यात नियतिवादी शास्ता और 'आजीवक' सम्प्रदाय के संस्थापक एवं अधिष्ठाता थे। उन्हें अपनी जर्जर कुटिया के द्वार पर साक्षात आया हुआ देखकर पुष्पपाल कर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसके मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला और वह चकितावस्था में खड़ा-खड़ा मक्खलिगोसाल का तेजोमय मुखमंडल निहारता रहा। तभी शास्ता ने कहा :

"कुछ भोजन करायेगा या यों ही मुंह देखता रहेगा ?"

पुष्पपाल की चेतना लौट आयी। उसने शीघ्र ही आसन आदि से शास्ता का सत्कार किया। वृद्ध ब्राह्मण मक्खलिगोसाल के आगमन की सूचना पाकर कृतकृत्य हो उठे।

शास्ता ने अकेले ही तीनों व्यक्तियों के योग्य भोजन को ग्रहण कर लिया। पुष्पपाल अपने पिता तथा बहन के साथ उस रात भी भूखा ही रह गया। किंतु, उन तीनों के मन में इस विपत्ति से क्लेश नहीं पहुंचा। बल्कि, तीनों को ही इस बात से घोर आश्चर्य हुआ कि शास्ता को भोजन करते देखकर उन्हें अपने-आप तृप्ति मिलती गयी और उन्हें लगा, जैसे उनके पेट में एक दाने के लिए भी स्थान शेष नहीं है।

भोजनोपरांत पुष्पपाल तथा उसकी बहन एवं पिता शास्ता के पास

आ बैठे। शास्ता ने कहा :

"मैं उस ग्रामणी के घर नहीं गया। मैं जानता हूं कि तुमने जो मुझे भोजन कराया है, वह ग्रामणी के यहां पकाया गया था—उस शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थ के लिए, जो स्वयं को बुद्ध कहता है।"

पुष्पपाल मौन होकर शास्ता की बात सुनता रहा। किंतु, वृद्ध ब्राह्मण ने पूछ ही लिया :

"तो क्या वे बुद्ध नहीं हैं?"

"बुद्ध होता तो क्लेश का कारण नहीं ढूढ़ता। जीव को सुख-दुःख झेलना ही है। इससे वह मुक्ति नहीं पा सकता। पुरुष का पुरुषार्थ भी कुछ नहीं है, उसमें बल और वीर्य भी नहीं है। जो इस सत्य के विपरीत सोचता है, वह अहंकारी है, प्रलापी है।"

"फिर तो विद्या, बुद्धि, उद्यम आदि सभी निरर्थक हैं?"

"निस्सन्देह! कष्ट बुद्धिमानों को भी होता है और मूर्खों को भी। इस जीव के चौरासी लाख छियासठ सौ योनियों में चक्कर काट लेने पर ही दुःख नष्ट होता है। दुःख का निवारण भाग्य से होता है, कर्म करने से नहीं। यदि कर्म सर्वोपरि होता, तो श्रमिकों को कोई कष्ट नही होता।"

पुष्पपाल शास्ता के वचनों को तोलता रहा। शास्ता के अक्रियावादी तथा नियतिवादी सिद्धांत में उसे सत्य का आभास मिला। उसने अपने जीवन के संदर्भ में शास्ता के उपदेश को सुना और अनुभव किया कि शास्ता का मार्ग उचित है। भाग्य से ही कोई बात बनती है या बिगड़ती है।...तभी तो तक्षशिला की शिक्षा पाकर भी वह तिरस्कार एवं उपेक्षा का पात्र बना हुआ है।

"मेरे साथ गिरिव्रज चल। तेरा भाग्य वहीं खुलनेवाला है। कल ब्राह्म मुहूर्त में प्रस्तुत रहना।"—शास्ता ने अचानक ही आदेशात्मक स्वर में कहा।

पुष्पपाल ने या तो पूरी बात ही नहीं सुनी या उसे अपने कान पर विश्वास नहीं हुआ। वह चौंक उठा :

"जी?"

"कल ब्राह्म मुहूर्त में मेरे साथ गिरिव्रज चल। घबरा मत। तुझे मैं

अपना शिष्य नहीं बनाऊंगा, बल्कि राजसेवा में नियुक्त करा दूंगा।"

पुष्पपाल अपने भाग्य पर मन-ही-मन झूम उठा।

संध्याकाल व्यतीत हो चुका था। चम्पारण्य के सघन लता-द्रुमों आदि पर गहन अंधकार उतर आया था। हाथ को हाथ नहीं दिखाई दे रहा था। प्रचंड वेग से बहती हुई वायु लता-द्रुमों, वृक्षों एवं पत्तों को झकझोरती, उड़ाती हुई संपूर्ण वन-प्रदेश में तांडव का दृश्य उपस्थित कर रही थी। कोटरों, डालियों और झुरमुटों से प्रकटित सू-सूं की भयावह ध्वनि शत सहस्र कंठों से निकले हुए चीत्कार या दारुण आर्त्तनाद-सी लग रही थी। चारों ओर मृत्यु का अट्टहास गूंज रहा था।

उसी समय चम्पारण्य से एक युवक लड़खड़ाता हुआ निकला। उसके बहुमूल्य वस्त्र रक्त एवं धूल में सने हुए थे। शस्त्र के नाम पर उसके कटि-प्रदेश में रिक्त म्यान लटक रहा था। वह युवक मरणासन्न स्थिति में था। बहुत कठिनाई से वह आठ-दस पग चल पाता कि लड़खड़ा कर गिर पड़ता। किसी प्रकार वह चार रज्जु[1] तक पहुंचा होगा कि मूसलाधार वर्षा होने लगी। वायु के प्रचंड वेग और मूसलाधार वर्षा के थपेड़ों से वह तिलमिला गया; कुछ दूर चलने का उसने विफल प्रयास किया और मुंह के बल गिर पड़ा। वर्षा होती रही और वह युवक कीच में पड़ा रहा—निष्प्राण, निरवलंब!

---

१. १६० गज

एक प्रहर बीत गया। वर्षा के साथ ही वायु का प्रचंड वेग भी थम गया। युवक पूर्ववत् स्थिति में पड़ा रहा, यद्यपि वह पहले से कुछ अधिक स्वस्थता अनुभव कर रहा था।

उसी समय उधर से दो श्रमण आ निकले। कीच में पड़े युवक को देखकर दोनों श्रमण चौंककर रुक गये। आगे चलनेवाले श्रमण ने झुककर युवक के शरीर की परीक्षा ली और दूसरे श्रमण से कहा—

"अभी प्राण शेष है। कोई अभिजात कुल का जान पड़ता है। चलो, इसे नगर में ले चलें। वहीं इसका उपचार करेंगे।"

दोनों श्रमणों ने युवक को ज्यों ही सीधा किया कि उसी समय आकाश में विद्युत् चमक उठी और एक श्रमण के मुंह से चीत्कार का-सा स्वर निकल पड़ा : "कौन ? कुमार अजातशत्रु !"

अजातशत्रु भी श्रमण को पहचानता हुआ-सा अस्फुट स्वर में बोला : "कौन ? शास्ता !"

"हां वत्स ! मैं हूं देवदत्त। किंतु, तुम्हारी यह दशा !"

"हां शास्ता ! राह में अंग के दस्युओं ने मुझे अकेला पाकर···"

"नाश हो जाय अंगवासियों का।"—देवदत्त ने अजातशत्रु को बोलने में कष्ट होते देखकर बीच में ही कहा : "अभी तुम अधिक मत बोलो। हम लोग तुम्हें नगर में लिये चलते हैं। तीन-चार दिनों में ही स्वस्थ हो जाओगे।"

"नहीं-नहीं। मुझे नगर में नहीं जाना है।"

"क्यों ?"

"आर्य वर्षकार का ऐसा ही आदेश है। नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन का नगर के बाहर कोई बहुशालिक है।"

"हां-हां, है तो।"

"मुझे वहीं पहुंचा दीजिए, शास्ता। और···नगर-श्रेष्ठी को चुपचाप मेरी सूचना···दे दीजिए।"

देवदत्त ने फिर कोई बात नहीं की। दोनों श्रमण मिलकर अजातशत्रु को नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन के बहुशालिक में ले गये। वहां पहुंचते ही अजातशत्रु की दशा अचानक अधिक शोचनीय हो उठी। देवदत्त कुशल

वैद्य भी था। वह रात-भर अजातशत्रु की परिचर्या में लगा रहा। सूर्योदय होने तक दोनों श्रमण चिताग्रस्त होकर कुमार की परिचर्या में लगे रहे। सूर्योदय के साथ ही कुमार की दशा सुधरने लगी। देवदत्त अपनी सफलता के अहंकार में फूल उठा। उसने दूसरे श्रमण की ओर उन्मुख होकर कहा :

"देखा आवुस ! यह है मेरी ओषधि का चमत्कार।"

"हां भंते ! देखा। यह तो अद्‌भुत है ! आश्चर्यजनक है !"

"अच्छा तो अब कोई चिंता नहीं। तुम जाकर नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन को अजातशत्रु के आगमन एवं इनकी दशा की सूचना दे आओ। किसी और को यह सूचना नहीं मिले।"

"आप निश्चित रहें, भंते !"

श्रमण के चले जाने के पश्चात् अजातशत्रु ने आंखें खोलीं और बहुत ही क्षीण एवं उपकृत स्वर में कहा :

"आपने दूसरी बार···मेरी···रक्षा की। अब···अब तो मेरे प्राण··· आ···आपके ही हो गये।"

"शांतिपूर्वक आंखें बंद किये पड़े रहो वत्स ! अधिक बोलने से हानि होगी। तुम्हारी देह से बहुत रक्त गिर चुका है।"

"नहीं···शास्ता···बोलने दीजिए। आज से···मैं तन-मन-धन से··· आपका···सेवक हुआ। आ···आपसे···मु···मुझे कोई भी···वि···विलग नहीं कर सकता।"

"हां वत्स ! हमें कोई विलग नहीं कर सकता। विश्व पर शासन करने के लिए तुम उत्पन्न हुए हो और विश्व में धर्मचक्र चलाने के लिए मेरा उदय हुआ है। अभी तुम सो जाओ। फिर बात करेंगे।"

अजातशत्रु मौन हो गया। देवदत्त वहीं बैठा रहा और मन-ही-मन बुद्ध को विनष्ट करने की योजना बनाता रहा।

अजातशत्रु के अंग-आगमन की सूचना नगर-श्रेष्ठी को पहले से ही मिल चुकी थी और वह प्रतीक्षा में ही था। किंतु, तिथि एवं समय की सूचना उसे नहीं थी। जब उसने सुना कि कुमार अजातशत्रु पधार गये हैं और अस्वस्थ हैं, तब वह शीघ्र ही द्रुतगामी रथ से बहुशालिक की ओर दौड़ चला। उसकी सुंदरी षोडशी पुत्री देवदत्ता भी उसके साथ आयी।

अजातशत्रु की दशा देखकर कुलाजिन चिंतित हो उठा। उसने तत्क्षण ही परिचारक एवं परिचारिकाओं की व्यवस्था की; नगर के सुयोग्य वैद्यों को बुलवाया और अजातशत्रु के संबंध में चारों ओर प्रसिद्ध कर दिया कि कोशल के श्रेष्ठी-कुमार हैं। रास्ते में दस्युओं ने इन्हें घेरकर इनके एक कोटि के रत्न आदि लूट लिये और इन्हें घायल कर दिया।

सर्वोत्तम रीति से चिकित्सा होने लगी। श्रेष्ठी की पुत्री देवदत्ता वहीं अजातशत्रु की परिचर्या में रहने लगी। किंतु, उसे भी पता नहीं था कि वह युवक मगध का पराक्रमी राजकुमार अजातशत्रु है।

अजातशत्रु पर्यंकिका की पीठिका के सहारे बैठा हुआ गवाक्ष की ओर टकटकी बांधे देख रहा था। उसका स्वास्थ्य प्रायः सुधर गया था, किंतु घाव के चिह्न अभी भी शेष थे। उसके कंधों, बायीं भुजा एवं भाल पर औषधि का लेप लगा हुआ था। उसकी आंखों में प्रतिशोध एवं महत्वाकांक्षा की ज्वाला तरल होकर तैर रही थी। वह विचारमग्न बैठा ही था कि प्रकोष्ठ में सुमधुर नारी-स्वर संतरित हो उठा :

"क्या सोच रहे हैं ?"

युवक की तंद्रा भंग हो गयी। सामने श्रेष्ठी की पुत्री देवदत्ता खड़ी थी, उसकी स्वर्ण-वल्लरी-सी सुगढ़ देह-यष्टि, नवनीत-से सुचिक्कन, स्निग्ध अंग-प्रत्यंग, ओस में धुली गुलाब की पंखुरियों-से सुकोमल गात देखकर अजातशत्रु अपनी समस्त योजनाएं एवं क्लेश भूल गया। और वह उस रूप-माधुरी को टकटकी बांधे देखता ही रह गया।

"अब चिंतन त्यागकर पर्यवेक्षण करने लगे ?"

"पर्यवेक्षण से ज्ञान की वृद्धि होती है, सुमुखि ! किंतु, अभी तो मैं अपनी समस्त ज्ञान-चेतना खो बैठा हूं।"

"तभी तो आप करोड़ों की संपत्ति चम्पारण्य में खो आये। ऐसा ज्ञान रखिएगा तो व्यापार क्या कीजिएगा ?"

"ऐसा खोना तो पाने से भी सुखकर है। किंचित् मेरी दृष्टि से वस्तु-स्थिति को देखो। यदि दस्युओं ने मेरी यह दशा न की होती तो क्या मैं तुम्हारे साहचर्य का आनंद ले पाता ?"

"मैंने सुना है, श्रेष्ठि-पुत्र, कि नारी का साहचर्य पुरुष को तभी तक सुखकर लगता है, जब तक कि वियोग की आशंका बनी रहती है।"

"सत्य ही सुना है, देवदत्ते ! जो उपलब्ध है वह अरुचिकर है, जो अनुपलब्ध है वह आकर्षक। विश्व की गतिशीलता के मूल में यही सूत्र प्रेरणा का उत्स बना हुआ है।"

"फिर क्षणिक सुख के लिए आप सर्वस्व गंवाने की इच्छा क्यों पाल रहे हैं ?"

"प्रेरणा क्षणिक होती है, किंतु, जीवन को उद्भासित कर जाती है—एक दिशा दे जाती है। क्षणिक संघर्ष ऐसी चिनगारी उत्पन्न कर देता है कि मनुष्य उसी के सहारे समस्त विश्व को भास्वर अथवा भस्मीभूत कर दे सकता है। इसीलिए, मैं तुम्हें पाकर उल्लसित हूं। इसीलिए, मैं तुम्हें देखकर उद्वेलित हूं। तुम्हारे साहचर्य के ये अमूल्य क्षण मेरे जीवन को प्राण-वंत एवं प्रदीप्त बना रहे हैं। देवदत्ते ! पास आओ···और निकट···यहां पर्यंक पर !"

देवदत्ता पर्यंक के किनारे बैठ गयी। अजातशत्रु उसे एकात्म भाव से, अनिमेष देखता रहा। देवदत्ता संकोच एवं लाज से गड़ी जा रही थी। अजातशत्रु की आंखें देवदत्ता के रक्तिम, सरस, सुघड़, अधरों पर मंडरा रही थीं, उसकी पलकों में खो रही थीं, उसकी नासिका एवं सुचिक्कन ग्रीवा पर फिसल रही थीं। वह सचमुच ही अपनी चेतना खोता जा रहा था। मन ही मन कह रहा था : "आह ! तुम कितनी सुंदर हो ! तुम्हें ईश्वर ने क्यों गढ़ा ? बोलो देवदत्ते ! तुमने मुझे क्या कर दिया ?···"

कुछ काल इस तरह बीत गया। देवदत्ता चुपचाप बैठी रही। अचानक अजातशत्रु ने पूछा :

"तुम्हारी दृष्टि में कौन श्रेष्ठ है—योद्धा या वणिक ?"

"आपका प्रश्न विचित्र है।"

"क्यों ?"

"नारी श्रेष्ठ है या युवती ?"

"दोनों में अंतर क्या है ?"

"फिर योद्धा और वणिक में क्या अंतर है ? योद्धा तो एक व्यापारी

भी हो सकता है और एक गृहस्थ भी।"

"ओहो, तुमने तो मुझे पराजित कर दिया। देवदत्ते, मैं हार गया।" अजातशत्रु ठहाका मारकर हंसने लगा। देवदत्ता मुस्कराती हुई आंखों की कोर से अजातशत्रु को देखती रही। तभी बाहर अश्व की टाप सुनायी पड़ी। देवदत्ता पर्यंक से उतरकर खड़ी हो गयी।

अजातशत्रु द्वार की ओर गंभीर दृष्टि से देख ही रहा था कि परिचारक ने प्रकोष्ठ में प्रवेश कर कहा :

"एक युवक आपसे एकांत में मिलना चाहता है।"

"कौन है वह ?" अजातशत्रु ने गरिमायुक्त स्वर में प्रश्न किया। देवदत्ता को अजातशत्रु का वह स्वर कुछ विचित्र, किंतु प्रभावोत्पादक लगा। वह अजातशत्रु को देखने लगी। अजातशत्रु का मुखमंडल पौरुष एवं गौरव-गरिमा के तेज से प्रदीप्त लग रहा था। वह सोचने लगी कि एक व्यापारी में इतना तेज, इतना शौर्य !

परिचारक ने विनम्र स्वर में निवेदन किया : "वह अपना नाम-पता बताना अस्वीकार करता है, आर्य !"

"अच्छी बात है। उसे उपस्थित करो।"

परिचारक चला गया। किंतु, अजातशत्रु का आदेशात्मक स्वर सुनकर देवदत्ता चौंक उठी और विस्मय से अजातशत्रु की ओर देखने लगी। अजातशत्रु ने बहुत ही मधुर एवं प्रेमाभिसिक्त स्वर में कहा :

"देवदत्ते, क्षमा करना, मुझे कुछ काल के लिए तुमसे विलग होना पड़ रहा है। बस अभी आया।"

"आप कहां जायेंगे ? मैं ही पार्श्व के प्रकोष्ठ में चली जाती हूं।"

देवदत्ता उधर गयी और इधर वह नवागंतुक युवक अजातशत्रु के समक्ष आ उपस्थित हुआ। उस युवक ने प्रकोष्ठ में प्रवेश करते ही सैनिक रीति से अजातशत्रु का अभिवादन किया और कहा :

"मैं हूं आपका सेवक सिंहरथ।"

"कौन ?" अजातशत्रु ने किंचित् आश्चर्य से पूछा : "सिंहपाद सैनिकों का नायक ?"

"हां श्रीमन् !"

"संकेन-चिह्न !"

"यह रही महामात्य वर्षकार की मुद्रिका !" सिंहरथ ने मुद्रिका अजातशत्रु के हाथ पर रख दी। अजातशत्रु ने मुद्रिका लौटाते हुए पूछा : "आचार्य का कोई आदेश ?"

"सामन्त सुमन बंदी बना लिये गये हैं। अंगराज ब्रह्मदत्त के विरुद्ध अंग की रोषित प्रजा व्यग्रतापूर्वक समय की प्रतीक्षा कर रही है। अमावस्या को अंग के कुछ क्षत्रिय सामंत अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह करेंगे और सामत सुमन को कारागार से मुक्त कराने का प्रयत्न करेंगे। उसी रात को तीसरे पहर मगध की सेना अंग की सीमा पर पहुंच जायेगी और युद्ध की घोषणा कर देगी।"

"ठीक है। तब तक मैं पूर्णतया स्वस्थ हो जाऊंगा। सिंहपाद सैनिकों को यहां पहाड़ियो मे आकर···"

"तीन सहस्र सिंहपाद सैनिक भिक्षुओं के वेश में यहां पहुंच चुके हैं। शेष सार्थवाह के रूप आ जायेंगे। सार्थवाह के साथ पर्याप्त सख्या में अश्व भी रहेंगे।"

"वाह सिंहरथ ! तुम बहुत ही कुशल योद्धा प्रतीत होते हो। तुमने आश्चर्यजनक कार्य किया है।"

"यह सब आपके प्रसाद का परिणाम है, श्रीमन् !"

"ठीक है, अब तुम जा सकते हो। मेरे पास कल जिस व्यक्ति को संदेश लेकर भेजोगे उसका संकेत-शब्द होगा—मुद्रिका।"

"जो आज्ञा !"

सिंहरथ अभिवादन करके चला गया। अजातशत्रु कुछ काल तक, देवदत्ता की प्रतीक्षा करता रहा फिर स्वयं ही पार्श्व के प्रकोष्ठ की ओर चल पड़ा। किंतु, देवदत्ता वहां पर नहीं थी।

चारों ओर ढूंढ़ लेने के बाद भी जब देवदत्ता का पता नहीं लगा तब अजातशत्रु बहुशालिक के उद्यान में जा पहुंचा। वहां देवदत्ता एक सघन अतिमुक्तक की दीर्घ छाया में दूर्वा-दल पर वक्ष के बल लेटी थी और घुटनों के नीचे के दोनों पांव एक-एक कर हवा में झुला रही थी। अन्तर्वासक घुटनों तक सिमट आया था और नग्न पांव का स्वच्छ, धवल, स्निग्ध, सुकोमल

सौंदर्य अतिमुक्तक की छाया में मुखरित एवं उद्दीपक हो उठा था।

अजातशत्रु क्षण-भर छुप कर देखता रहा—नारी का उद्दीपक, उद्वेलक रूप ! वह दृश्य उन्मत्त बना देने को पर्याप्त था। नग्न पाव, अंतर्वासक में आवेष्टित सुघड़ जंघाएं, सुगठित नितम्ब और क्षीण कटि देख कर कुमार बेसुध हो उठा और उसके मुंह से कोई अस्फुट-सी ध्वनि निकल गयी। देव-दत्ता चौंक कर उठ बैठी। सामने अजातशत्रु को देख कर वह लाज से गड़ गयी। अजातशत्रु भी अचानक ही चोरी करते पकड़ा गया था। अतएव, वह भी झेप गया। देवदत्ता ने अपनी हथेलियों से आखें बंद कर ली। कुमार को अच्छा अवसर हाथ लगा। वह देवदत्ता के पास पहुंच कर बोला :

"अपनी आखें देखने दो।"

देवदत्ता ने आखो पर हथेली रक्खे-रक्खे नकारात्मक ढंग से कई बार सिर हिला दिया। उसकी वह भगिमा अजातशत्रु को और भी अधिक उत्ते-जक, उद्दीपक लगी। अजातशत्रु ने उसकी दोनो कलाइयां पकड़ कर बल-पूर्वक हथेलिया हटा दी। हथेलियों के दबाव से नासिका के निकट दोनों ओर रक्तिम आभा अंकित हो गयी थी। अजातशत्रु ने अनायास ही उन दोनों स्थलों पर चुंबन अकित कर दिये। देवदत्ता हतप्रभ-सी होकर अजात-शत्रु के वक्ष पर झुक गयी।···सूर्य क्षितिज से थोड़ा ही ऊपर रह गया था। पृथ्वी पर लता-द्रुमों की छाया दीर्घतम हो गयी थी। कुजों मे पक्षियों की चहचहाहट गूज उठी थी। हवा किंचित् बेसुध होकर बहने लगी थी।

महाराज ब्रह्मदत्त मे तिरस्कृत होकर सामंत सुमन अपने प्रासाद में लौट आये। उनके हृदय में क्रोध की ज्वालामुखी सुलगने लगी; विद्रोह का प्रबल वेग राजभक्ति के बालुकामय कगारों से टकराने लगा। प्रतिशोध की योजनाओं से उनका मस्तिष्क फटने लग।। फिर भी वे ऊपर से शांत-चित्त बने रहे। उन्होंने परिवार के सम्मुख अपनी व्यथा की चर्चा तक नहीं की। किंतु, बात छिपी नही रह सकी। कल होते ही सामंत सुमन के प्रासाद के आस-पास राजा के गुप्तचर घूमने लगे। यदा-कदा सैन्य-नायक भी चक्कर काटने लगे। नागरिकों को यह देख कर कौतूहल हुआ; कौतूहल की आंशिक तुष्टि ने क्रोध को जन्म दिया; क्रोध का उपचार न होने से घृणा उद्भूत हुई और तब संपूर्ण नगर में भीतर-ही-भीतर अशांति की धारा प्रवाहित होने लगी।

तभी एक और घटना घट गयी। महासती चन्द्रबाला परिनिर्वाण को प्राप्त हुई। अंत समय अंग के मौलसेनाध्यक्ष वसुमित्र और एक प्रमुख नायक वहां उपस्थित थे। चन्द्रबाला के मुख से निकला हुआ अंतिम वाक्य उन सेनानायकों ने सुन लिया था। वह वाक्य था—"भ्रातृघाती ब्रह्मदत्त को तीर्थंकर महावीर के चरणों में न ला सकी।"

इस एक वाक्य ने संपूर्ण अंग जनपद में तर्क-वितर्क का झंझावात उत्पन्न कर दिया। वे दोनों नायक राज-भक्ति से शून्य हो गये। ब्रह्मदत्त के विरुद्ध जनमत प्रबल हो उठा।

वर्षा ऋतु समाप्त हुई। उन दिनों भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य मौद्-गल्यायन बहुत-से भिक्षुओं के साथ चम्पा में ही थे। भिक्षुओं ने वर्षावास के पश्चात् प्रवारण-उत्सव का आयोजन किया। उस उत्सव में चम्पा के अधिकतर नागरिक उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए।

सामंत सुमन बहुत दिनों तक अपने प्रासाद में ही बैठे रहे—इस कारण से नहीं कि उनके प्रासाद के चारों ओर गुप्तचर एवं सैनिक तैनात थे। सामंत की दृष्टि में उन सैनिकों की उपस्थिति का कोई महत्व नहीं था। उन्हें भय था तो अपने-आप से। जिस संयम, मर्यादा, परंपरा एवं कर्तव्य-निष्ठा के प्रतीक बनकर वे आज तक सुविख्यात थे, वे ही गुण अब द्विधा-ग्रस्त होकर विराट प्रश्न-चिह्न बन गये थे। और सामंत जब भी किसी कार्यवश नगर में निकलने का कार्यक्रम बनाते, उनके मस्तिष्क में पुरानी मान्यताएं अट्टहास कर उठतीं और उनके पांवों में अकर्मण्यता लिपट जाती। वे सोचते कि यदि नागरिकों ने उनसे राजा के संबंध में प्रश्न किये, तो वे क्या उत्तर देंगे? वस्तुत: वे राजा के प्रति विक्षोभ एवं विद्रोह-भाव से भरे हुए थे; किंतु, राजद्रोही होने के कलंक से घबराते भी थे।

प्रवारण-समारोह के अवसर पर वे अपने प्रासाद से बाहर निकलने के लिए लाचार हो गये। सामंत सुमन धर्मभीरु व्यक्ति थे। उनकी पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्य भी भगवान बुद्ध के धर्म में अखंड आस्था रखते थे। जब उन्होंने सुना कि आज के प्रवारण-समारोह में उपदेश देने के लिए भगवान के प्रिय शिष्य मौद्गल्यायन स्वयं उपस्थित हैं, तब उन्हें समा-रोह में सम्मिलित होने के लिए बाहर निकलना ही पड़ा।

प्रातःकालीन मंद पवन पर विचित्र गांभीर्य संतरण कर रहा था। सैकड़ों नागरिक नगर के पश्चिम चम्पा नदी के तट पर स्थित कूटागारशाला की ओर चले जा रहे थे—कोई अश्व पर, कोई रथ पर तो कोई पैदल। विक्षुब्ध वातावरण की छाया प्राय: सभी नागरिकों की आंखों में बैठी हुई थी।

सामंत सुमन स्वयं अश्व पर थे और उनके परिवार के सदस्य दो रथों पर। प्रासाद के मुख्य द्वार से कुछ दूर चार-पांच रहस्यमय व्यक्ति अन्य-मनस्क भाव से चक्कर काट रहे थे। सामंत सुमन ज्यों ही अपने परिवार

के साथ प्रासाद से बाहर निकले, वे रहस्यमय व्यक्ति चौंककर देखने लगे। सामंत अपने अश्व पर प्रायः निरस्त्र बैठे थे; मात्र एक खड्ग उनके बायें कटिप्रदेश में लटक रहा था। सब लोग चल पड़े। वहां से डेढ़ योजन दूर पर कूटागारशाला स्थित थी।

होनी को क्या कहिए ! सामंत सुमन अभी आधा योजन दूर ही गये होंगे कि धूल उड़ाते हुए सौ अश्वारोही सैनिक उनके पास आ पहुंचे और उन्हें एव उनके परिवार को घेर कर खड़े हो गये। प्रथम तो सामंत को आश्चर्य हुआ; किंतु, तत्क्षण ही उन्होंने वस्तुस्थिति भांप ली और क्रुद्ध स्वर में कहा :

"इसका क्या तात्पर्य है ?"

"महाराज की आज्ञा से आपको बंदी बनाया जाता है।"—अश्वारोहियों के नायक ने आगे बढ़ कर कहा।

"कारण ?"

"राजद्रोह। आप मगध की सीमा की ओर बढ़े जा रहे थे।"

वहां भीड़ एकत्र होने लगी। जो भी कूटागारशाला की ओर जा रहे थे, वहीं रुक गये। सामंत सुमन ने किंचित् उग्र स्वर में स्थिति स्पष्ट करने के ढंग से कहा :

"किंतु, मैं तो अपने परिवार के साथ प्रवारण-समारोह में सम्मिलित होने के लिए कूटागारशाला जा रहा था।"

"इसके लिए आपको महाराज की अनुमति ले लेनी चाहिए थी।"

"क्या अब हमें प्रत्येक कार्य के लिए महाराज की अनुमति लेनी पड़ेगी ?"

"जी हां।"

"धार्मिक कार्य-कलापों के लिए भी ?"

"जी।"

"प्रत्येक कार्य के लिए राजा की अनुमति लेना राजा की दुर्बलता एवं देश के भीतर छिपी हुई अशांति को सूचित करता है।"

"आप अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं, आर्य ?"—नायक ने उग्र स्वर में कहा। सामंत सुमन अब परिस्थिति का सामना करने को

प्रस्तुत थे। मुस्कराते हुए बोले :

"वीरोचित मर्यादा की सीमा अनाचारी राजा के रक्त से खींची जाती है।"

"सावधान सामंत सुमन !"—नायक चीख उठा। सामंत सुमन मुस्कराते हुए बोले :

"उद्दंडता गांभीर्य के अभाव की अभिव्यक्ति है और गांभीर्य शक्ति एवं सामर्थ्य से उद्भूत होता है। तुम्हारा अद्भुत साहस तुम्हें हास्यास्पद बना रहा है।"

सामंत सुमन का व्यंग्य सुनकर नायक झुंझलाहट से भर गया। खीझ कर बोल उठा :

"आप मेरे साथ कारागार में चलते हैं या···?"

"और यदि न जाऊं, तो ?"

"तो मुझे लाचार होकर शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा।"

"अच्छा, तो तुममें शक्ति भी है ?"

"क्या आपको ये सशस्त्र सैनिक दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं ?"

"वह तो मैं देख रहा हूं। किंतु, सैनिक तो शक्ति के नहीं, शासन के प्रतीक होते हैं। शक्ति का उत्स तो यहां है—नागरिकों के इस समुदाय में जो अभी चकित, विस्मित एवं मौन खड़ा है। इनका मौन रुद्र के फुत्कार से भी भयावह होता है। नायक, मैं तुम्हारे साथ चला चलता हूं। किंतु, इस मौन समुदाय को साक्षी बना कर जाता हूं।"

सामंत सुमन की गंभीर वाणी सुनकर एकत्र समुदाय में खलबली मच गयी। सामंत अपने परिवार के सदस्यों को प्रवारण-समारोह में जाने का आदेश देकर सैनिकों के साथ कारागार की ओर चल पड़े। वहां एकत्र समुदाय विक्षोभ से भरा हुआ खड़ा रहा और सामंत को जाते देखता रहा।

सामंत सुमन दृष्टि से ओझल हो गये। एकत्र समुदाय की तंद्रा टूट गयी। वृद्ध, बालक एवं नारियां कूटागारशाला की ओर चल पड़ीं—खिन्न, परितप्त, कातर एवं लाचार होकर। तरुण एवं प्रौढ़ नगर की ओर लौट चले—क्रोध, वितृष्णा, प्रतिशोध एवं शौर्य की ज्वाला में जलते हुए।

"सामंत सुमन बंदी बना लिये गये !"—यह समाचार विद्युत की भांति चम्पा नगर में, बल्कि समस्त अंग जनपद में दौड़ गया।

"राजा ब्रह्मदत्त भ्रातृघाती है।"—यह सत्य नागरिकों के कंठ में अटककर रह गया।

"मगधेश्वर बिम्बिसार कदाचित् अंग की राजकुमारी महा सती चन्द्र-बाला की कोख से ही उत्पन्न हुआ; इसीलिए, उसे हर्यंक कुलीन कहा जाता है।"—यह बात लोगों मे आस्था बनकर जल उठी।

अंग जनपद में ज्वालामुखी सुलगता रहा। राजा ब्रह्मदत्त अपने आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने में तथा रिक्तकोष को भरने एवं सैनिकों की संख्या बढ़ाने में जुटा रहा।

महामात्य वर्षकार अश्वारूढ़ होकर गिरिव्रज के बाहर वेणुवन की ओर उड़े चले जा रहे थे। उनके साथ थे सेनापति सुनीथ एवं दो अंगरक्षक अश्वा-रोही सैनिक। सूर्य पश्चिमी क्षितिज पर उतर चुका था। पृथ्वी पर प्रकाश की छाया-मात्र शेष रह गयी थी। हवा कुछ तेज बह रही थी। आकाश में, इधर-उधर, बादल के टुकड़े तैर रहे थे।

वेणुवन पीछे छूट गया। फिर भी वे लोग चले जाते रहे। कुछ ही काल पश्चात् मक्खलिगोसाल का आश्रम आ गया। सभी अश्वारोही अश्व से उतर पड़े। महामात्य एवं सेनापति ने अपने अस्त्र-शस्त्र उतारकर अंग-रक्षकों के सुपुर्द कर दिये और दोनों आश्रम में प्रविष्ट हुए।

वहां का दृश्य विचित्र था। ग्रीष्मकाल में भी चारों ओर धूनी लगी हुई थी। धूनी से आग की छोटी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। प्रत्येक तापस चार-चार धूनियों से घिरा हुआ था। अधिकतर तापस उकड़ूं बैठे थे। कुछ तापस वृक्षों की डालियों से सिर के बल लटक रहे थे। कोई सन का वस्त्र पहने था तो कोई केश-कंबल, कोई कुश चीर धारण किये था तो कोई उलूक पक्ष। कुछ तापस कांटों पर सो रहे थे तो कुछ केश-लुंचन में व्यस्त थे। अद्भुत अतिमानवीय दृश्य उपस्थित था। दुर्बल हृदय का मनुष्य तो वह दृश्य देख भी नहीं सकता था।

एक वृक्ष के नीचे मक्खलिगोसाल विराजमान थे। उनके निकट ही ब्राह्मण कुमार पुष्पपाल बैठा था। महामात्य तथा सुनीथ ने मक्खलिगोसाल की वन्दना की। गोसाल मौन धारण किये, निष्क्रिय ही बैठे रहे। कुछ काल पश्चात् महामात्य ने विनम्र स्वर में निवेदन किया :

"सेवक उपस्थित है शास्ता ! क्या आज्ञा है ?"

"क्या कर सकता है तू ? तू तो अवश है, अवीर्य है। सब सत्व अवश हैं।"—मक्खलिगोसाल जैसे नींद से उठते हुए बोले।

महामात्य किंचित् और विनम्र होकर बोले :

"शास्ता सत्य ही कहते हैं।"

"फिर आज्ञा क्यों मांगता है ?"

"शास्ता ने मुझे यहां आने का आदेश दिया था। उसी का हेतु जानने की जिज्ञासा थी।"

"हेतु कुछ नहीं होता। सभी कार्य स्वतः संपादित होते रहते हैं। तुझे नियति ही यहां तक खींच लायी है। उस ब्राह्मण-पुत्र को देख रहा है ?"

"हां भगवन् !"

"उसे भी नियति ही यहां तक खींच लायी है। वह अपने को तक्षशिला का स्नातक कहता है। ब्राह्मण है, फिर भी भाग्य के आघात-प्रतिघात से उत्पीड़ित है। तुझे एक ऐसे ही तरुण की आवश्यकता थी। थी न ?"

वर्षकार आश्चर्यचकित होकर सुनीथ की ओर देखने लगे। सुनीथ तो विमुग्ध हो उठा। वर्षकार ने अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए कहा :

"थी तो। किंतु, आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"ऋद्धि-प्राप्त शास्ता के लिए कोई गूढ़ रहस्य नहीं होता। इसे अपने साथ ले जा और अपना कार्य सिद्ध कर। इसका भी इसी में कल्याण है। यह बिल्व ग्राम का निवासी है। इसके घर में इसका वृद्ध पिता और इसकी छोटी कुमारी बहन है। ले जा इसे।"

महामात्य वर्षकार ने मगध के भाग्य को सराहा। उन्हें आजीवकों के नियतिवाद में आस्था हुई। पुष्पपाल को सुनीथ के संरक्षण में अपने प्रासाद में भेजकर महामात्य स्वयं धवलगृह की ओर चल पड़े। महाराज को तुष्ट करने का उन्हें अच्छा अवसर हाथ लगा। महाराज मुखशाला में विराजमान थे और अपने बड़े कुमार राजा दर्शक से विचार-विमर्श कर रहे थे। वर्षकार ने आते ही निवेदन किया :

"यदि अकिंचन की धृष्टता क्षमा करें तो एकांत का निवेदन करूं।" राजा दर्शक अपने पिता की आज्ञा लेकर वहां से बाहर चले गये। मुखशाला में क्षण-भर शांति छायी रही। उस शांति को भंग किया महामात्य वर्षकार ने : "महाराज के आदेश का पालन कर दिया गया।"

महाराज ने आश्चर्य से पूछा :

"कैसा आदेश ?"

"गणिका सालवती का पुत्र···"

"कहां है वह ?"—महाराज अधीर हो उठे—"क्या वह गिरिव्रज में है ?"

"हां श्रीमन् !"

"ओह ! आप अद्भुत पुरुष हैं, महामात्य ? आप नररत्न हैं।"

"यह सब महाराज के ही प्रसाद का प्रताप है। किंतु, महाराज ! एक निवेदन है।"

"हां-हां, कहिए।"

"गणिका सालवती अब पुत्रवती हो गयी। उसकी उम्र भी अधिक हो चुकी है। अतएव, अब किसी अन्य कुमारी को नगरवधू के पद पर आसीन करने की व्यवस्था होनी चाहिए।"

"हां-हां, तो इसमें आपत्ति ही क्या है ?"

"स्वयं आप।"

"ऐं···?"

"हां श्रीमन् !"

"आप कहते क्या हैं महामात्य ? मैं बिम्बिसार परंपरा के रक्षक के रूप में विख्यात हूं। और आप···"

"कदाचित्, आपको स्मरण होगा कि सालवती को नृत्य-गीत-वादित्र की प्रतियोगिता करके नगरवधू के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।"

"हां, स्मरण है।"

"सालवती सौंदर्य-प्रतियोगिता में भी सर्वश्रेष्ठ घोषित की गयी थी।"

"हां।"

"और तब सालवती ने अपना मिलन-शुल्क वैशाली की अम्बपाली से ठीक दुगुना निश्चित किया था।"

"निस्संदेह, सालवती अम्बपाली से श्रेष्ठ है।"

"किंतु, देशभक्ति एव विवेक में सालवती अम्बपाली के समक्ष तुच्छ है। सालवती ने पुत्रोत्पत्ति की कथा गुप्त रखकर आपके साथ छल किया, जबकि अम्बपाली पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा लेकर ही आपसे मिली।"

"आप सत्य कहते हैं, महामात्य !"

"और देवी अम्बपाली के पुत्र कुमार विमल कुन्दन मगध के राजकुमार हुए, आपके उत्तराधिकारी बने।"

"वह तो होना ही था।"

"फिर सालवती का पुत्र भी तो आपका उत्तराधिकारी होगा।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैंने अम्बपाली को वचन दिया था और विमल जन्म लेने के कुछ ही महीने पश्चात् मगध चला आया। तब से वह मेरे ही सान्निध्य में पुत्रवत् पला है, राज-परिवार का विधिवत् सदस्य बन गया है। किंतु, सालवती को न तो मैंने वचन दिया, न मैं इस तथ्य से ही आरंभ में परि-

चित कराया गया कि उसकी कोख से मुझे पुत्र हुआ और न ही उसका पुत्र मेरे सरक्षण में पलकर मेरा स्नेह अर्जित कर सका। अपनापन तो मोह से उत्पन्न हाता है और मोह सान्निध्य से।"

"और यदि सालवती ने अपने पुत्र का अधिकार मांगा ?"

"तो उसे जीने के अधिकार से वचित होना पड़ेगा।"

"इसका बहुत ही सरल उपाय है।"

"वह क्या ?"

"सालवती जब सभी प्रतियोगिताओं में सर्वप्रथम घोषित हुई थी तब उसे अनुभव हुआ कि विश्व में उससे सुंदर नर्तकी जन्म ही नही ले सकती। अतएव उसने अहंकारवश संकल्प कर डाला कि नृत्य, गीत या सौंदर्य की प्रतियोगिता में कभी भी पराजित होने पर वह विष खाकर प्राण दे देगी।"

"अच्छा ?"

"हां श्रीमन् !"

"तो क्या आप नयी नगरवधू के लिए प्रतियोगिता का आयोजन करना चाहते हैं ?"—महाराज ने असहमति के स्वर मे पूछा। वर्षकार महाराजा की व्यथा भांप गये। बोले :

"मगध की अखंडता के लिए यह आवश्यक है कि अंग-विजय के पश्चात् जो समारोह किये जायं, उनमें प्रतियोगिता का कार्यक्रम भी सम्मिलित कर लिया जाय।"

"नहीं महामात्य ! मैं इतना क्रूर नहीं बन सकता। सालवती जीवित रहेगी।"

"इसीलिए, मैंने निवेदन किया था कि परंपरा के निर्वाह में आप ही बाधक हैं।"

"ऐसी परंपरा भी क्या जिसके लिए प्रेम, करुणा, क्षमा एवं अनुग्रह का भाव ही त्याग देना पड़े।"

"देश की वेदी पर व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि तो देनी ही पड़ती है, महाराज !"

"ऐसा अवसर आयेगा तो मैं देश को ही त्याग दूंगा।"

"फिर आपकी प्रतिज्ञा का क्या होगा, जो आपने राज्याभिषेक के अव-सर पर सभासदों के समक्ष ली थी ?"

"सिंहासन त्याग देने के पश्चात् प्रतिज्ञा निरर्थक हो जायेगी।"

"आपकी जैसी इच्छा महाराज ! मैं सालवती के पुत्र को···"

"उसकी मां के पास भिजवा दीजिए।"

"जो आज्ञा !"

सेनापति सुनीथ महामात्य के प्रासाद में पुष्पपाल के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। वर्षकार के वहां पहुंचते ही दोनों उठ खड़े हुए। वर्षकार ने आसन ग्रहण करते हुए तीक्ष्ण दृष्टि से पुष्पपाल को देखा। पुष्पपाल भय से सिहर उठा। वर्षकार ने कहा :

"तुम्हें क्या चाहिए ?"

"जीविकोपार्जन का अवसर।"—पुष्पपाल ने कांपते स्वर में निवेदन किया। वर्षकार ने तत्क्षण ही पूछा :

"अधिकार पाना चाहते हो या कृपा ?"

"मुझे तो कृपा की ही भिक्षा दीजिए, श्रीमन् !"

"तो सुनो ! तुम्हें अधिकार एवं कृपा, दोनो ही प्रदान करता हूं। भूलकर भी अधिकार का यह आतंक मुझ पर स्थापित करने का प्रयत्न मत करना। अन्यथा, क्षण-भर में विनष्ट हो जाओगे।"

'ऐसी कृतघ्नता की अपेक्षा मुझसे न रक्खें, श्रीमन् ! मैं आपको ईश्वर मानकर पूजूंगा।"

"सालवती का नाम सुना है ?"

"कौन ? नगरवधू ?"

"हां, वही। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व उसे एक पुत्र हुआ था और उसी दिन किसी कारणवश उसे अपने पुत्र को त्यागना पड़ा। उसका वह पुत्र कौन है, यह मैं जानता हूं—भली भांति जानता हूं। तुम्हें मालूम है कि वह कौन है ?"

"जी ?···मुझे कैसे मालूम हो सकता है, भला ?"

"तुम्हें मालूम होना चाहिए। क्योंकि···क्योंकि तुम्हीं उसके पुत्र हो।"

"जी ?"

"हां ! तुम उसके पुत्र हो। बल्कि तुम्हें मैं उसके पुत्र के पद पर नियुक्त करता हू। तुम्ह अपने कर्त्तव्य का पालन सहज-स्वाभाविक ढग से उत्साह-पूर्वक करना है। सालवती अपने पुत्र का मुख देखने को व्यग्र है।···धवल-गृह से ही मैं सालवती को सूचना भेज चुका हू कि वह शीघ्र यहा आ जाय। अब वह आती ही होगी।"

महामात्य की भविष्यवाणी तत्क्षण ही फलीभूत हो गयी। उन्होंने अभी वाक्य पूरा ही किया था कि प्रतिहारी ने सालवती के आगमन की सूचना दी। प्रतिहारी को विदा करके महामात्य ने कहा :

"सावधान पुष्पपाल ! तुम्हारी मा आ रही है और तुम्हारी मां मगध-पति बिम्बिसार की प्रेमिका है। अतएव, तुमसे मगध महाजनपद त्याग की अपेक्षा रखता है। अपनी सामर्थ्य से बाहर जाने का प्रयत्न मत करना।"

"किंतु क्या मैं सचमुच···"

"चुप रहो ! सालवती आ रही है।"—सुनीथ ने धीमे स्वर मे कहा।

सालवती ने आसन ग्रहण किया ही था कि महामात्य की बात सुन कर वह चौककर खड़ी हो गयी, जैसे वह अगारे पर बैठ गयी हो। महामात्य रुक-रुक कर कह रहे थे : "देवी सालवती ! आपका पुत्र मिल गया है।··· किंतु, अब आपको सार्वजनिक जीवन से अवकाश ले लेना चाहिए···"

"कहां है मेरा पुत्र ?"

"आपके सामने बैठा है।···पुष्पपाल ! अपनी मां को प्रणाम करो।"

पुष्पपाल ने सालवती की अभिवदना की। वह इस चमत्कारपूर्ण वातावरण से इतना प्रभावित हो गया कि उसकी चेतना ही विलुप्त हो गयी थी। वह निष्प्राण-सा अपनी मां को निहार रहा था। सालवती ने पुष्पपाल को देखा, क्षण-भर देखती ही रही और फिर वह दौड़कर अपने पुत्र से लिपट गयी। उसकी आंखों से अविरल अश्रुधार प्रवाहित होने लगी। साल-वती उन्मादिनी की भांति कभी अपने पुत्र का मुख देखने लगती, तो कभी उसके मुख, नाक, गाल पर हाथ फेरने लगती और फिर उसे वक्ष से लगा लेती। सालवती का निश्छल प्रेम देखकर वर्षकार जैसे शुष्क नीतिज्ञ का हृदय भी अपने कृत्य पर कांप उठा।

सालवती को तो जैसे नया जीवन मिल गया। वह हंसती-रोती हुई बोली :

"मुझे सब कुछ मिल गया, आर्य ब्राह्मण! मुझे अब कुछ नहीं चाहिए, जीवन भी नहीं। ले लो अपना यह नगरवधू का पद। बस, मुझे तो अपना पुत्र चाहिए था, सो मिल गया। आज मैं धन्य हो उठी, कृतकृत्य हो गयी। महामात्य, इसके बदले तुम चाहो तो मेरे प्राण भी ले सकते हो, मेरी संपूर्ण संपत्ति ले सकते हो। आह! मैं कितनी भाग्यशालिनी हूं। मेरा खोया हुआ पुत्र मुझे मिल गया, सेनापति! मेरे भाग्य को सराहो, मुझसे ईर्ष्या करो..."

सालवती का विराट स्नेह पाकर पुष्पपाल भी अपनी कृत्रिमता खो बैठा। वह मातृ-प्रेम के सहज स्रोत में बह चला। सालवती उसे रथ पर बैठाकर अपने प्रासाद मे ले चली।

एक अनजान तरुण को सालवती के साथ रथ पर जाते देखकर नागरिकों को कौतूहल हुआ। आंखों-आंखों में ही असंख्य कहानियां चल पड़ीं। कुछ ही काल पश्चात् नगर मे यह बात फैल गयी कि सालवती का पुत्र घर लौट आया है।

अनुला पूर्णतया स्वस्थ हो गयी। शनैः-शनैः उसकी दुर्बलता भी जाती रही। अब वह बिना किसी कठिनाई के चल-फिर सकती थी। उसका अनुपम सौंदर्य खिल उठा था, बल्कि द्विगुणित हो गया था; उसकी त्वचा कुछ और

स्निग्ध हो गयी। उसका रग कुछ और निखर आया। उसके अधर कुछ और रक्तिम एव रसपूर्ण हो उठे। यह सब देख कर सालवती आनद एवं उल्लास से भर उठी। और जब उसका बिछुडा हुआ पुत्र पुष्पपाल उसे मिल गया तब तो वह मारे प्रसन्नता के उन्मत्त-सी हो उठी।

सालवती के प्रासाद मे जीवक का आना-जाना कुछ कम हो गया। वास्तव मे, अब जीवक की वहा कोई आवश्यकता नही थी। किंतु, अनुला के स्नेह ने उसे आबद्ध कर लिया था। अतएव, उसे एक-दो दिन के अतराल पर आना ही पडता था। अनुला का सहवास उसे अप्रिय नही लगता था। रोग के हेतु एव उसके निदान की चिता ही जीवक का जीवन बन गयी थी। किंतु, नीरोग अनुला की सगति जीवक को किंचित् सरसता प्रदान करती। क्षण-भर के लिए वह अपने सामान्य जीवन से विलग हो जाता और इस विलगाव मे वह विघटन का अनुभव नही करता, प्रत्युत नई प्रेरणा, नया उत्साह एव अनिर्वचनीय आनद की स्निग्धता से आप्लावित हो उठता था।

सालवती भी जीवक को अत्यधिक श्रद्धा एव स्नेह देने लगी थी। जीवक को देखकर सालवती को लगता, जैसे उसका अपना भाव ही अभाव की पूर्ति के लिए साकार हो उठा हो, जैसे उसका अपना स्वर ही प्रतिध्वनित होकर लौट आया हो, जैसे उसकी अपनी साधना ही वेदना का स्मरण दिलाने के हेतु फलीभूत हो उठी हो। जीवक को देखकर सालवती को देवता के दर्शन का सुख मिलता। सालवती सोचती : 'क्या मैं एक-साथ इतने सुख प्राप्त करने की अधिकारिणी हूं ?···क्या मेरा भाग्य इतना अच्छा है ?···कहीं विधाता मेरे साथ खिलवाड तो नहीं कर रहा है ?··· मेरी पुत्री को जीवन मिला।···मेरा पुत्र बीस वर्ष बाद घर लौट आया ? ···क्या यह सब मेरे पुण्य का प्रताप है ?···किंतु, मैंने पुण्य ही क्या किया ?···मैं जीवन-भर सबको छलती आयी।···कितने घर मैंने नष्ट कर दिये।···कितनी सुहागिनों का आनंद छीन लिया।···न जाने कितनो को उन्मत्त एवं दरिद्र बना दिया।···क्या मुझ जैसी पापिन को भगवान महेश जैसे शरणागत वत्सल भी क्षमा कर सकते हैं ?···कितना आश्चर्य है ?··· कैसा अद्भुत संयोग है ?···यह सब क्यों हुआ ?···कैसे हुआ ?···ठीक !

···स्मरण आया ! ···जब से कौमारभृत्य जीवक के चरण मेरे घर में पड़े, तभी से मेरे भाग्योदय का आरंभ हुआ। जीवक ! आह ! कितना सार्थक नाम है। उसने स्वयं जीकर मुझ मृतप्राय अभागिनी को भी जीवित कर दिया।"

सालवती का रोम-रोम जीवक के अनुग्रह का ऋणी हो उठा। किंतु, सालवती के अनुगृहीत होने के भाव में संकोच, दुराव या हीनता का भाव नहीं था। वह तो जीवक को देखते ही पुलकित हो उठती, आनदातिरेक से उन्मुक्त हो उठती थी। उस सहज भाव-प्रवाह मे शिष्टाचार तिनके की तरह बह जाता।

आरभ मे पुष्पपाल को सारी घटनाएं स्वप्नवत् लगी। उसे विश्वास नही हुआ कि वह पल-भर मे रंक से राजा बन गया है। किंतु, धीरे-धीरे उसे मक्खलिगोसाल के नियतिवाद में आस्था हो चली। उसे अपने भाग्य पर विश्वास हो चला। अतीत की कठिनाइयां, उसके सीमित दृष्टिकोण का प्रश्रय पाकर प्रतिशोध एवं अहंकार के सांचे मे विकसित होने लगी।

अनुला से मिलकर पुष्पपाल के हृदय मे भाई का-सा स्नेह न जगना स्वाभाविक ही था। पुष्पपाल ने अनुला को देखा और न जाने क्यों, वह कुछ काल तक उसे देखता ही रह गया। अनुला को वह दृष्टि अच्छी नहीं लगी। पुष्पपाल, कदाचित्, कुछ काल तक यो ही देखता रहता कि तभी कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने का महामात्य वर्षकार का आदेश उसके मस्तिष्क में गूंज उठा। और तब वह कृत्रिम उल्लास प्रदर्शित करता हुआ बोला :

"सुना, तुम अस्वस्थ थीं !"

अनुला ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया :

"ठीक ही सुना।"

"अब कैसी हो ?"

"कौमारभृत्य जीवक की कृपा से अब बिल्कुल स्वस्थ हूं।"

"हां, इस जीवक का नाम मैंने अपने···" पुष्पपाल अपने पिता का उल्लेख करने जा रहा था कि अचानक उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसने स्थिति संभालते हुए कहा : "मैंने···उसका नाम मैंने बहुत सुन रक्खा है।

वह तो अद्भुत वैद्य है। अब मालूम हुआ कि वह भाग्यशाली भी बहुत है।"

"आपका तात्पर्य ?"—अनुला ने रूक्ष स्वर में प्रश्न किया। पुष्पपाल ऐसे प्रश्न के लिए प्रस्तुत नहीं था। वह हतप्रभ हो उठा। बोला :

"यही कि···यही···कि···कि आजकल बड़े-बड़े गुणी इधर-उधर धक्के खाते फिर रहे हैं। यह तो भाग्य की ही कृपा थी कि जीवक को राजाश्रय मिल गया।"

"राजाश्रय तो एक साधारण सैनिक को भी मिला हुआ है और सेनापति सुनीथ एवं महामात्य वर्षकार को भी।"

"भाई-बहन में यह राजनीतिक विवाद कैसा ?"—सालवती वहां पहुंचकर पूछ बैठी। उसने अनुला का अंतिम वाक्य सुन लिया था।

"भ्राता को कौमारभृत्य जीवक की ख्याति से अकारण ईर्ष्या हो रही है। मैं उसी का निराकरण कर रही थी।"—अनुला ने मुस्कराते हुए कहा। पुष्पपाल अपनी झेंप मिटाने के लिए अट्टहास-सा कर उठा। मां-बेटी ने आश्चर्यचकित होकर पुष्पपाल की ओर देखा। पुष्पपाल की दृष्टि मां-बेटी के आश्चर्यचकित मुखमंडल पर पड़ी। और तब अचानक ही उसका अट्टहास बंद हो गया।

उस दिन कौमारभृत्य जीवक जब सालवती के घर पहुंचा तब सूर्यास्त हो रहा था। अनुला मुखशाला में बैठी थी। उसका भाई पुष्पपाल भी वहीं उपस्थित था। कुछ ही दिनों में पुष्पपाल का रूप-रंग बदल गया था। अब यदि उसका पिता भी उसे अचानक देख लेता तो पहचान पाने में उसे कठिनाई होती। उसकी देह पर कुछ नहीं तो कम-से-कम चार आढ़क[१] मांस चढ़ गया था। उसकी पुष्ट देह असंतुलित होने लगी थी। सुख, आनंद एवं ऐश्वर्य ने उसके मुखमंडल की भंगिमा भी परिवर्तित कर दी थी। बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करके वह सचमुच ही कोई अन्य पुष्पपाल बन गया था। अब वह अपने-आपको बहुत महान सम्मानित व्यक्ति समझने लगा था। जीवक को देखकर अनुला आंतरिक आह्लाद से बेसुध हो खड़ी हो गयी। जब कभी जीवक उसके पास आता था, वह अपनी चेतना खो देती थी।

१. एक आढ़क ढाई सेर के बराबर होता था।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ। यद्यपि पुष्पपाल जीवक से भली भांति परिचित हो चुका था, फिर भी उस दिन पुष्पपाल ने जीवक के साथ प्रतिसम्मोदन नहीं किया। वह चुपचाप बैठा ही रहा। उपेक्षा एवं ईर्ष्या का भाव उसकी आंखों में चित्रित हो उठा था। जीवक ने इस तथ्य को देखकर भी नहीं देखा। उसने आसन ग्रहण करते हुए अनुला से कहा :

"अब तो तुम बिलकुल नीरोग हो गयी।"

"यह सब आपकी ही कृपा का फल है।"

"मेरी कृपा ! नहीं अनुले, कृपा तो वासुदेव कृष्ण की हुई। मैं तो निमित्त-मात्र था।"

"आपने अनजाने ही बहुत बड़ा सत्य कह डाला।"—पुष्पपाल गाम्भीर्य के अतिरेक से बोझिल स्वर में बोल उठा : "मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। सब कुछ अपने-आप होता रहता है। होनहार को कोई नहीं रोक सकता। भगवान मक्खलिगोसाल का भी यही उपदेश है।"

"क्या आप मक्खलिगोसाल के अनुयायी हैं ?"—जीवक ने प्रश्न किया। पुष्पपाल घबरा कर बोला :

"नहीं तो। मैं तो···मैं तो···मैंने···मुझे एक बार उनका प्रवचन सुनने का अवसर मिला था।" जीवक कुछ सोचता हुआ पुष्पपाल को देखता रहा। पुष्पपाल को लगा, जैसे जीवक उसे देख कर मुस्करा रहा है। पुष्पपाल को इसमें कुछ भेद जान पड़ा। वह सचमुच घबरा गया। बोला : "आपको मेरी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है ? आप यदि एक बार भी उनके प्रवचन सुन लें तो आप···आ···प।"

"मैं उसका प्रचारक बन जाऊंगा। यही न कहना चाहते हैं, आप ! किंतु मुझे अपने कर्म तथा गुण पर भरोसा है। भाग्य या नियति पर नहीं।"

"तो किसे अपने गुण पर भरोसा नहीं है ? क्या मैं गुणी नहीं हूं ? मैं भी तक्षशिला···"

"आप तक्षशिला में पढ़ चुके हैं ?"

"आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ?"

"आश्चर्य नहीं, विश्वास हो रहा है।"

"क्या विश्वास हो रहा है ?"

"अपनी स्मरण-शक्ति पर।"

"जी ?"

"जी हां ! मुझे लगता था कि आपको कहीं देखा है। अब भली भांति स्मरण हो आया। आप मेरे गुरु आत्रेय के पास शिक्षा पाना चाहते थे··· आप कुछ दिन उनके अंतेवासी होकर रहे भी; किंतु, कुछ ही दिन रह सके··· और···और···"

"हां-हां, मुझे भी स्मरण हो आया। मैं भगवान आत्रेय के पास था, तभी आप वहां पधारे थे।"—पुष्पपाल ने घबराकर जीवक का वाक्य पूरा कर दिया। वह क्षण-भर मे ही श्रीहीन हो गया। पसीने से उसका भाल भीग गया। उसका कंठ सूखने लगा। जीवक को दया आ गयी। वह मुस्कराता हुआ अनुला से बोला : "यहां तो भीषण गर्मी पड़ रही है। क्यों पुष्पपाल जी ?"

"जी हां ! बहुत गर्मी है···देखिए न, मैं तो पसीने-पसीने हो रहा हूं।"—पुष्पपाल ने लजायी हंसी हंसते हुए कहा। जीवक क्षण-भर पुष्पपाल का मुख देखता रहा। अनुला आश्चर्यचकित होकर दोनों का वार्तालाप सुन रही थी। उससे पुष्पपाल की मनःस्थिति छिपी नहीं रही। किंतु, वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी। हां, वह इतना अवश्य समझ गयी कि पुष्पपाल से पिंड छुड़ाने का यही स्वर्ण अवसर है। अतएव शीघ्रता से बोल उठी :

"क्यों न हम लोग उद्यान में चलें ?"

"हां-हां, बहुत अच्छा रहेगा। तुम लोग चलो। मैं अभी आता हूं।" पुष्पपाल इतना कहकर शीघ्रता से उठकर वहां से बाहर निकल गया। अनुला उसके विचित्र व्यवहार को अवाक् होकर देखती रह गयी। जीवक की मुस्कराहट कुछ और गहरी हो गयी। उसने द्वार की ओर देखते हुए कहा :

"तुम्हारा यह भाई बीस वर्ष पश्चात् कहां से आ टपका ?"

"विस्तार से मैं कुछ नहीं जानती। सुना, महामात्य वर्षकार ने मां पर यह कृपा की।"

"हूं।"

जीवक के मुंह से 'हूं' की ध्वनि निकलते ही अनुला ने उसकी ओर चौंककर देखा। जीवक द्वार से दृष्टि हटाकर अनुला को ओर देखता हुआ बोला : "महामात्य की माया भी देवी भगवती की माया की भांति अपार है।···चलो उद्यान में चलें।"

सुखशाला की अपेक्षा उद्यान में बहुत कम गर्मी थी। मंद-मंद पवन के पंख पर पुष्पों का पराग तिर रहा था। पुष्करिणी के आस-पास का वातावरण तो बहुत ही सुखकर था। दृश्य धूमिल था और वातावरण अनुरागमय।

पुष्पकरिणी के तट पर रक्ताशोक की छाया मे एक शिला-खंड रक्खा था। वहां का दृश्य तो अत्यधिक धूमिल था। अनुला तथा जीवक उसी शिला-खड पर बैठ गये। जीवक स्थिर-चित्त था, किंतु, अनुला का हृदय वेग से धड़क रहा था। जीवक ने धीमे स्वर में कहा :

"अनुला !"

"कहिए।"

"एक बात कहूं ? अन्यथा तो न सोचोगी ?"—जीवक के स्वर में वेदना का आभास था और गांभीर्य का प्राचुर्य। अनुला का हृदय आशंकित हो तीव्रतम वेग से धड़कने लगा। अपने पर सयम रखकर बोली :

"नहीं सोचूंगी।" अनुला का उत्तर सुनकर भी जीवक क्षण-भर मौन रहा, फिर बोला :

"ऐसा लगता है, जैसे मैं···मैं अपने कर्तव्य से च्युत हो गया होऊं।"

"ऐसा क्यों सोचते हैं आप ?"

"क्योंकि मैं काम ही ऐसा कर रहा हूं।"

"कैसा काम ?"

"यही···तुम्हारे साथ उठना-बैठना, तुम्हारे घर पर आना-जाना एक ऐसा काम है, जिसका मेरे कर्तव्य या व्यवसाय से कोई संबंध नहीं है। मैं वैद्य हूं। मुझे विभिन्न प्रकार के रोगियों की चिकित्सा करनी होती है। यदि मैं इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के स्नेहसूत्र में आबद्ध होता गया तो फिर चिकित्सा क्या करूंगा ?"

अनुला के हृदय की धड़कन रुक-सी गयी। वह वेदना से मन-ही-मन चीत्कार कर उठी; किंतु ऊपर से संयमित स्वर में बोली :

"क्या इसी प्रकार सबके स्नेहसूत्र में आबद्ध हुआ जा सकता है ? क्या स्नेह भी कोई देह की ओषधि है कि जिसने भी पुकार मचायी, आप उसे देने दौड़ गये ?"

"इसीलिए मैंने प्रश्न किया था कि तुम अन्यथा तो नहीं सोचोगी।"

"मैं अन्यथा नहीं सोच रही हूं। आपके भ्रम का निवारण कर रही हूं।"

"तुमने मेरा आशय नहीं समझा अनुले ! मैं तो यह कहने जा रहा था कि सबके साथ जब स्नेह का संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता, तब तुम्हारे साथ यह सब कैसे हो गया ? क्यों हो गया ? और अब हमारा मार्ग क्या होगा ? मैं तो इस द्वंद्व में उलझ रहा हूं कि हमारा संबंध वैद्य-रोगिणी का है या···"

"या ?"

"या अपनेपन का ? अब तुम स्वस्थ हो गयी हो; फिर भी मैं यहां क्यों आता हूं ? यह मार्ग हमें कहीं ले भी जायेगा या ऐसे ही भटकाकर विनष्ट कर देगा ? अनुला ! मैं तुम्हारे लिए दुर्बल हो गया हूं। जहां भी जाता हूं, तुम्हारी छवि आंखों के आगे तैरती रहती है। इसीलिए मैंने कहा कि मैं कर्तव्य-च्युत हुआ जा रहा हूं। कारण, मैं अपने कर्तव्य, दायित्व एवं व्यवसाय के प्रति न्याय नहीं कर पा रहा हूं।"

जीवक के भावोद्रेक सुनकर अनुला आत्मविभोर हो उठी। उसे अपनी

समझ पर ग्लानि उत्पन्न हुई। जीवक ने अनुला के दोनों हाथ पकड़ लिये। अनुला की देह कांपने लगी। बोली :

"मुझे क्षमा कर दो, प्रभो ! मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया। मैं बहुत ओछी हूं; तुम्हारे समक्ष तुच्छ कीट-सदृश हूं।"

"नहीं अनुले ! अपराध तो मेरा है। मैंने ही अपने विचार अस्पष्ट रूप में तुम्हारे सामने...ऐं !"—जीवक अपना वाक्य पूरा किये बिना ही चौंक उठा।

"क्या हुआ ?"—अनुला ने जिज्ञासा की।

"वह देखो ! तुम्हारी अट्टालिका की चंद्रशालिका पर कोई व्यक्ति खड़ा है और हम लोगों की ओर देखने का प्रयास कर रहा है।"

"अरे ! वे तो मेरे भ्राता जी हैं...पुष्पपाल !"

"अच्छा तो तुम्हारे भ्राताजी गुप्तचर भी हैं।"

"किंतु, उन्हे तो हम लोग दृष्टिगोचर होते नहीं होंगे।"

"कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो अकारण ही प्रत्येक बात में हस्तक्षेप करने का विफल प्रयास करना अपना धर्म मान लेते हैं।"—जीवक ने चंद्र-शालिका की ओर देखते हुए कहा। अनुला को क्रोध आ गया। बोली :

"मैं आज ही मां से कहूंगी।"

"नहीं। तुम ऐसा नही करोगी। तुम्हारी मां इन दिनों आनंद से अंधी हो रही है। अपने इस अविवेकी पुत्र से उन्हे अत्यधिक मोह है। इसके अतिरिक्त, तुम उनसे कहोगी भी क्या ?"

"आपका कथन सत्य है। अभी मौन रहना ही श्रेयस्कर है। किंतु..."

"किंतु क्या ?"

"आपको देखते ही वह ईर्ष्या से जल उठता है। इसके अतिरिक्त... अच्छा, एक बात बताइए।"

"पहले 'अतिरिक्त' के आगे का वाक्य पूरा करो।"

"नही, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

"दुराग्रह तुम स्त्रियो का सहज स्वभाव है। बोलो, क्या प्रश्न है तुम्हारा ?" जीवक ने हसकर कहा। अनुला मानिनी-सी बोली :

"और, स्त्रियों पर अकारण आरोप लगाते रहना आप पुरुषों का सहज अधिकार।"

"रूठ गयी?"—जीवक ने अनुला की ठोढ़ी पकड़कर उसे ऊपर उठाते हुए पूछा। अनुला मौन ही रही। जीवक ने स्नेह-सिक्त स्वर में कहा : "इस भंगिमा में तुम बहुत सुंदर दीखती हो।"

"पुरुषों की क्रूरता का यह दूसरा लक्षण है कि आघात पहुंचाकर परिणाम का आनंद लेते हैं।"

"यह तो तुमने सत्य का विषयांतर कर दिया। वास्तविकता तो यह है कि प्रेमिका अपने प्रेमी को प्रेम में उद्विग्न और उन्मत्त देखकर जीवन पाती है, उसे अपने वक्ष पर तड़पते देखकर तुष्ट होती है और उसके आंसुओं में अपने अस्तित्व की अखंडता ढूंढ़ती है। अनुले ! क्रूरता नारी की सुषुप्तावस्था है, जिसे नारी स्वयं तो अनुभव नहीं ही करती, पुरुष भी उस कक्ष तक बिना कुछ गंवाये नहीं पहुंच पाता। वही क्रूरता नारी का अमोघ अस्त्र है, जिससे दृढ़तम पुरुष भी बिंध जाता है। किंतु, मैं मानता हूं कि नारी मे वह क्रूरता आवश्यक है, अन्यथा पुरुष अपने दायित्व से बच निकलता।"

"आप तो नारी के प्रबल शत्रु प्रतीत होते हैं।"—अनुला ने मुस्कराते हुए कहा : "कहीं किसी नारी की क्रूरता के पात्र तो नहीं बन गये ?"

"अभी बना नहीं, बनने जा रहा हूं।···किंतु···तुमने अपनी बात तो पूरी की ही नहीं।"

"तक्षशिला की चर्चा होते ही मेरे भ्राताश्री इतने अस्तव्यस्त क्यों हो उठे ?"

"उस चर्चा को विस्मरण के अंधकार में तिरोहित कर देना ही श्रेयस्कर है।"

"क्यों ?"

"क्योंकि सभी घटनाएं कथनीय नहीं होती हैं।"

"फिर भी !"

"फिर वही दुराग्रह!"—जीवक हंसने लगा। अनुला चिढ़कर बोली : "यदि आप मुझसे दुराव रखते हैं, तो न कहिए।"

"दुराव नहीं अनुला ! पुष्पपाल तुम्हारा अग्रज है। अतएव, मैं तुम्हारे मन में उसके प्रति कोई वितृष्णा का भाव उत्पन्न करना नहीं चाहता। जो बीत गयी, सो बीत गयी।"

"मेरे मन में जो भाव उत्पन्न होना था, वह हो चुका।"

"क्या मुझे तुम्हारे मन के भाव को जानने का अधिकार है ?"

"मैं अपने इस भाई को लंपट से अधिक और कुछ नहीं समझती। मुझे तो लगता है, जैसे मा किसी प्रपंच का शिकार हो गयी हैं।"

"मेरा भी ऐसा ही अनुमान है। और तुम्हारे मन के भाव को सुनकर मुझे तुम्हारी सहज बुद्धि पर विश्वास हो गया है। तक्षशिला मे भगवान आत्रेय ने इसे दीन-दुखी जानकर आश्रय दिया था। किंतु, कुछ ही दिनों बाद यह दुष्ट अपने नग्न रूप में प्रकट हो गया।"

"क्या हुआ ?"

"पठन-पाठन की ओर इसकी थोड़ी भी रुचि नहीं थी। इसने वहां चोरी करना आरंभ कर दिया। इतना ही नहीं, इसने आचार्य की सुंदरी पुत्री पर भी बुरी दृष्टि डाली।"

"फिर ?"

"आचार्य मनुष्य नहीं, देवता हैं। उन्होंने इसे आश्रम से मात्र निष्कासन-दंड देकर क्षमा कर दिया। और कहा, तुम्हारे जैसे व्यक्तियों ने ही मगध के ब्राह्मणो को 'ब्राह्मण-बंधु' के कलंक से विभूषित किया होगा।"

"तब तो बड़ा पातकी है।"

"वह तो है ही।"

"तो क्या यह स्नातक नहीं है ?"

"कदाचित् नहीं। यह वर्षों तक कई गुरुओं के पास भटकता रहा और इसी क्रम में इसने थोड़ा-बहुत अध्ययन कर लिया होगा।"

"फिर यह मेरा भाई कैसे बन गया ?"

"तभी तो मैंने कहा था कि महामात्य वर्षकार की माया अपार है।"

"फिर मुझे कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए ?"

"तटस्थता का।"

"और आपके साथ ?"—अनुला ने नयनों की कोरों से देखते हुए

मुस्कराकर पूछा। जीवक ने अनुला की दोनों हथेलियां अपने हाथ में लेते हुए स्निग्ध स्वर मे कहा :

"हृदय का।"

अनुला आत्म-विभोर हो उठी। उसकी आंखें मुंद गयीं। वह अनायास ही स्वप्न-लोक में जा पहुंची और···तभी उसका अग्रज वहां आ पहुंचा। जीवक पूर्ववत् स्थिति में बैठा-बैठा ही बोला :

"कहिए, कैसे कष्ट किया?"

जीवक के प्रश्न से पुष्पपाल जल उठा। बोला :

"आपका प्रश्न बड़ा ही आक्रामक है।"

"जी?"

"जी हां। प्रेमाविष्ट होने के कारण आप अपनी स्थिति तक भूल बैठे हैं।"

पुष्पपाल का आशय परिलक्षित कर जीवक मुस्कराने लगा। कल का रंक आज ऐश्वर्यशालिनी सालवती का उत्तराधिकारी बन गया था। जीवक ने भी लाक्षणिक भाषा में उत्तर दिया :

"आपका सूत्र आपके ही योग्य है।···मैं आपके अतीत एवं वर्तमान, दोनों से परिचित हूं। अतएव, इतनी-सी बात कहने के निमित्त यहां आने का व्यर्थ ही कष्ट उठाया।"

पुष्पपाल क्रोध से ऐंठ कर रह गया। वह तिलमिला कर बोला : "मैं आपको यह सूचना देने आया हूं कि महामात्य वर्षकार ने आपको स्मरण किया है। उनका रथ बाहर द्वार पर खड़ा है।"

जीवक पूर्ववत् स्वर में बोला :

"सूचना के लिए धन्यवाद। भविष्य के लिए यह बात जान लीजिए कि आपकी सेवा के लिए यहां बहुत से परिचारक एव परिचारिकाएं हैं। इस तरह की सूचनाएं लाना उन्हीं लोगों को शोभा देता है।"

पुष्पपाल फिर क्रोध से उबलने लगा। किंतु, वह जीवक से भयभीत भी हो उठा था। अतएव, क्रोध को पीकर वहां से चलता बना। क्रोध अपना मार्ग अवरुद्ध पाकर घृणा का रूप धारण कर लेता है और घृणा मनुष्यता का संहार कर देती है। पुष्पपाल अकारण ही प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की

ज्वाला में कूद पड़ा। जीवक को राजाश्रय प्राप्त था; पुष्पपाल राज्याधिकार की इच्छा अपने मन में पालने लग गया।

पुष्पपाल के जाने के पश्चात् जीवक अपने-आप बोल उठा : "पता नहीं, यह अपने विनाश के मार्ग पर क्यों चल पड़ा है।"

"जहां इच्छा हो, वहीं जाने दीजिए। आप यह बताइए कि दर्शन फिर कब होंगे ?"

"कल।"

"किस समय !"

"समय का निश्चय कैसे करूं ? महामात्य ने बुलाया है। निश्चय ही कोई आवश्यक कार्य होगा, और मुझे मालूम नहीं कि वह कार्य क्या है तथा उसमें कितना समय लगेगा ?"

"महामात्य के आप दास तो हैं नहीं कि···कि उनके कार्य मे आप अपना जीवन समर्पित किये बैठे हैं।"

"महामात्य का नहीं, मगध का दास हूं। और महामात्य मगध से भिन्न नहीं हैं। उनका निजी कार्य कुछ नहीं होता है।"

"आपको इतनी आस्था है उनमें ?"

"निस्संदेह !"

"और यदि उनके तथा मेरे बीच चुनाव का प्रश्न आया, तो···आप किधर जायेंगे ?"

अनुला का प्रश्न सुनकर जीवक हंसने लगा। बोला :

"नारी का प्रेम निराधार ईर्ष्या के कगार से टकराये बिना प्रवाहित नहीं हो सकता। वर्षकार मेरे पिता तुल्य हैं, मगध के भाग्य-विधाता हैं और तुम मेरी अनुला हो, एक तरुणी हो और हो मेरे सुख, आनंद एवं कल्पना की प्रेरणा। महामात्य से अपनी तुलना करने क्यों बैठ गयी ?"

"मैं···मैं···मैं यह जानना चाहती थी कि यदि उन्होंने आपको मुझसे छीन लिया तो आप क्या करेंगे ?"

"ऐसा वे करेंगे क्यों ?"

अनुला दुःखी होकर बोली :

"मेरी आशंका का उत्तर आपके प्रश्न में नहीं है।"

"क्या है तुम्हारी आशंका ?"

"मैं प्रकट कर चुकी हूं।"

"तो अनुले ! वह स्थिति मृत्यु से भी अधिक कठोर सत्य पर आधारित होगी, और जैसे मृत्यु का कोई उपचार नहीं, वैसे ही उस स्थिति का भी कोई उपचार नहीं होगा।"

"प्रभो !"

"अनुले !"

"आप राजाश्रय त्याग दीजिए।"

"अनुले ! राजाश्रय तो पद-मात्र है। तुम्हारे लिए मैं अपने प्राण त्याग सकता हूं।"

"फिर तो महामात्य के प्रति जो आपके विचार हैं, उनसे मुझे भयभीत नही होना चाहिए ?"

"भयभीत तो तुम्हें किसी से भी नहीं होना है, मृत्यु से भी नहीं। और महामात्य मगध के प्रतिनिधि हैं। मगध को मैं सर्वोपरि मानता हूं। सबको ऐसा ही मानना चाहिए। जीवन अपना नहीं है, परिवार, समाज एवं देश की धरोहर है। अतएव इन्हीं के हित में इसका उपयोग उचित है।"

अनुला निरुत्तर हो गयी। जीवक वहां से सीधे महामात्य के प्रासाद में पहुंचा। महामात्य उसकी प्रतीक्षा में व्यग्र थे और मुखशाला मे चक्कर काट रहे थे।

"तुम आ गये ?"—जीवक को देखकर महामात्य ने गंभीर स्वर में प्रश्न किया।

महामात्य के स्वर एवं उनकी मुखाकृति देखकर जीवक चौंक उठा और विनम्रतापूर्वक बोला :

"हां आर्य ब्राह्मण ! क्या आज्ञा है ?"

"सालवती की पुत्री तो अब स्वस्थ हो गयी है ?"

"जी हां।"

"उसे अब किसी ओषधि की आवश्यकता तो नहीं है ?"

"जी नहीं।"

"तुम्हारी भी नहीं ?"

"जी ?"

"ओषधि की आवश्यकता नहीं रही, तो वैद्य की भी आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए।"

महामात्य का कथन सुनकर जीवक को अनुला की आशंकाएं स्मरण हो आयीं। वह विनम्रतापूर्वक, किंतु दृढ़ स्वर में बोला :

"जी नहीं।"

"किंतु, मुझे सूचना मिली है कि प्रख्यात वैद्य कौमारभृत्य जीवक प्रायः प्रतिदिन नीरोग रोगिणी अनुला की चिकित्सा के लिए सालवती के प्रासाद में उपस्थित होते हैं।"

"आपकी सूचना निराधार नही है, महामात्य !"

"तब तो हेतु जानने की मेरी जिज्ञासा भी निराधार नहीं होगी ?"

"स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात् भी वैद्य एवं रोगी का सबंध सहज भाव से बना रहता है।"

"तब तो तुम्हें महाराज प्रद्योत के यहां भी जाना चाहिए था, साकेत में श्रेष्ठी की भार्या के यहां भी, राजगृह के श्रेष्ठी गृहपति के यहां भी, जिसके मस्तिष्क की तुमने शल्य-चिकित्सा की और फिर काशी के नगर-श्रेष्ठी के यहा भी और···और कहां तक गिनाऊ ?···जो रीति आज तुम चला रहे हो, यदि आरंभ से ही चलायी होती तो कदाचित् दो-चार रोगियों को ही नीरोग करने मे तुम्हारा अमूल्य जीवन समाप्त हो जाता।"

"आप उचित कहते हैं, आर्य ब्राह्मण ! वास्तव में स्थिति यह है कि मैं अनुला का आग्रह अस्वीकार नहीं कर सकता।"

कहने को तो जीवक कह गया, किंतु, वह मन-ही-मन सोच बैठा था कि इस बात पर महामात्य क्रुद्ध हो उठेंगे। जीवक के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने महामात्य को मुस्कराते देखा। महामात्य ने विनम्र वाणी में कहा :

"सैनिक, राज्याधिकारी, भिक्षु एवं वैद्य को व्यक्तिगत प्रेम अथवा सुख उपलब्ध नही होता। जीवक ! हमे उसका मोह करना भी नहीं चाहिए।"

"किंतु···"

"किंतु-परंतु का अभी समय नहीं है। आज ही रात्रिकाल में तुम्हें गिरिव्रज से प्रस्थान कर देना है।"

"कहां ?"

"अंग की राजधानी चम्पा। वहां कुमार अजातशत्रु शोचनीय दशा में अस्वस्थ पड़े हैं।"

जीवक चौंककर चीख-सा उठा :

"कुमार अजातशत्रु चम्पा में ?"

"हां। मार्ग में दस्युओं ने उन्हें शस्त्रों के प्रहार से मृतप्राय कर दिया था।"

"किंतु, वे उधर गये किस उद्देश्य से ?"

"मगध के कल्याण के लिए, संपूर्ण आर्यावर्त में एकता स्थापित करने के निमित्त अपनी बलि देने के लिए।"

"तो मुझे कब प्रस्थान करना है ?"

"अभी, शीघ्रातिशीघ्र ? तुम्हे शत्रु के देश मे प्रवेश करना हैं; किंतु, हम तुम्हारे साथ अधिक सैनिक नही भेज सकते, क्योंकि कुमार अजातशत्रु वहां छद्मवेश मे हैं।"

"मुझे एक भी अगरक्षक की आवश्यकता नही है, श्रीमन् ! मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।"

"तो ठीक है। तुम्हारे साथ मात्र एक सैनिक होगा, जो वहां से संदेश लेकर आया है।"

"तो मुझे आज्ञा है !"

"एक बात और।" : कहकर महामात्य क्षण-भर विचार में पड़े रहे और फिर स्वतः बोले : "मैं तुम्हारे पिता-तुल्य हूं। महामात्य के नाते नही, अभिभावक के नाते तुम्हे परामर्श दूंगा कि तुम सालवती के गृह की ओर तभी उन्मुख होओ, जब तुम्हारा व्यावसायिक कर्तव्य तुम्हे पुकारे।"

"किंतु आर्य, मैं अनुला के बिना एक पग भी आगे नही बढ़ सकता।"

"आज तक क्या अनुला के सहारे ख्याति अर्जित कर सके हो ?"

"आज तक की बात कुछ और थी।"

"भविष्य मे भी तुम्हें निस्सहाय ही अग्रसर होना पड़ेगा। यही भवितव्य है, यही अनिवार्य है।"

"किंतु क्यों ? मुझे आप किस अपराध का दंड दे रहे हैं ?"

"जीवक ! तुम गुणी व्यक्ति हो। जहां तक प्रतिष्ठा का प्रश्न है, तुम्हें मैं किसी भी अमात्य से श्रेष्ठ मानता हूं। जहां तक उपयोगिता का प्रश्न है, तुम मगध के लिए कुमार अजातशत्रु से भी अधिक उपयोगी हो और यदि कपिलवस्तु को भगवान बुद्ध पर गर्व है तो मगध को तुम पर। तुम्हें दंड देने की सामर्थ्य मुझमें नही है, राजा मे भी नही। मैं तो इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारे इस नये संबंध को देखकर विधाता अट्टहास कर रहा है। अभी तुम्हें उसका अट्टहास सुनायी नहीं दे रहा है, न देगा। तुम अंग से लौट

आओ, फिर अपने-आप मेरा अनुग्रह स्वीकार करोगे।"

जीवक को महामात्य में उतनी ही आस्था थी, जितनी कि आचार्य आत्रेय में। महामात्य का परामर्श उसने स्वीकार कर लिया और इस क्रम में उसके हृदय में महामात्य के प्रति रंच-मात्र भी अश्रद्धा नहीं उत्पन्न हुई। किंतु, उसके मस्तिष्क में भयावह द्वंद्व का झंझावात उठ खड़ा हुआ—'वह अनुला से क्यों नहीं मिले ?···महामात्य ने किस कारण से ऐसा आदेश दिया ?' जीवक सोचता और सोचता ही रह जाता—'अनुला क्या सोचेगी ?···उस पर क्या बीतेगी ? अभी मृत्यु के मुख से निकली है··· इतना बड़ा आघात वह नहीं सह सकेगी।···जब वह सुनेगी कि मैं बिना उससे मिले मगध से बाहर चला गया, तब वह निश्चय ही प्राण त्याग देगी।···नहीं, मैं उससे मिलकर ही जाऊंगा,'···ऐसा सोचकर उसने महामात्य से निवेदन किया :

"आर्य ! मैं भी आपको पिता-तुल्य मानता हूं। मुझे आपके क्रोध या आदेश का उतना भय नहीं है, जितना कि आपका स्नेह खोने का। आप अन्यथा न सोचें तो निवेदन करूं।"

"यही न कि तुम चम्पा जाने के पूर्व अनुला से मिल लेना चाहते हो ?"

"आप तो अंतर्यामी हैं !"

"मिल सकते हो, किंतु उसके पास मेरी-तुम्हारी भेंट की चर्चा न हो और यह बात भी गोपनीय ही रखनी है कि तुम अंग की यात्रा पर जा रहे हो। जीवक ! मैं तुम्हारे आनंद में बाधक बनकर सुख नहीं पा रहा हूं। किंतु, क्या करूं ? बस इतना जान लो कि तुम दोनों दो समानांतर रेखाएं हो। मिलने का प्रयत्न विफल तो होगा ही, धर्म-विरुद्ध भी होगा।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूं।"

"जाओ ! वासुदेव कृष्ण तुम्हारे सहायक हों।"

जीवक वहां से पुनः सालवती के प्रासाद की ओर चल पड़ा। उसका हृदय वेदना से फटा जा रहा था। रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हो चुका था। गहन अंधकार के बोझ से वातावरण निष्प्राण हो रहा था। जीवक का रथ उस अंधकार को चीरता हुआ भागा जा रहा था।

"तुम पागल हो गयी हो विश्वा ! मैं तो गुरुदेव एवं तुम्हारे अग्रज के चरणों पर चढ़ा हुआ बलि का फूल हूं। मेरे जीवन का क्या भरोसा ? इस प्रकार भावना प्रकट करोगी तब तो मैं पथभ्रष्ट ही हो जाऊंगा !"

"उस दिन मैं, अपना लज्जास्पद शरीर त्याग कर, तुम्हारा पथ निष्किल्विष कर जाऊंगी।"

"विश्वा !"

"हां मेरे वरुण ! तुम्हारा उत्कर्ष, देशप्रेम, त्याग एवं वीरता ही तो मेरा सौभाग्य है। जिस दिन वह नहीं रहेगा, उस दिन सब निःशेष हो जायेगा !"

"विश्वा ! तुम मात्र अद्भुत हो—अनुपमेय हो !"—वरुणदत्त ने विश्वतारा को हृदय से लगा कर कहा। दोनों, एक-दूसरे से आबद्ध, खड़े रहे। अचानक, वरुण को अपनी यात्रा का स्मरण हो आया। बोला—

"मैं चम्पारण्य जा रहा हूं।"

"कब ?"

"अभी ! तुरंत ! आर्य भट्टिय हेमजिन के दर्शन करके आंखें तृप्त करूंगा !"

"फिर कब लौटोगे ?"

"क्या मालूम विश्वा ! मैं तो यहीं रहना चाहता था। बहन वसुमित्रा का जीवन संकट में है। आततायी रिपुंजय ने मेरी बहन का बलात् अपहरण करके उससे राक्षस-विवाह करने का निश्चय किया है। पिताश्री वृद्ध हैं। न जाने मेरी अनुपस्थिति मे उन लोगों का क्या होगा ?"

"क्या तुमने गुरुदेव को ये बातें नहीं बतायीं ?"

"बतायीं तभी तो चम्पारण्य प्रस्थान करने का आदेश मिला। महर्षि औदुम्बरायण की नीति का रहस्य मेरी समझ मे तो आता नहीं। और उनके समक्ष मेरी जिह्वा तालू से चिपक जाती है।"

"फिर निश्चिंत रहो वरुण ! महर्षि औदुम्बरायण की शक्ति अपार है। जिसमें तुम्हारा और देश का कल्याण होगा—महर्षि औदुम्बरायण वही करेंगे।"

"अच्छी बात विश्वा ! मुझे स्नेह दो। वस्त्रादि की व्यवस्था करनी है

और जयसेन को भी सूचित करना है।"

"तुम जयसेन को सूचित कर आओ। मैं तब तक तुम्हारी यात्रा की व्यवस्था कर देती हूं। मेरे कारण जो समय शेष रह जायेगा—वह मेरा होगा।"

"वही क्यों ? मेरा संपूर्ण जीवन तुम्हारा है।···विश्वा ! क्यों न हम अपने गांधर्व-विवाह की बात गुरुदेव को बता दें ?"

"गुरुदेव जानते हैं !"

"हैं, गुरुदेव जानते हैं ! कैसे ?"—वरुणदत्त चौंक उठा।

विश्वतारा वरुणदत्त के वक्षस्थल पर सिर रखे-रखे बोली—

"गुरुदेव अंतर्यामी हैं। एक दिन उन्होंने मुझे अपने पास बुला कर कहा कि तुम मां बननेवाली हो। तुम्हें अपने सावस्थ्य पर ध्यान देना चाहिए !" "इतनी बात सुनकर मैं लजा कर भाग आयी थी। तब से वे मुझे प्रतिदिन देखने आते हैं।"

"आश्चर्य है विश्वा ! किंतु, क्या सचमुच तुम···तुम मां बननेवाली हो ?"

"नहीं तो क्या झूठ ?"

वरुणदत्त गंभीर विचार में डूब गया। विश्वतारा आशंकित स्वर में पूछ बैठी—

"क्यों ? बहुत गंभीर हो गये।"

"मैं सोच रहा हूं विश्वा, कि यह कदाचित् अच्छा नहीं हुआ।"

"क्या अच्छा नहीं हुआ?"—विश्वतारा ने किंचित् दृढ़ स्वर में पूछा। वरुणदत्त अपनी भूल अनुभव करके ग्लानि से सकपका कर बोला—

"नहीं···नहीं···कुछ नहीं। ठीक ही हुआ।"

"तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो। तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

"बात यह है विश्वा कि हम लोगों का विधिवत उपयमन संस्कार अभी तक संपन्न नहीं हुआ। और इधर तुम मां बननेवाली हो, उधर मैं रणक्षेत्र में जा रहा हूं। मेरे-तुम्हारे लिए न सही, किंतु आनेवाली संतान के लिए तो समाज की अनुमति एवं आशीर्वाद अनिवार्य है।"

"सत्य एवं प्रेम को किसी की अनुमति, सहमति की आवश्यकता नहीं

होती। और आशीर्वाद का जहां तक प्रश्न है, आचार्यपाद नारायणस्वामी ही हमारे लिए सब कुछ हैं।"

"सो तो ठीक है···अच्छा विश्वा मैं, जयसेन को प्रस्तुत रहने की सूचना दे आऊं।"

इतना कहकर वरुणदत्त ने विश्वतारा को आवेशपूर्वक आलिंगनबद्ध करके उसके स्निग्ध उष्ण अधरों को चूम लिया।

दीर्घिका के गहन अंधकार में दो हृदयों का चिरविदग्ध भुजांतराल-मिलन आर्यावर्त के विराट प्रकाश पुंज का भविष्य-पथ निर्धारित करता-सा प्रतीत हुआ।

प्रकाश पुंज ! एकाकी, विदग्ध, चिरभासित।

महामारी के असह्य आतंक से पीड़ित गिरिव्रज नगर में जीवनदायिनी आशा की लहर दौड़ गयी। नगरवासी उत्साह से भर उठे। उन्हें लगा, जैसे द्वार पर आया हुआ यमदूत असमर्थ हो वापस लौट जाने की तैयारी में लग गया हो। क्या सामंत, क्या नागरिक, क्या श्रेष्ठि, क्या कर्मकर, क्या भिक्षु, क्या कापालिक —जिसे देखो वही गिरिव्रज नगर के पूर्वी भाग में स्थित सामंत, चन्द्रमित्र के एकशालिक की ओर भागा जा रहा था। एक विश्वास फैल गया कि हो न हो स्वयं विष्णुरूप कृष्ण वासुदेव पुनः अवतार लेकर महामारी रूपी जरासंध का विनाश करने के लिए गिरिव्रज आ गये हों।

चन्दमित्र के उद्यान के एकशालिक में आचार्य आत्रेय के शिष्य महान् वेदाचार्य शैवलिक के पधारते ही गिरिव्रज में चमत्कार उत्पन्न हो गया। वैद्यराज शैवलिक का तेजोमय भू-मंडल, तीक्ष्ण दृष्टि और गंभीर वाणी का प्रभाव पड़ते ही रोगी का आधा रोग तत्क्षण दूर हो जाता। ओषधि उदर में जाते ही चमत्कार उत्पन्न कर देती।

अगदकार शैवलिक के आदेश पर, प्रतिदिन संध्या-काल, सुसज्जित रथ एकशालिक के द्वार पर उपस्थित कर दिया जाता। आचार्य शैवलिक रथ पर चढ़कर गिरिव्रज नगर के सभी कूपों एवं पुष्करणियों में विशेष प्रकार की ओषधि डालते और मध्याह्न तक एकशालिक में लौट आते।

सात दिन के भीतर ही गिरिव्रज नगर का रोग-शोक छू-मंतर हो गया। शैवलिक कृष्ण वासुदेव की तरह पूजे जाने लगे। लोग उनके दर्शनों को लालायित रहने लगे। यहां तक कि रूप गर्विता कुवलया भी शैवलिक के दर्शनार्थ वहां उपस्थित होती। कभी-कभी उसे दर्शनों के लिए प्रातः-काल से मध्याह्न तक प्रतीक्षा में बैठे रह जाना पड़ता था। लोग चकित-विस्मित थे। जिस कुवलया का दरस-परस पाने को गिरिव्रज के नागरिक आकुल-व्याकुल रहते, उस कुवलया को, आचार्य शैवलिक के प्रताप से, अपने बीच घटों बैठे पाकर, नागरिक जन चमत्कृत हो गये।

गिरिव्रज के नागरिकों को ज्योतिषी की भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। ज्योतिषी ने कहा था कि स्वयं इन्द्र-पुत्र पश्चिम दिशा से गिरिव्रज नगर में प्रविष्ट होगा और नगर का उद्धार करेगा। शैवलिक पश्चिमी द्वार से ही नगर में प्रविष्ट हुए थे। लोगों का विश्वास सुदृढ़ हो गया कि शैव-लिक कोई साधारण वैद्य नहीं हैं, बल्कि स्वयं इन्द्र-पुत्र हैं। कृष्ण वासुदेव के अवतार हैं। कुवलया का समर्पण देखकर तो लोग शैवलिक के प्रति भक्ति-भाव से भर गये। शैवलिक के चरणों पर स्वर्ण-निष्क एवं कार्षा-पणों का अंबार लगने लगा। शैवलिक उसे पैरों से रौंदते हुए एकशालिक के प्रकोष्ठ में चले जाते।

महाराज रिपुंजय तक उनकी ख्याति जा पहुंची। स्वयं महाराज रिपुंजय, उद्यान-द्वार से एकशालिक तक दर्शन के लिए पांव प्यादे ही भागे आये। उन दिनों ऐसी ही प्रथा थी। आचार्यों, ऋषियों और महात्माओं के

पास महाराजाधिराज स्वयं चलकर जाया करते थे। राजा रिपुंजय के आगमन के बाद तो वहां भीड़ पर नियंत्रण रखने के लिए उद्यान में राज-सैनिक नियुक्त कर दिये गये।

सूर्यास्त होते ही अगदंकार शैवलिक एकशालिक में बंद हो जाते। फिर किसी को उनके दर्शन करने की—यहां तक कि उद्यान के भीतर आने की अनुमति नहीं थी।

रात्रि का दूसरा प्रहर व्यतीत हो रहा था। गिरिव्रज नगर की सुख-समृद्धि की छटा म्लान पड़ गयी थी, चारों ओर सन्नाटा छा गया था। श्रेष्ठ चत्वर के पूर्वी भाग में स्थित चन्दमित्र का एकशालिक समाधिस्थ होकर निस्तब्धता का संगीत सुन रहा था। उद्यान के द्वार पर राज-प्रहरी उल्काओं की छाया में शल्य के सहारे नींद को रोक रहे थे।

तभी श्रेष्ठि चत्वर की ओर से एक घुड़सवार अपना अश्व धीरे-धीरे उद्यान के द्वार की ओर बढ़ाये चला आ रहा था। प्रहरी सावधान हो गये। अश्वारोही उद्यान-द्वार के निकट पहुंच गया। प्रहरियों ने चेतावनी दी, किंतु, अश्वारोही स्थिर-चित्त बढ़ता ही चला आया। प्रहरी चकितावस्था में द्वार पर सन्नद्ध खड़े रहे। अश्वारोही इस तरह बढ़ता चला आ रहा था जैसे वह प्रहरियों को कीट की तरह कुचलता हुआ उद्यान में चला आयेगा।

प्रहरीगण अपने-अपने शल्य एवं खड्ग संभालने लगे। अश्वारोही ने फिर भी अपने शस्त्र की ओर या प्रहरियों की गतिविधि की ओर ध्यान नहीं दिया। वह तो अश्व की पीठ पर स्थिर बैठा हुआ, उद्यान के भीतर एकशालिक पर दृष्टि जमाये, चुपचाप मूर्ति की तरह बढ़ता रहा।

"रुक जाओ।" एक प्रहरी चीखता हुआ घुड़सवार की ओर बढ़ा ही था कि तभी उल्का का प्रकाश अश्वारोही के चेहरे पर पड़ा। प्रहरी घबरा कर पीछे हटने के क्रम में, लड़खड़ा कर चित गिर पड़ा। जिन-जिन प्रहरियों ने उल्का के प्रकाश में अश्वारोही की झलक देखी, वे सभी स्तब्ध से एक किनारे खड़े रह गये। आगे बढ़ने का साहस कोई नहीं कर सका और उधर अश्वारोही एकशालिक के द्वार पर जाकर अश्व से उतर पड़ा।

ज्यों ही वह विचित्र व्यक्ति द्वार पर पहुंचा, भीतर से महर्षि शैवलिक

का गंभीर स्वर सुनायी पड़ा—

"पधारिए, मगध महामात्य पुलिकसेन !"

यह स्वर सुनते ही अश्वारोही, महामात्य निष्प्रभ हो गये। क्षण-भर के लिए वे द्वार पर जड़ बने खड़े रहे। आगे बढ़ने का साहस जाता रहा। किन्तु कोई उपाय न देखकर महामात्य को भीतर जाना ही पड़ा।

"उस आसन पर बैठ जाइए।" शैवलिक स्थित-प्रज्ञ की तरह व्याघ्र-चर्म पर बैठे-बैठे ही बोले। वे उस समय रसायन बना रहे थे। उन्होंने दृष्टि उठाकर भी महामात्य को नहीं देखा। महामात्य चुपचाप बैठ गये।

महामात्य को अनुभव हो रहा था, जैसे सामने बैठे विराट् पुरुष ने उनकी सम्पूर्ण शक्ति को अपने में विलीन कर लिया हो। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अपरिचित शैवलिक ने आहट पाते ही उन्हें कैसे पहचान लिया। पुलिकसेन रहस्य के असीम अतल महासागर में डूबते-उतराते रहे। क्षण-भर के सन्नाटे को भंग करते हुए शैवलिक ने कहा—

"मैं जानता था कि आप एक न एक दिन यहां अवश्य आयेंगे। किंतु, महामात्य! रात्रि के गहन अंधकार में नियम-विरुद्ध कार्य करनेवाला राज्याध्यक्ष, अपनी दुर्बलता के चलते, सूर्योदय होते ही अपनी लीला आप समाप्त कर देता है।"

"मैं समझ नहीं पाया वैद्यप्रवर !" महामात्य पुलिक ने निष्प्रभ होकर टूटे स्वर में कहा। शैवलिक ने अब अपनी तीक्ष्ण दृष्टि महामात्य की आंखों में स्थिर कर दी। महामात्य कांप उठे। शैवलिक ने कहा—

"मेरे यहां सूर्यास्त के पश्चात् आना वर्जित है। किंतु, आप तो दिन में आ नहीं सकते। रोग-शोक से संत्रस्त प्रजा के क्रंदन को देखने-सुनने की सामर्थ्य आप में नहीं है। क्यों नहीं है? यह आप जानें। रात्रि में या अपनी मुखशाला के अंधकार में, आप प्रजा-रंजन के लिए जो कुछ योजना बनाते हैं, उसका परिणाम आपके समक्ष है। और, प्रकृति का विधान है कि रात्रि के पश्चात् दिन आता है। वह दिन अब दूर नहीं है महामात्य, जब आपकी कलुषित योजना के घिनौने लेखों से भरे पृष्ठ प्रकाश की किरणों में उजागर हो जायेंगे। उस समय अपनी लीला के अध्याय का समापन स्वयं करना होगा। यदि अब भी मेरा आशय स्पष्ट नहीं हुआ

हो, तो आपका दुर्भाग्य। कहिए, मैं आपका क्या उपकार कर सकता हूं ?"

"मैं तो···मैं तो आपके मात्र दर्शन के लिए आया हूं।" महामात्य की यह बात सुनकर शैवलिक ओषधि की पुड़िया बनाते हुए बोले—

"वह तो आप कर चुके, इसलिए जा सकते हैं।"

"किंतु···।"

"किंतु क्या ?"

"मुझे लगता है, आपको मेरे बारे में भ्रम है। उसका निवारण···।"

"समय करेगा महामात्य। आपको भी मेरा परामर्श है कि समय का लाभ उठाइए।"

"आपका परामर्श शिरोधार्य है। किंतु, किस प्रकार ?"

"कर्तव्य करके। योजना बनाने वाला यदि स्वयं ही उसे कार्य रूप दे तो समय उसके गले में सफलता की माला डाल देता है।"

"क्या वैद्यप्रवर अपना आशय और स्पष्ट करने की कृपा करेंगे ?"

"महामात्य ! मैं वैद्य तो हूं ही, ज्योतिष एवं राजनीतिशास्त्र का थोड़ा-बहुत ज्ञान भी रखता हूं। यह ज्ञान मैंने तक्षशिला में अर्जित किया है। परिभाषा एवं भविष्य गणना तो मैं कर सकता हूं किंतु कार्यक्रम या कार्य-विस्तार बताना मेरा काम नहीं है। हां, आपको सावधान कर देना मैं अपना धर्म समझता हूं। क्योंकि, द्रष्टा होने के कारण, मैं आपका भयावह विनाशकारी भविष्य स्पष्ट देख रहा हूं।"

"मुझे क्या करना चाहिए ?"

"आपको क्या करना चाहिए, यह मैं क्या जानूं ? नीति बता सकता हूं कि जो कुछ भी करणीय हो उसे स्वयं करना चाहिए। अन्यथा कार्य संपन्न करने का श्रेय जिसे मिलेगा, वही आपकी योजना का सुफल भी प्राप्त कर लेगा। आप देखते ही रह जायेंगे। ज्योतिष गणना के अनुसार, साध्य की प्राप्ति पहला साधन अपनाते ही हो जायेगी। किंतु सावधान महामात्य ! सामर्थ्य प्रदर्शित करने का सुयश किसी अन्य को न मिलने पाये !"

"मैं आपका ऋणी हुआ ! किंतु, आदेश अब भी अस्पष्ट है।"

"इसे अस्पष्ट ही रहने दो महामात्य ! राक्षस-विवाह एवं यज्ञ जैसे

कार्य अस्पष्ट हैं फिर कारण तो निश्चय ही प्रच्छन्न होंगे।" शैवलिक का संकेत वाक्य सुनते ही महामात्य भय से पीले पड़ गये। लगा, जैसे उन्हें बिच्छू ने डंक मार दिया हो। शैवलिक ने तीक्ष्ण दृष्टि से महामात्य को देखा। महामात्य की आंखें व्याध के हाथ में पड़े कपोत की आंखों जैसी दीख रही थी। शैवलिक ने कठोर स्वर मे आश्वासन देते हुए कहा—

"त्रिकालदर्शी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मैं बनूंगा तुम्हारे यज्ञ का अध्वर्यु। सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।"

"अनुगृहीत हुआ आचार्य। आज से आपका आदेश ही मेरा धर्म हुआ।"

"तो मेरा आदेश तुम्हें समय-समय पर प्राप्त होता रहेगा। तत्काल मेरा यही आदेश है कि श्रेणिय बल को राज्य-प्रश्रय मिलना बंद कर दिया जाय और राज्य-कर मे किसी भी वर्ण, श्रेणी या नैगम को मुक्त नहीं किया जाय। अनार्य सेना को प्रोत्साहन एवं प्राथमिकता दी जाय।"

"यह सब तो आपने मेरे मन की बात कह दी।"

"महामात्य! मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं। मुझे अपने हित की बात नहीं कहनी है। जो तुम्हारे हित की बात होगी वही कहूंगा।"

"किंतु, मुझे मेरा साध्य कब प्राप्त होगा?"

"एक मास के भीतर। किंतु, अपना संपूर्ण ध्यान उस ओर केंद्रित कर दो। अपने आर्य नायकों पर विश्वास मत करो। अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए जो कुछ भी किया जा सकता है करो।"

"वही तो कर रहा था कि आपने अपनी ओषधि के चमत्कार से मेरे किये-कराये पर पानी फेर दिया।"

"अच्छा! तो कूपों एवं पुष्करणियों में तुम्हारे ही आग्रह पर कुछ कापटिक विष डालते फिर रहे हैं?"

"जी हां। मैं परम तांत्रिक वक्रघोष का शिष्य हूं।"

"सुंदर।"

"मैं देश में अराजकता उत्पन्न कर देना चाहता हूं।"

"तो इसके लिए, राजा को रास-रंग में लिप्त रखने का प्रबंध करो, श्रेष्ठियों पर कर का बोझ द्विगुणित कर दो, सभी सामंतों को राजाज्ञा

भेजकर, धबल-गृह के लिए अच्छे कुल की प्रजावती, परिचारिकाओं एवं दासियों की व्यवस्था करने को कहो, समाज-भोज को प्रोत्साहन दो, सैनिकों को स्वच्छंद कर दो और राज्याधिकारियों पर से नियंत्रण हटा लो। फिर देखो कि पंद्रह दिनों में क्या से क्या हो जाता है।"

"आप तो मेरे लिए वरदान सिद्ध हुए आचार्य।"

"वरदान नहीं मुक्तिदाता। अब तुम जा सकते हो। हां, एक-शालिक के प्रहरियों ने तुम्हें पहचान लिया है। इसलिए उन्हें किसी ऐसे स्थान में भेज दो कि ये कुमारसेन के राजतिलक से पहले यहां न लौट सकें। इसके स्थान पर मैं अन्य प्रहरियों को नियुक्त कर दूगा। कारण, मेरा-तुम्हारा मिलन अभी गोपनीय रखना तुम्हारे लिए हितकर होगा। एक बात और। जो कुछ करो, राजाज्ञा के नाम पर करो। राज्याधिकारी यदि सत्ता की जड़ खोदना चाहें तो उन्हें छोटे से छोटा या बड़े से बड़ा काम राजा के नाम पर ही करना चाहिए। करणीय स्वयं करो—कहने के लिए कहो कि राजा कहता है, राजा चाहता है, राजा सोचता है आदि-आदि। समझे ?"

"जी हां।"

महामात्य वहां से प्रफुल्लित होकर अपने प्रासाद में लौटे। एक-शालिक के सभी प्रहरीगण न जाने कहां भेज दिये गये। उद्यान के द्वार पर नये प्रहरी नियुक्त कर दिये गये। शैवलिक-महामात्य मिलन अंधकार में तिरोहित होकर रह गया।

महामात्य पुलिकसेन और शैवलिक का मिलन गोपनीय ही रहा और संपूर्ण मगध महाजनपद ज्वालामुखी के मुख पर जा बैठा। एक सप्ताह के भीतर ही गिरिव्रज नगर तथा उसके आस-पास अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। शैवलिक की बातों को पुलिकसेन देववाणी समझ कर, उसके अनुरूप ही आदेश विज्ञापित करने लगा।

कर के बोझ से व्यापार ठप्प पड़ गया। सार्थवाह मगध की सीमा से ही लौट जाने लगा। स्वच्छंद राज्याधिकारियों के अन्याय-अत्याचार से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। चापलूसों की बन आयी। गुणवान एवं देश-प्रेमी उपेक्षा के पात्र बनकर रह गये। समज्या समारोह के उल्लास में देश का दुर्भाग्य अट्टहास कर उठा। राजकोष रिक्त होने लगा।

परंपरागत योद्धा, आर्य सैनिक, श्रेणिय बल उपेक्षा और अपमान से तिलमिला उठे। क्षत्रिय-कुल प्रतिशोध की ज्वाला में जलने-सुलगने लगे। सामंतों के पास व्याजांतर से संदेश पहुंचा कि वे धवल-गृह के लिए सुंदर, मुग्ध, कुलीन षोडशियों का प्रबंध करें। इससे बढ़कर अपमान-जनक व्यवहार राजा और क्या कर सकता था। सामंतगण क्रोध के अति-रेक से उन्मत्त हो उठे।

मगध की दुर्दशा का समाचार शीघ्र ही आग की लपटों की तरह दूर-पास के जनपदों तक जा पहुंचा। कोशल, काशी, अंग, वज्जि आदि जनपद अचानक ही सक्रिय एवं जागरूक हो उठे।

देश के भीतर क्रांति की आग सुगबुगाने लगी। देश के बाहर महत्वाकांक्षी राजाओं के मन में सीमा-विस्तार की भावना उठने लगी। विनाश के कगार पर खड़ा गिरिव्रज नगर, पुलिकसेन के दुर्द्धर्ष घात-प्रतिघातों को सहता हुआ, आतंक की प्रलयंकारी बाढ़ के उतर जाने का दिवास्वप्न देखता रहा।

पूर्णमासी का दिन अवकाश का दिन होता है। किंतु उस दिन पूर्णमासी होते हुए भी राजमहल के सभा-मंडप में राजसभा का आयोजन किया गया। लाचार होकर सभी राज्याधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित हुए।

सभा में सभी सभ्य, सामंत एवं राज्याध्यक्ष मंचानिमंच विराजमान थे। महामात्य अभी तक नहीं पधारे थे। सभ्यगण बैठे हुए आपस में कानाफूसी कर रहे थे। वातावरण में यदि शिथिलता थी तो सनसनाहट भी थी, शांति थी तो उत्क्रोश भी था, लाचारी थी तो प्रतिरोध भी था। सामन्तगण अत्यधिक गंभीर बने बैठे थे। प्रायः सबके मन में एक ही प्रश्न था कि रिपुंजय की कामाग्नि में मगध जनपद कब तक जलता रहेगा? अनाचार-अपमान एवं आतंक की घुटन से कब तक मुक्ति मिलेगी?

कुछ क्षण की प्रतीक्षा के पश्चात् ही उद्घोषणा का स्वर गूंज उठा, "परम प्रतापी परम शैव परमेश्वर परम भट्टारक बार्हद्रथ वंश कुलावतंस महाराजा रिपुंजय देव पधारते हैं।"

महाराजा रिपुंजय के पधारते ही सभी सभ्य अभ्यर्थना में उठकर खड़े हो गये। महाराज के पीछे-पीछे महामात्य पुलिकसेन भी थे।

महाराज के आसन ग्रहण करते ही सभ्यगण भी अपने-अपने आसन पर बैठ गये। तभी महामात्य पुलिकसेन ने सभ्यों को संबोधित करके कहा—

"सभ्यगण सुनें। बार्हद्रथ वंश कुलावतंस महाराज रिपुंजय देव ने तीन सौ इक्कीस बार, तीन सौ इक्कीस कुलों की, तीन सौ इक्कीस कन्याओं से उपयमन संस्कार संपन्न करके उन्हें सौभाग्य प्रदान किया। किंतु, दुर्भाग्यवश सभी प्रजावतियां महाराज के प्रतापी औरस को धारण करने में असमर्थ रहीं। सभ्यगण को विदित ही है कि महाराज वसु की वंश-

परंपरा के अंतिम गौरव अब महाराज रिपुंजय देव ही रह गये है। इस कारण, समस्त मगध-प्रजा भविष्य की चिंता से शोक-संतप्त हो उठी है। महाराज रिपुंजय देव प्रजा के दुःख का अनुभव करके एक बार पुनः किसी कुलीन कन्या को राजमाता बनने का अवसर प्रदान कर प्रजा-रंजन के निमित्त कृपा करने को प्रस्तुत हो गये है।"···

महामात्य की घोषणा सुनते ही सभा-मंडप मे आश्चर्य एवं जिज्ञासा की लहर दौड़ गयी। महामात्य ने विहगम दृष्टि से एक बार सभ्यों को देखा और घोषणा जारी रखी—"किंतु, विवाह-विधि में थोडा परिवर्तन करना पड़ा है। ज्योतिष गणना के अनुसार, राक्षस-विवाह से प्राप्त कन्या ही महाराज का औरस धारण करने मे समर्थ होगी। इसलिए, महाराज ने निर्णय किया है कि देश के कल्याण हेतु वे अपने विवाह के लिए कन्या का बलात् हरण करेंगे···।"

सभा में सन्नाटा छा गया। सब लोग एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। महामात्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से सभ्यों को देखकर अपने भाषण का प्रभाव भांपने का प्रयत्न किया। महाराज रिपुंजय ने एक लंबी जम्हाई ली। महामात्य ने ऊंचे स्वर में कहा—

"संयोग एव प्रसन्नता की बात है कि वह कन्या गिरिव्रज नगर में ही एक अच्छे कुल की है। ज्योतिषी के अनुसार यदि वही कन्या महाराज के साथ उपयमन संस्कार में आबद्ध हो जाती है तो मगध का सिंहासन कभी रिक्त नहीं होगा।"

"कौन है वह कन्या ?" कई सभ्यो ने पूछा।

"क्षत्रिय कुलावतंस चन्दमित्र की कन्या वसुमित्रा।"

यह घोषणा सुनते ही सभा में मृत्यु का संगीत संतरित हो उठा। क्षत्रियों की मुट्ठियां बंध गयीं। कइयों के दांत कटकटा उठे। दूर बैठे सभ्यों के बीच से कोलाहल का स्वर उठने लगा। कुछेक ने तो क्रोध से अपने होंठ काटकर रक्त बहा लिया। एक क्षत्रिय सामंत अपना क्रोध न पी सका और बोल उठा—

"यह समस्त क्षत्रिय जाति का अपमान है।"

"कौन कहता है कि इसमें क्षत्रिय जाति का अपमान है ?" महाराज

रिपुंजय जैसे नींद से चौंककर बोले, "उस क्षत्रिय कुल को गौरव का अनुभव करना चाहिए जिसकी कन्या को मैं स्वीकार करता हूं। महारानी का पद प्राप्त करना अत्यधिक गौरव की बात है। पराजित की कन्या विजेता की हृदय-सम्राज्ञी होगी।"

"महाराज भूल रहे हैं कि हम आयुधजीवी होते हैं। अपनी प्रतिष्ठा को आंच आते देखकर चुप बैठे नहीं रह सकते।" दूसरा सामंत बोल उठा। महामात्य कुटिल दृष्टि से सभ्यों की ओर देखते रहे। महाराज रिपुंजय चीख उठे—

"और तुम भूल गये कि मेरे पूर्वजों ने तुम लोगों को कीटिका समझकर कुचल दिया। किंतु, मैंने दया करके तुम्हें जीवन दिया, प्रतिष्ठा दी।"

"हम अपनी प्रतिष्ठा के लिए, आप पर मर मिटना चाहते हैं। इतनी सामर्थ्य हममें है। आप अपने निर्णय पर पुनः विचार कर देखिए कि आप कितना बड़ा अन्याय करने जा रहे हैं।"

महाराज रिपुंजय क्रोध से आग हो गये। उन्होंने गर्जना की—

"कोई है? मैं आज्ञा देता हूं कि ये दोनों सामंत बंदी बना लिये जायें और कल प्रातःकाल होते ही जीवित पृथ्वी में गाड़ दिये जायें। शिकारी कुत्ते इनके मांस नोच कर खा जायें।"

सभा-मंडप में खलबली मच गयी। सैनिकों ने उन दोनों सामंतों को बंदी बना लिया। तभी महामात्य बोले—

"महाराज से मेरा अनुरोध है कि इन दोनों सामंतों को इस बार क्षमा कर दिया जाय।"

"कदापि नहीं।" महाराज चीख उठे, "मैं चन्दमित्र की कन्या का अपहरण करूंगा और जो कोई मेरे विरोध में एक शब्द भी बोलेगा उसकी यही दुर्गति कराऊंगा। मैं किसी का अनुरोध सुनने को प्रस्तुत नहीं हूं। ले जाओ इन श्वान क्षत्रियों को। आप लोग भी जा सकते हैं। सभा समाप्त की जाती है।" इतना कहकर महाराज रिपुंजय सिंहासन से उतरकर धड़धड़ाते हुए धवल-गृह की ओर चले गये।

सभा-मंडप सूना हो गया। बच रहे वहां मात्र महामात्य पुणिकसेन—विजय-गर्व का उल्लास होठों तक लबालब भरे हुए।

चम्पा नगर में रात्रि का सूनापन उतरते ही पूर्वी भाग की एक निषद्या से एक व्यक्ति निकला। उसने अपने संपूर्ण शरीर को आच्छादनक में छिपा रखा था।

लुकता-छिपता हुआ वह, कई वीथियों को पार कर, एक छोटे से एकांत भवन के द्वार पर पहुंचा और धीरे-धीरे थपकियां देने लगा। पल-भर बाद ही द्वार खुल गया। उस व्यक्ति ने द्वार खोलनेवाले के कान में कुछ कहा और शीघ्र ही धवल-गृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

उन दिनों चम्पा नगरी वत्स महाजनपद की शक्तिशाली सेना से घिरी हुई थी। नगर में आतंक एवं भय का साम्राज्य छाया हुआ था। वत्सराज सतानिक की गिद्ध-दृष्टि अंग पर बहुत दिनों से लगी हुई थी। तभी उनके कानों में अंगराज दधिवाहन की अपूर्व सुंदरी कन्या चन्द्रबाला के रूप, गुण और माधुर्य की ख्याति पहुंची। साम्राज्य की लिप्सा सौंदर्य के आकर्षण में खो गयी। चन्द्रबाला को रानी के रूप में प्राप्त कर महाराज सतानिक अंग से मित्रता स्थापित करने को आतुर हो उठे। अंग के महाराज दधिवाहन को मित्रता की यह राह अच्छी लगी। चन्द्रबाला जैसी अपूर्व कन्या के लिए वत्सराज सतानिक सर्वथा योग्य पति हो सकते थे। अतएव उभय पक्ष ने स्वीकृति दे दी।

किंतु मनुष्य अपनी योजना बनाने में बहुत विलंब कर देता है, विधाता का निर्णय उसके पूर्व ही हो जाता है। पाठक जानते हैं कि आखेट के अवसर

पर चन्द्रबाला तन-मन से भद्रिय हेमजित की हो चुकी थी। चन्द्रबाला चम्पा के धवलगृह में चली आयी। बहुत दिनों तक किसी को मालूम नहीं हुआ कि चन्द्रबाला का विवाह हो चुका है।

चन्द्रबाला के विवाह की बात वत्सराज सतानिक तक जा पहुंची। उनके क्रोध की सीमा नहीं रही जब उन्होंने सुना कि अंगराज दधिवाहन ने अपनी कन्या के लिए वत्सराज की अपेक्षा किसी अज्ञात कुलशील युवक को अधिक उपयुक्त समझा। प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा के अतिरेक से वे उन्मत्त हो उठे। अंगराज के इस व्यवहार में उन्हें अपमान की गंध लगी। वे तिल-मिला उठे। साम्राज्य-विस्तार की उनकी सुप्त आकांक्षा पुनः जागृत हो उठी। आत्म-सम्मान की भावना एवं सैन्य-शक्ति ने उन्हें युद्ध के लिए उद्वेलित कर दिया और वे पूरे वेग से अंग पर चढ़ दौड़े।

अंग के प्रसिद्ध नगर अश्वपुर, भद्रिक आदि समृद्ध स्थानों को पददलित करती हुई वत्स-सेना चम्पा नगर के बाहर स्कंधावार स्थापित कर डट गयी।

रहस्यमय युवक, धवलगृह के मुख्य द्वार पर न जाकर, पश्चिमी भाग के पक्ष द्वार पर जा पहुंचा। वहां पूर्व से ही प्राचीर के पास आम्र-वृक्ष की छाया में एक स्त्री खड़ी थी। स्त्री धवलगृह की परिचारिका-सी लगती थी। युवक को देखते ही परिचारिका आम्र-छाया से निकल कर पक्ष द्वार की ओर बढ़ी। युवक उस परिचारिका के पीछे हो लिया। उद्यान तक दोनों ही एक-दूसरे से अनजान बने चुपचाप चलते रहे। उद्यान से एक वीथी-पथ धवलगृह के बिलकुल भीतर चला जाता था। वहां पहुंच कर परिचारिका ने कहा—

"इस राह से आर्य धवलगृह के अंतरायण में पधारें।" इतना कह कर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही परिचारिका बाहर-बाहर धवलगृह की मुखशाला की ओर बढ़ गयी।

परिचारिका के चले जाने के पश्चात रहस्यमय युवक धवलगृह में प्रविष्ट हुआ। प्रस्तर प्राचीरों के बीच से वीथी-पथ जाता था। धवलगृह में प्रविष्ट होते ही उसने अपने-आप को जनहीन वीथी-पथ में पाता। निस्तब्ध उल्काएं प्रज्वलित थीं। कुछ ही दूर चलने पर, उसे प्रकोष्ठ से एक नारी-

स्वर सुनायी पड़ा—

"इधर आ जाओ !"

युवक ने प्रकोष्ठ में पहुंचते ही देखा एक सुंदरी उसकी ओर सजल आंखों से देखती हुई बांहें फैला कर खड़ी थी। युवक अपने-आप पर नियंत्रण नहीं रख सका और उस स्त्री को अपनी भुजाओं में कस कर बेसुध हो गया। क्षण-भर उस निस्तब्ध प्रकोष्ठ में चिर-इच्छित मिलन के स्वप्न में दोनों खोये रहे कि अचानक पर्यंक से एक तोतला स्वर सुनायी पड़ा—

"मां ! तुम कहां तली गयी ?"

"कहीं नहीं पुत्र। यह देखो, तुम्हारे पिता आये हैं !"—सुंदरी उस बालक के पास दौड़ती हुई पहुंच कर बोली। युवक भी तब तक पर्यंक के निकट पहुंच चुका था और वात्सल्य-भरी आंखों से बालक को निहार रहा था। अनायास ही युवक ने बालक को उठा कर हृदय से लगा लिया। सुंदरी विभोर होकर बोल उठी—

"यही तुम्हारा पुत्र है प्राण ! तुमने बहुत प्रतीक्षा करवायी। आज पूरे पांच वर्ष बाद तुम्हें देख पायी हूं।" तुम्हारा पुत्र बार-बार तुम्हारे संबंध में मुझसे प्रश्न किया करता था।"

"आचार्य का ऐसा ही आदेश था चन्द्रा। मैं तो दिन-भर में, न जाने कितनी बार, तुम्हारे पास आ पहुंचता था, तुमसे बातें करता था, आकुल-व्याकुल होकर पुनः अपने उद्देश्य की सिद्धि में जुट जाता था। क्या करता? तन न सही मन तो जुड़ा लेता था। ज्यों-ज्यों विपत्तियां सघन होती जा रही हैं, आचार्य का रहस्योत्पादक प्रभाव स्पष्ट एवं उद्भाषित होता जा रहा है। यही देखो कि मुझे बिलकुल उपयुक्त समय पर यहां आने का आदेश दिया।"

पाठक समझ गये होंगे कि युवक और कोई नहीं परम प्रतापी भट्टिय हेमजित था। और वह स्त्री थी अंगराज दधिवाहन की इकलौती पुत्री चन्द्रबाला। भट्टिय का निश्चित स्वर सुनकर चन्द्रबाला विचलित हुई। बोली—

"तुम नहीं जानते कि ये पांच वर्ष मैंने किस प्रकार व्यतीत किये हैं। आचार्य के आदेशानुसार मैं तुम्हारा नाम तक जिह्वा पर नहीं ला सकती

"हम सब आपकी आज्ञा पर प्राणोत्सर्ग करने को तत्पर हैं।"

"महाराज बिम्बिसार वृद्ध हो चले। भावुकता ने उनका विवेक एवं कर्तव्यनिष्ठा हर ली है। जिस उद्देश्य से आदरणीय भट्टिय एवं महात्मा औदुम्बरायण ने महाराज बिम्बिसार को मगध के आर्यपट्ट पर अभिषिक्त किया, वह उद्देश्य अब तक अदृश्य के गर्भ में ही पनप रहा है। अब हम अंग पर अभियान करने जा रहे हैं। किंतु, इस अभियान में महाराज बिम्बिसार का कितना योग है, यह बात आप सज्जनों से छिपी नहीं है। वास्तव में इस अभियान के प्राण हैं कुमार अजातशत्रु। मगध के संदर्भ में हमें किसी व्यक्ति को महत्त्व न देकर, उद्देश्य को महत्त्व देना है; इस उद्देश्य को प्राप्त करने के निमित्त हमें अजातशत्रु को ही आर्यपट्ट पर अभिषिक्त करना है।"

"हम सब आपसे सहमत हैं।" सभी नायक एकसाथ बोल उठे। महा-मात्य ने कहा :

"तो ठीक है। हम सभी उस क्रांति की प्रतीक्षा में उत्साहपूर्वक सक्रिय बने रहें और मगध एवं आर्यावर्त्त के कल्याण को सर्वोपरि मानें।"

इसके पश्चात् युद्ध-योजना, नगर-सुरक्षा आदि पर विचार-विमर्श करके सभा भंग हो गयी। ब्राह्ममुहूर्त में सभी एक-दूसरे से विलग हो गये।

ब्राह्म मुहूर्त का तिमिराच्छन्न आलोक आकाश में उद्भासित हो उठा था। कुमार अजातशत्रु बहुशालिक के बाहरी प्रकोष्ठ में सज-धज कर चक्कर

लगा रहा था। रह-रह कर वह द्वार के बाहर अंधकार में डूबे विस्तृत शस्य-श्यामल आम्रवन को देख लेता और फिर चक्कर काटने लगता। शीतल पवन के मंद झोंकों से कुमार का उत्तरीय लहरा उठता था। उसी समय दूसरे प्रकोष्ठ से जीवक निकल आये।

"भ्रातृ-तुल्य कुमार अजातशत्रु प्रसन्न तो हैं ?"—जीवक ने प्रकोष्ठ में प्रवेश करते ही पूछा।

अजातशत्रु ने मुस्करा कर पहले तो जीवक की ओर देखा फिर कहा :

"श्रेष्ठी कुलाजिन अभी तक नहीं आये। मैं सूर्योदय से पूर्व ही चम्पा नगर का निरीक्षण कर लेना चाहता था। पथ एवं वीथियों के नागरिकों से जनाकीर्ण हो जाने पर असुविधा ही होगी।"

"तो मेरे साथ चलिए। मैं यहां की वीथियों से भली भांति परिचित हूं। निश्चय ही, श्रेष्ठी किसी संकट में पड़ गये होंगे। चलिए, बाहर अश्व प्रस्तुत हैं।"

अजातशत्रु को प्रस्ताव जंच गया। दोनों नगर की ओर चल पड़े। नगर में अभी चहल-पहल आरंभ नहीं हुई थी। दोनों परस्पर वार्तालाप करते हुए निरीक्षणात्मक गति से चलते रहे। जीवक ने कहा :

"यहां का बच्चा-बच्चा राजा ब्रह्मदत्त को घृणा की दृष्टि से देखता है। व्यवस्था नाम की वस्तु का यहां आभास भी नहीं है। गांव में अकाल पड़ा हुआ है। प्रजा के लिए न तो शिक्षा का प्रबंध है, न ओषधि-उपचार की सुविधा। किंतु, ब्रह्मदत्त को इसकी कोई चिंता नहीं है। उसे यदि चिंता है, तो बस सेना बढ़ाने की और दुःखी प्रजा को लूटकर राजकोष भरने की।"

"फिर तो हमारा मार्ग प्रशस्त ही समझिए।"

"निस्संदेह।"

"नगर का पूर्वी द्वार तो प्रायः अरक्षित ही है। वहां मात्र पांच प्रहरी उपस्थित थे।"

"वास्तव में, ब्रह्मदत्त को न तो पूर्व से भय है, न उत्तर से। वह भयभीत है तो मात्र पश्चिम से, जिधर मगध है। अतएव, आप पश्चिमी द्वार

पर बहुत-से सैनिकों को देखेंगे।"

"कल श्रेष्ठी कुलाजिन कह रहे थे कि ब्रह्मदत्त ने उनसे युद्ध-व्यय के निमित्त शत सहस्र कार्षापण की मांग की है।"

"तो क्या श्रेष्ठी इसके लिए प्रस्तुत हैं ?"

"नही।"

"तब तो निश्चय ही नगर-श्रेष्ठी अभी कारागार में पड़े आपको स्मरण कर रहे होंगे।"

"एँ !"—कुमार चौंक उठा—"इस ओर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया था। फिर···फिर देवदत्ता कहां होगी ?"

"कदाचित् धवलगृह में।"

"बंधु जीवक !"

"आज्ञा कुमार !"

"यदि देवदत्ता धवलगृह में बंदिनी होगी, तो मैं मगध की सेना के आगमन की भी प्रतीक्षा नही करूंगा।"

"आप ऐसा नहीं करेंगे कुमार ! शीघ्र ही मगध की सेना अंग की सीमा पर पहुंचने वाली है। उतावलेपन से काम लेने पर भयावह परिणाम का सामना करना पड़ेगा। तब हम न तो अंग को जीत सकेंगे और न ही देवदत्ता की रक्षा कर सकेंगे। सर्वप्रथम हमें स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"

"आप श्रेष्ठी का प्रासाद जानते हैं ?"

"क्यों नहीं ?"

"तो पहले वहीं चलिए।"

दोनों के अश्व उड़ चले। अजातशत्रु की आंखों के समक्ष देवदत्ता की असहाय एवं करुण आंखें स्थिर हो गयीं। उसे लगा, मानो देवदत्ता के फड़कते अधरों से उसी के नाम की अस्फुट ध्वनि निकल रही है।···अजातशत्रु का मन उद्विग्न हो उठा। उसने अश्व की गति और तेज कर दी।

नगर-श्रेष्ठी का प्रासाद आ गया। वहां का दृश्य देखकर अजातशत्रु क्षण-भर स्तम्भित रह गया। प्रासाद के मुख्य द्वार का एक स्तम्भ ध्वस्त पड़ा था, वहां छह-सात व्यक्ति कौतूहल में डूबे खड़े हुए थे। लगता था, प्रासाद

के भीतर कोई नहीं है। अजातशत्रु और जीवक अश्व से उतर कर भीतर प्रासाद में प्रविष्ट हुए। भीतर का दृश्य तो और भी दुःखदायी था; सभी सामान बिखरे हुए थे, कई मंजूषाएं टूटी पड़ी थीं; सभी प्रकोष्ठ सूने पड़े थे। यह सब देखकर अजातशत्रु का रक्त उबलने लगा था। वह दांत पीसता हुआ बोला :

"अब असह्य हो गया बंधु ! देवदत्ता निश्चय ही विपत्ति में है। मेरा जीवन एवं पौरुप निरर्थक है।"

"आपके अधीर होने से देवदत्ता की विपत्ति दूर नहीं हो सकती, प्रत्युत द्विगुणित हो सकती है। हमें अब शीघ्र ही बहुशालिक में लौट चलना चाहिए। हम लोगों को यहां देखकर राजसैनिकों को हम पर संदेह हो सकता है, और तब स्थिति बहुत ही भयावह हो जायेगी। चलिए, बहुशालिक में चलकर बिचार करें।"

अजातशत्रु बहुत ही कर्मठ, तत्पर एवं पराक्रमी तरुण था। किंतु, उसमें एक अवगुण भी था। वह बहुत शीघ्र अधीर हो उठता था और जो भी करणीय हो, उसे शीघ्रातिशीघ्र कर डालना चाहता था। फिर भी अजातशत्रु ने जीवक का परामर्श स्वीकार कर लिया। दोनों युवक बहुशालिक की ओर चल पड़े।

सूर्योदय हो चुका था। जीवक ने सिंहपाद सैनिकों के नायक सिंहरथ एवं नन्दिसेन को भी बुला लिया। अजातशत्रु ने कहा :

"देवदत्ता एवं नगर-श्रेष्ठी के प्राण संकट में हैं। विलंब करना बहुत ही घातक होगा।"

"मैं आपके आदेश की प्रतीक्षा में हूं श्रीमन् !"—सिंहरथ ने निवेदन किया। तत्क्षण जीवक बोल उठा :

"आप पर एवं आपके सैनिकों पर कुमार को पूर्ण विश्वास है। किंतु, अभी हमारा शक्ति-प्रदर्शन निरर्थक होगा।"

"तो क्या हम हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहें ?"—अजातशत्रु ने उबलकर कहा। जीवक मुस्कराकर बोला :

"फिर क्या करने का विचार है ?"

"हमें अपने सैनिकों के साथ धवलगृह एवं कारागार पर अचानक

आक्रमण कर देना चाहिए।"

"ब्रह्मदत्त की सैन्य-शक्ति तो आपसे छिपी नहीं है ?"

"हां, उसके पास प्रायः शत सहस्र सैनिक हैं।"

"फिर आपके आक्रमण का क्या परिणाम निकलेगा ?"

"परिणाम क्या निकलेगा ? हम अपने प्राण दे देंगे।"

"आपके प्राण देने से न तो देवदत्ता को मुक्ति मिलेगी, न मगध को ही कोई लाभ होगा। प्रत्युत, जिस उद्देश्य से आप यहां पधारे हैं, वह उद्देश्य भी कलंकित हो जायेगा।"

"तो फिर किया क्या जाए ? आप कोई मार्ग भी सुझायेंगे या विपत्तियों एवं बाधाओं का चित्र ही उपस्थित करते रहेंगे ?"—अजातशत्रु झल्लाकर बोल उठा। जीवक पूर्ववत् स्वर में बोला :

"नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन को ब्रह्मदत्त जीवित रखना चाहेगा, क्योंकि इसी में उसे लाभ है। जीवित कुलाजिन से ही धन प्राप्त हो सकता है। अतएव सर्वप्रथम हमें देवदत्ता को मुक्त कराने का प्रयत्न करना चाहिए। देवदत्ता को कठिनाई अथवा दारुण परिस्थिति में देखकर कुलाजिन के समक्ष धर्मसंकट उपस्थित हो सकता है और ऐसी दशा में वे ब्रह्मदत्त की सहायता करने को भी प्रस्तुत हो सकते हैं।"

"आर्य का कथन सत्य प्रतीत होता है।"—सिंहरथ ने कहा। अजातशत्रु भी मार्ग पर आता हुआ-सा बोला :

"कहते तो आप ठीक हैं। किंतु, बिना शक्ति-प्रयोग के देवदत्ता का उद्धार संभव भी तो नहीं है।"

"यह कार्य आप मुझ पर छोड़ दीजिए। देवदत्ता को मुक्त कराने का दायित्व मेरा। भंते नन्दिसेन !"

"आज्ञा आर्य !"

"मुझे मात्र तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।"

"मैं प्रस्तुत हूं आर्य !"

"छद्मवेश में तुम्हें नगर की ओर प्रस्थान करना है और यह निश्चित रूप से मालूम करना है कि देवदत्ता कहां है तथा वहां के सैनिकों का नायक कौन है ?"

"मैं अभी जाता हूं श्रीमन् !"

"नहीं, ऐसे नहीं। मेरे साथ उस प्रकोष्ठ में चलो। मैं तुम्हें पूर्णतया संपन्न कर दू।"

जीवक अपने उद्यम में सफल हुआ। संध्याकाल तक नन्दिसेन अपना कार्य संपन्न कर बहुशालिक में लौट आया। जीवक उसी की प्रतीक्षा में बैठा था :

"कौन है वह, नायक ?"

"मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र।"

"कौन वसुमित्र ? महासती चन्द्रबाला का प्रिय शिष्य ?"

"हां श्रीमन् !"

"बहुत सुंदर, फिर तो कोई कठिनाई नहीं होगी। तुमने उसके प्रमुख भृत्य को…"

"वह तो एक सहस्र कार्षापण देखते ही मेरा दास बन गया।"

"उसे ओषधि दे दी ?"

"जी हां। एक सहस्र कार्षापण और देने का वचन दे आया हूं।"

"उत्तम ! तुमने पुरस्कार पाने योग्य कार्य किया है। अब तुम तापस का वेश बनाकर मेरे साथ चलने को प्रस्तुत रहो। ओषधि का प्रभाव पड़ने लगा होगा। किंतु, तुमने उस भृत्य से कह तो दिया था कि नायक के परिवार को ही ओषधि-मिश्रित भोजन कराये, स्वयं नायक को नहीं ?"

"जी हां श्रीमन् ! मैंने उसे भली भांति समझा दिया था।"

"तो ठीक है। जाओ, वेश परिवर्तित कर शीघ्र उपस्थित होओ।"

"रात्रि के प्रथम प्रहर में दो तापस मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र के प्रासाद के मुख्य द्वार पर जा खड़े हुए। तापस के वेश में जीवक की आयु पैंसठ-सत्तर वर्ष की लग रही थी। नन्दिसेन प्रौढ़ तापस बना हुआ था। दोनों की दाढ़ियां वक्षस्थल तक फैली हुई थीं। तापसों को देखते ही प्रहरी ने उनकी अभिवंदना की। वृद्ध तापस बोल उठा :

"क्यों पुत्र ! वसुमित्र के परिवार की कैसी दशा है ?" प्रहरी आश्चर्यचकित होकर वृद्ध तापस को देखने लगा। जीवक ने पुनः प्रश्न किया—

"बहरा है क्या ? मैं पूछता हूं कि मौल सेनाध्यक्ष की पत्नी, पुत्री, पुत्र आदि स्वस्थ हुए या नहीं ?"

"अ···आ···आ···आपको कैसे मालूम हुआ, प्रभो ?"

"ऋद्धि-प्रतिहार्य से ! जा, सेनापति को सूचना दे कि द्वार पर दो तापस खड़े हैं ।"

प्रहरी एक पल को भी वहां नहीं रुका; भागता हुआ प्रासाद के भीतर जा पहुंचा । वसुमित्र धर्मभीरु व्यक्ति थे । उस क्षण वे अपार कष्ट में थे । उनके परिवार के सभी सदस्य मूर्च्छितावस्था मे पड़े हुए थे । नगर के सभी प्रमुख वैद्य निराश हो चुके थे । प्रहरी के मुख से जब उन्होंने तापसों की चमत्कारपूर्ण बातें सुनी, तब वे स्वयं दौड़ते हुए मुख्य द्वार पर जा पहुंचे और वृद्ध तापस के चरणों पर गिर पड़े । वृद्ध तापस ने गंभीर स्वर में घोषणा की :

"तेरा दुःख दूर होगा । तू धर्मात्मा पुरुष है । किंतु, कभी-कभी पापियों का साथ दे देता है । फिर कर्मफल कौन भोगेगा ? चल, बता, कहां हैं तेरे परिवार के सदस्य ?"

मौलसेनाध्यक्ष की पत्नी की दशा बहुत ही शोचनीय हो गयी थी । वह अचेत पड़ी हुई थी । उसकी आंखें उलट गयी थीं, मुंह से राल की धार बह रही थी । वृद्ध तापस ने अपने झोले से एक चुटकी भस्म निकाल कर रोगिणी के मुख एव नासिका में डाल दिया ।

"चल, अब दूसरे रोगी के पास ले चल ।"—वृद्ध तापस ने आदेश दिया । सेनाध्यक्ष का एकमात्र तरुण पुत्र भी अचेत पड़ा था । तापस ने उसके मुंह में भी भस्म डाल दिया । इस प्रकार तापस ने एक-एक कर सभी रोगियों का निरीक्षण किया और अत में वसुमित्र ने कहा—"जाकर अपनी पत्नी को बुला ला । मैं मुखशाला में चल कर बैठता हूं ।"

वसुमित्र अब तक किंकर्तव्यविमूढ़ बने तापस के साथ चल रहे थे । तापस का आदेश सुन कर वे चौंक उठे और घबराहट-भरे स्वर में बोले :

"···वह···वह तो···अचेत पड़ी है ।"

"जाकर देख । अब पूर्णतया स्वस्थ होगी ।"—तापस गरज उठा । वसुमित्र भागे-भागे अपनी पत्नी के प्रकोष्ठ में पहुंचे तो वहां का दृश्य देख

कर चमत्कृत हो गये। प्रसन्नता के मारे उनकी आंखों में अश्रु छलक आये। उनकी पत्नी पर्यक की पीठिका के सहारे ओठंगी हुई विस्फारित आंखों से द्वार की ओर देख रही थी। वहां अपने पति को देख कर वह उठ खड़ी हुई और अस्फुट स्वर मे बोली :

"क्या हुआ था मुझे ? लगता है…जैसे…जैसे बहुत भयावह स्वप्न देख कर उठी हूं।"

वसुमित्र ने अपनी पत्नी को संक्षेप में पूरी कहानी कह सुनायी। तब तक परिवार के अन्य सदस्य भी स्वस्थ हो चुके थे।

मुखशाला में सबके एकत्र होने पर तापस ने पुन: एक-एक चुटकी भस्म सभी रोगियों को दिया और कहा :

"अब जाकर विश्राम करो।"

तापस का आदेश होते ही सब लोग वहां से चले गये। वहां बच रहे वसुमित्र, प्रौढ़ तापस नन्दिसेन एवं स्वयं वृद्ध तापस। मौल सेनाध्यक्ष ने कर-बद्ध होकर निवेदन किया :

"आपने आज मेरा उद्धार कर दिया। मैं आपकी शरण में हूं। आज्ञा कीजिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं।"

"तू मेरी क्या सेवा करेगा ? अब हम लोग चलेंगे। जा, अपने पातकी राजा ब्रह्मदत्त की सेवा कर।"

"वह तो मेरा पावन कर्तव्य है, भगवन् !'—वसुमित्र ने गिड़गिड़ा कर कहा। तापस गरज उठा :

"भ्रातृ-द्रोही, चरित्रहीन निरंकुश राजा की सेवा करना ही तेरा कर्तव्य है, तो फिर पाप क्या है ?"

"आप जानते हैं भगवन् कि मैं मौलसेनाध्यक्ष हूं। और मौल सैनिक परंपरा से राजा के रक्षक एवं आज्ञानुवर्ती होते हैं…"

"जानता हूं, जानता हूं। तभी तूने साधु पुरुष एवं पराक्रमी राजा दधिवाहन की हत्या करने वाले क्रूर ब्रह्मदत्त का विरोध नहीं किया।"

"हम तो सेवक हैं, भगवन् ! जो राजा होगा, उसी की सेवा करेंगे।"

"ब्रह्मदत्त को किसने राजा बनाया ? क्या उसके बड़े भाई दधिवाहन ने ? अंग के आर्यपट्ट पर इस पातकी का अधिकार है या महासती चन्द्रबाला

के पुत्र बिम्बिसार का ?''

''मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है। मैं तो अपने को दिग्भ्रमित-सा अनुभव कर रहा हूं।''

''तो फिर कर्मफल भोगने के समय क्यों रोता है ? अभी क्या हुआ है? शीघ्र ही तू अपने पाप के चलते परिवार-सहित विनाश को प्राप्त होगा; अंग श्मशान बन जायेगा; चम्पा एक विराट चिता का रूप धारण कर लेगी और तब तुझे दिशा का ज्ञान हो जायेगा।''

''नहीं शास्ता ! ऐसा न कहिए। मैं मूर्ख हूं। मेरा मार्ग-प्रदर्शन कीजिए। मैं अग को मिटते नहीं देख सकता।''

''अंग क्या है ? यहां की प्रजा ही अंग है। और प्रजा अकाल का ग्रास बनती जा रही है, राजा के अत्याचार से त्राहि-त्राहि कर रही है, सामन्त सुमन जैसा सम्मानित देशप्रेमी कारागार में अपने अंतिम दिन गिन रहा है, और कल ही तूने नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन को बंदी बना कर कारागार में डाल दिया, उसकी अबोध पुत्री देवदत्ता को ब्रह्मदत्त की वासना-तृप्ति के लिए धवलगृह के गर्भ-गृह में पहुंचा दिया। फिर भी कहता है कि तू अंग को मिटते नहीं देख सकता। अरे दुष्ट, तू स्वयं अपने हाथों से अंग के भाग्य फोड़ रहा है। तू•••।''

''बस कीजिए, शास्ता ! बस कीजिए। सत्य ही, मैं बहुत बड़ा पातकी हूं। मैं अब प्रायश्चित करने को प्रस्तुत हूं।''

''तो आज ही देवदत्ता को मुक्त कर दे।''

''किंतु, वह जायेगी कहां ? राजा के सैनिक पुनः उसे बंदी बना लेंगे।''

''इसकी तू चिंता मत कर। देवदत्ता को गुप्त रूप से मुक्त करके उसे मेरे इस शिष्य के सुपुर्द कर दे।''—वृद्ध तापस ने प्रौढ़ तापस की ओर संकेत करके कहा : ''यह तेरे पास ठहर जायेगा। मैं अब चलता हूं।''

''आपकी आज्ञा का पालन किया जायेगा शास्ता !''

''एक बात और सुन ले। अंग पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। शीघ्र ही यहां फिर से हर्यंक कुल का शासन स्थापित होने वाला है। ऐसा निश्चित है। यही ईश्वर की इच्छा है। तू भूल कर भी इस परिवर्तन का

विरोध नहीं करना।"

"नही करूंगा, शास्ता !"

"भणे नन्दि !"

"आज्ञा भगवन् !"

"देवदत्ता को शास्ता निगंठनाथ पुत्त के यहां पहुंचा देना। वहां वह सुरक्षित रहेगी।"

"जैसी आज्ञा प्रभो !"

वृद्ध तापस ने इसके पश्चात् वहां से प्रस्थान कर दिया। प्रौढ़ तापस वहीं ठहर गया। उस समय रात्रि का दूसरा प्रहर समाप्त हो रहा था। बाहर अखंड शांति परिव्याप्त थी। हवा भी निस्तब्ध थी। यहां तक कि मदिरालय एवं गणिकाओं की अट्टालिकाएं भी नींद में डूब गयी थीं।

वसुमित्र उसी क्षण धवलगृह की ओर चल पड़े। एक सहस्र विश्वसनीय सैनिक भी उन्होंने अपने साथ ले लिये थे। किंतु, उन सबको धवलगृह से कुछ दूर इधर ही छोड़ दिया और मात्र पांच पराक्रमी सैनिकों को लेकर आगे बढ़े। धवलगृह के निकट पहुंच कर वसुमित्र ने सैनिकों को आदेश दिया :

"तुम लोग धवलगृह के दक्षिणी गुप्त मार्ग पर चले जाओ। मैं अलिंद होकर गर्भ-गृह मे पहुंचता हूं। वहां के प्रहरियों को अपने पास बुलाकर मैं उनसे वार्तालाप करूंगा। वे समझेंगे कि मैं निरीक्षण करने आया हूं। तुम लोग घात में रहना। ज्यों ही मार्ग प्रशस्त देखना, देवदत्ता को लेकर सीधे मेरे प्रासाद में चले जाना। वहां एक तापस होंगे। देवदत्ता को उन्हीं के सुपुर्द कर देना।...और देखो, प्रतीक्षा में खड़े सभी सैनिक मेरे प्रासाद तक तुम लोगों के साथ जायेंगे, जिससे राह मे कोई राजसैनिक चुनौती न दे सके।"

पांचों अश्वारोही सैनिक रीति से अभिवादन कर धवलगृह के दक्षिण में उड़ चले। मौलसेनाध्यक्ष अपने अश्व पर चढ़े-चढ़े धवलगृह में जा पहुंचे।

प्रहरियों ने मौल सेनाध्यक्ष को देखा तो भय से सतर्क हो गये। धवलगृह के भीतर भी सन्नाटा छाया हुआ था। थोड़ी-थोड़ी दूर पर प्रहरी

सन्नद्ध थे। प्रहरियों का अभिवादन स्वीकार करते हुए वसुमित्र गर्भगृह में जा पहुंचे।

संपूर्ण कार्य सुचारु रूप से संपन्न हो गया। कहीं कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। वसुमित्र आश्वस्त होकर अपने प्रासाद में लौट आये। किसी को उन पर रंचमात्र भी शंका न हुई।

गिरिव्रज में अपूर्व ओज की लहर दौड़ रही थी। सहस्रों की संख्या में सशस्त्र सैनिक विजय-यात्रा के निमित्त सन्नद्ध थे। सम्राट् बिम्बिसार स्वयं इस विजय-यात्रा के सैनिकों के नायक थे। अतएव, सैनिकों में असीम उत्साह था। वर्षा-ऋतु का आरंभ हो चुका था। इसलिए, सेना में सहस्रों हाथियों की व्यवस्था की गयी थी। अश्व, रथ एवं पैदल सैनिकों की संख्या अपार थी। नागरिक गण अपनी अप्रतिम सेना को देखकर फूले नहीसमाते थे।

सूर्योदय होते ही प्रयाण-पटह बज उठा। तूर्य-निनाद से चारों दिशाएं गूंज उठीं। नान्दीक, गुंजा, काहल और शंख का सम्मिलित स्वर आकाश-पाताल को मथने लगा।

अश्व-सेना के कुछ सैनिक ब्राह्म मुहूर्त के बहुत पूर्व ही आगे चले गये थे। सेना में सबसे आगे विशाल हस्ति-सेना चल रही थी, उसके बाद रथ-सेना और तब पदाति। अश्व-सेना आगे भी थी और पीछे भी।

महाराज बिम्बिसार सुसज्जित हाथी पर चढ़े हुए थे। उनके आगे-

आगे दस प्रमुख नायक अश्व पर आरूढ़ होकर चल रहे थे और इधर-उधर पार्श्व में बहुत-से अश्वारोही सैनिक सतर्कता से आगे बढ़ रहे थे।

मगध की प्रचंड सेना अंग की राजधानी चम्पा की ओर बढ चली। सेना उत्तम चाल से चल रही थी, अतएव गिरिव्रज से प्रायः साढ़े सत्ताईस योजन दूर चम्पा पहुंचने मे मात्र चौदह दिन ही लगे। चम्पा नगर से कुछ दूर चम्पा नदी के इस पार ही मगध की सेना ने शिविर डाल दिया। चम्पा मे हाहाकार मच गया।

मध्याह्न बीत रहा था। चम्पा नदी के किनारे, मगध की सीमा मे एक खंडहर था। खंडहर की दीवारों की असंख्य ईंटें टूट कर बिखरी हुई थीं। उसके कोष्ठ टूट कर गिर गये थे या लटके हुए थे या उन पर काई जमी हुई थी। खंडहर एवं उसके आस-पास विभिन्न प्रकार के लता-द्रुम एव बहुत से वृक्ष उग आये थे।

उसी खंडहर के दाहिने स्थित शिलाखंड पर एक प्रौढ़ व्यक्ति चिंता-लीन बैठा था। उसकी आखें चम्पा नदी के उस पार नगर की ओर शून्य में जमी हुई थी। शिलाखंड के आस-पास बहुत से वृक्ष एवं लता-द्रुम उगे हुए थे, इसलिए वहां की छाया अधकार को भी चुनौती देती-सी लग रही थी। प्रौढ बहुत देर से वहां बैठा था। कदाचित् वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

खंडहर से प्राय: दस रज्जू दूर मगध की सेना का विराट शिविर दीख रहा था। प्रौढ़ व्यक्ति की देह पर मात्र एक उत्तरीय एवं कटि-प्रदेश में स्वच्छ, धवल अधोवस्त्र पड़ा हुआ था। न उसके पास कोई शस्त्र था, न उसकी देह पर कोई आभूषण। किंतु, उसके प्रभावशाली मुखमंडल से अपार शक्ति एवं प्रभुत्व-संपन्नता की प्रभा विकीर्ण हो रही थी।

अचानक अश्व की टाप सुनकर प्रौढ़ का ध्यान टूट गया। अश्वारोही शिविर की ओर से चलता हुआ प्रौढ़ के निकट तक आ गया था। वह सैनिक वेश में था। प्रौढ़ तक पहुचने के कुछ पहले ही वह अश्व से उतर पड़ा और पैदल चल कर प्रौढ़ के पास आकर बोला :

"महामात्य को सेनापति सुनीथ प्रणाम करता है।"

"आयुष्मान् सुनीथ !"—प्रौढ़ ने, जो अन्य कोई नहीं स्वयं महामात्य

वर्षकार थे, कहा : "अब यहां मेरी आवश्यकता नहीं रही। सब कार्य संपन्न हो गया। चम्पा के धवलगृह पर मगध की ध्वजा फहराना शेष है।"

"आप जायेंगे कहां ?"—सुनीथ ने आश्चर्य से पूछा। महामात्य ने सुनीथ की ओर देखकर मुस्करा दिया, मानो कह रहे हों कि 'तुम मात्र सैनिक हो, और कहा : "मुझे कुछ कार्य सपन्न करने हैं। शिविर में जाकर मेरा अश्व भेज देना और यदि महाराज मुझे स्मरण करें तो कह देना कि महामात्य का कहीं पता नहीं है।"

"किंतु, अभी युद्ध तो हुआ ही नहीं। यदि मगध की सेना···"

"मगध की सेना विजयी होगी, यह निश्चित है। अंग की शक्ति समाप्त हो चुकी है। दूत अभी आता ही होगा।"

"तो क्या ब्रह्मदत्त संधि-प्रस्ताव भेजेगा ?"

"नहीं। वह मगध की सेना से रणक्षेत्र में ही संधि करेगा।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? मगध की सेना को उसे विनष्ट करने का श्रेय प्राप्त होगा। अंग में हमारी भेद-नीति सफल हो गयी है। प्रजा, सामन्त एवं बहुत-से नायक ब्रह्मदत्त के विरुद्ध हो गये हैं। अतएव, चिंता की कोई बात नहीं है। प्रजा के हित को अनदेखी करने वाला राजा अपने मुकुट एवं आर्यपट्ट की तरह ही निर्जीव होता है। उसे विनष्ट कर देना बायें हाथ का खेल है। अब तुम मेरा अश्व मंगवाने का प्रबंध करो। शीघ्र !"

सेनापति सुनीथ ने अपने मुख से विचित्र पक्षी की ध्वनि की। प्रायः एक-डेढ़ पल में ही खंडहर के पीछे से दो सैनिक निकल आये। सुनीथ ने आदेश दिया :

"तुममें से एक तो जहां थे, वहीं सन्नद्ध रहो। और एक···तुम···हां, तुमसे ही कह रहा हूं, तुम जाकर महामात्य का अश्व ले आओ। कोई पूछे तो कह देना, सेनापति की आज्ञा है।"

दोनों सैनिकों के प्रस्थान कर जाने के बाद महामात्य ने कहा :

"तुम्हें यहीं प्रतीक्षा करनी है। कुमार अजातशत्रु का संदेश लेकर नन्दिसेन आने वाला है।"

"चम्पा पर अभियान कब करना होगा ?"

"इसका निश्चय अजातशत्रु के सदेश पर निर्भर करता है।"

"आपके दर्शन फिर कहा होगे ?"

"गिरिव्रज मे।"

"किंतु, अग की व्यवस्था कौन करेगा ?"

"कुमार अजातशत्रु। वे ही अग के मडलेश्वर होगे। मेरी यह इच्छा महाराज पर प्रकट कर देना। यदि महाराज के मन मे कोई सकोच उत्पन्न हो तो अपने प्रभाव से कार्य सपन्न करा लेना।"

"आपकी आज्ञा का मैं पालन करूगा महामात्य ! आप निश्चिन्त रहें।"

महामात्य का अश्व आ गया। देखते-देखते महामात्य अपने अश्व पर आरूढ़ होकर अदृश्य हो गये। सेनापति सुनीथ वही शिलाखड पर बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे। इसी मे कुछ समय व्यतीत हो गया कि अचानक वे चौंक कर खडे हो गये। नदी के उस पार बहुत दूर पर धूल उडती हुई दिखाई पड़ी। वे द्विधा में पड गये कि उन्हे शिविर मे दौड जाना चाहिए या वही प्रतीक्षा करनी चाहिए ? महामात्य का आदेश उनके परोक्ष मे भी टालने का उन्हें साहस नही हुआ। उन्होने पुनः पक्षी जैसी ध्वनि की। दोनों सैनिक आ उपस्थित हुए। सुनीथ ने आदेश दिया :

"वह देखो, हमारे दूत के वापस आने के पूर्व ही अग की सेना चली आ रही है। शीघ्र शिविर मे जाओ और दसो सेनापतियो से यहा उपस्थित होने का निवेदन करो। महाराज को भी सूचना मिल जानी चाहिए। मैं यह स्थान अभी छोड नही सकता।"

दोनों सैनिक शीघ्र ही खडहर के पीछे अतर्धान हो गये। ठीक उसी समय नदी के भीतर से एक व्यक्ति ऊपर निकल आया। सेनाध्यक्ष सुनीथ उस व्यक्ति को देख कर प्रसन्न हो उठे। उस व्यक्ति के निकट आने पर सेनाध्यक्ष ने मुस्करा कर पूछा :

"कहो नन्दि ! पानी के भीतर सांस लेने में कठिनाई तो नहीं हुई ?"

"नहीं आर्य ! मुझे इसका अभ्यास है।" नन्दिसेन ने करबद्ध होकर उत्तर दिया। सुनीथ ने नदी के पार दूर पर उड़ती हुई धूल की ओर संकेत करके पूछा :

"तुम अपने साथ वह क्या लेते आये ?"

नन्दिसेन हंसता हुआ बोला :

"वह तो पृथ्वी से उठी हुई धूल है श्रीमन्, जो अंगराज ब्रह्मदत्त के विनाश की सूचना दे रही है।"

"तुम्हारा कथन सही प्रतीत होता है। कुमार अजातशत्रु का क्या संदेश है ?"

"उन्होंने कहा है कि···"—नन्दिसेन ने कहना आरंभ किया था कि उसकी दृष्टि शिविर की ओर से चले आ रहे अश्वारोहियों पर अटक गयी। सुनीथ ने भी उन अश्वारोहियों को देखा और आदेश दिया : "तुम अपना वक्तव्य पूरा करो।"

"उन्होंने कहा है कि चम्पा के उत्तर, दक्षिण और पूर्व के क्षेत्र सर्वथा अरक्षित हैं। मगध की अश्व-सेना गुप्त रूप से उत्तर की ओर बढ़ कर प्रायः छह योजन ऊपर जाकर नदी पार कर ले और फिर अग की सेना की ओर प्रत्यावर्त्तन करे। पदाति सेना दक्षिण मे दो योजन जाकर नदी पार कर ले। सूर्योदय के साथ ही दोनों ओर से अग की सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया जाय। उसी समय नगर, धवलगृह एवं शस्त्रागार पर आधिपत्य करके सिंहपाद सैनिकों के साथ कुमार अजातशत्रु भी यहां आ पहुंचेंगे। हस्तिसेना यही रहे और प्रातःकाल तक अग की सेना को नदी के पार न होने दे।"

"बहुत सुंदर ! कुमार अजातशत्रु निश्चय ही दूरदर्शी योद्धा हैं। नायको ! आपने अजातशत्रु की इच्छा जान ली?"

"हां, हां, हम लोग सहमत हैं। बस आदेश की प्रतीक्षा है।"—सभी नायक एकसाथ बोल उठे। सेनाध्यक्ष सुनीथ ने कहा :

"तो ठीक है। छह योजन ऊपर जाने में, नदी पार करके पुनः छह योजन वापस आने में अश्वारोहियों को अधिक से अधिक आठ घटे लगेंगे और पदातियों को भी दो योजन दक्षिण जाकर आने मे लगभग इतना ही या इससे कुछ अधिक समय लगेगा। अतएव, शीघ्रता कीजिए। शखध्वनि होने दीजिए। हस्तिसेना को आगे कीजिए। सभी हाथियों को नदी के किनारे पंक्तिबद्ध करके खड़ा कर दिया जाय।"

"जो आज्ञा।"—कहकर नायकों ने शंखध्वनि से मगध के शांत शिविर को चौंका दिया। शिविर में चहल-पहल आरंभ हो गयी। तूर्य-निनाद से दिग्दिगंत गूंज उठे। हस्तिसेना नदी की ओर बढ़ने लगी। शेष कार्य भी योजनाबद्ध ढग से चलने लगा।

उधर अग की सेना नदी के तट पर आकर रुक गयी। ज्यों ही अंग के सैनिक नदी की धार में उतरने का प्रयास करते, मगध के कुशल धानुष्क बाणों की वर्षा आरंभ कर देते। अंग के बहुत-से अश्वारोही एवं पदाति सैनिक काल के ग्रास हो गये। फिर भी उन्हें सफलता नही मिली।

संध्या होते ही युद्ध रुक गया। दोनों ओर के प्रहरी सतर्क होकर पहरा देने लगे। चारों ओर अखंड जड़ता व्याप्त हो गयी। उल्काओं के प्रकाश नृत्य करने लगे। बीच में चम्पा नदी चुपचाप बहती चली जाती रही। कभी-कभी, अंधेरे के कारण अपना मार्ग भूलकर नदी की धारा लड़खड़ा उठती थी।

चम्पा नगर पर मृत्यु की सी शांति व्याप्त थी। नगर में मात्र वृद्ध, बालक एवं स्त्रियां बच रही थी। ब्रह्मदत्त ने अस्वस्थ युवकों को भी सेना में नियुक्त होने पर विवश कर दिया था। अतएव, नगर में बचे हुए लोग मन ही मन ब्रह्मदत्त की भर्त्सना कर रहे थे। सबके-सब अपने-अपने घरों में बंद थे; किंतु, नींद सबकी आंखों से भाग गयी थी। मागध सेना के आतंक से सभी सहमे हुए थे—भयभीत थे।

नगर के प्रमुख पथों पर अश्वारोही सैनिक चक्कर काट रहे थे। तीसरा प्रहर व्यतीत हो रहा था कि अचानक सहस्रों अश्वों की टापों से चम्पा नगर हिल उठा। बच्चे मां की गोद में दुबक गये, वृद्ध एवं स्त्रियां गवाक्षों से बाहर झांकने लगीं। बाहर उल्काओं के प्रकाश दौड़ रहे थे, अश्वों की टाप का भयावह स्वर गूंज रहा था, चीत्कार एवं जय-जयकार के स्वरों से अंधकार का हृदय विदीर्ण होता जा रहा था।

आक्रमणकारी और कोई नहीं, अजातशत्रु के सिंहपाद सैनिक थे। आक्रमणकारियों का मुख्य दल सर्वप्रथम धवलगृह जा पहुंचा। उस दल का नेतृत्व स्वयं अजातशत्रु कर रहा था। उसका अप्रतिम शौर्य एवं पराक्रम

देखते ही बनता था। उसके समक्ष शत्रु पक्ष का जो भी योद्धा आता, क्षण में दो टूक होकर पृथ्वी पर तड़पने लगता था। लगता, जैसे अजातशत्रु विद्युत हो। उसी गति से वह शत्रु का विनाश करता हुआ धवलगृह जा पहुंचा। धवलगृह के रक्षक असावधान थे। कुछ समय तक तो उनकी समझ में ही नहीं आया कि ये आक्रमणकारी किधर से आ टूटे। येन-केन-प्रकारेण उन रक्षकों ने सिंहपाद सैनिकों का प्रनिरोध किया। किंतु एक सिंहपाद सैनिक दस रक्षकों के बराबर था। इसके अतिरिक्त अजातशत्रु जैसा उद्भट, अनुपम, अपूर्व योद्धा उनका नायक था। वहां प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। रक्षको के शवों से धवलगृह का प्रांगण पट गया। धवलगृह पर अजातशत्रु की सिंहपाद चिह्नित ध्वजा लहराने लगी।

कारागार एवं शस्त्रागार पर भी अजातशत्रु का आधिपत्य स्थापित हो गया। प्रजाजनों के रोम तक का स्पर्श नही किया गया। सामंत सुमन एवं नगरश्रेष्ठी कुलाजिन अजातशत्रु के साथ हो लिये।

सिंहरथ के नायकत्व में पांच सहस्र सिंहपाद सैनिक नगर में व्यवस्था स्थापित करने के लिए पीछे ठहर गये। शेष चम्पा नदी की ओर अग्रसर हुए। ब्राह्म मुहूर्त मे अधिक विलम्ब नही था।

अजातशत्रु चम्पा नदी से कुछ दूर इधर ही ठहर गया और संकेत एवं समय की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ काल पश्चात् दक्षिण दिशा से एक अश्व आता दीख पड़ा। अश्व द्रुत गति से चला आ रहा था। नायक जब तक अजातशत्रु को शिविर में सूचना देने पहुंचा तब तक वह अश्वारोही स्वयं ही वहां पहुंच गया। अश्वारोही को देखते ही अजातशत्रु ने मुस्करा कर प्रश्न किया :

"कहो नन्दिसेन ! क्या समाचार है ?"

"आपके आदेशानुसार संपूर्ण व्यवस्था हो चुकी है। पूर्वाह्न के ढाई मुहूर्त पूर्व आप अपने सैनिकों के साथ युद्धस्थल मे पधारने का कष्ट करें।"

"बहुत सुंदर ! अभी तो दो मुहूर्त शेष हैं। तब तक तुम भी विश्राम करो। मेरे सिंहपाद सैनिक भी क्लांत हो गये होंगे।"

"नहीं आर्य !" नन्दिसेन ने प्रतिवाद किया—"सिंहपाद सैनिक क्लांत होना नहीं जानते।"

"तुम्हारी यह गर्वोक्ति प्रशंसनीय है, नन्दिसेन !"

"चम्पा पर प्रभुत्व स्थापित करने में कोई कठिनाई तो नहीं हुई ?"

"नही भणे ! सिंहपाद सैनिक निश्चय ही प्रचंड पराक्रमी हैं। इनके लिए किसी भी शत्रु देश को अधीनस्थ कर लेना बायें हाथ का खेल है।"

"यह आपकी महानता है प्रभो, कि आप अपने नेतृत्व को गौण मानते हैं।"

"नही नन्दिसेन ! मैं सत्य ही कह रहा हूं। ब्रह्मदत्त के दस सहस्र से ऊपर सैनिक चम्पा में उपस्थित थे। मेरे तीन सहस्र सैनिक तो चम्पा नदी तथा नगर के मध्य का मार्ग अवरुद्ध करने में व्यस्त रहे, शेष सात सहस्र सैनिकों की सहायता से ही मैंने चम्पा नगर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। यदि मेरे सिंहपाद सैनिक पराक्रमी नहीं होते तो निश्चय ही मैं पराजित हो जाता।"

"चम्पा से ब्रह्मदत्त का कोई सैनिक बच कर ब्रह्मदत्त के शिविर में तो नही पहुंचा ?"

ऐसी आशंका निर्मूल दीखती है। मेरे सैनिक मार्ग अवरुद्ध किये सन्नद्ध थे। फिर ब्रह्मदत्त के शिविर से अब तक कोई सैनिक गुल्म तो आया नहीं।"

"यह तो चमत्कार हो गया महाराज !"

नन्दिसेन के साथ अजातशत्रु वार्तालाप में संलग्न रहे और प्रयाण करने का समय आ गया।

ब्रह्मदत्त की सेना के नायकों ने देखा कि अंग की सीमा से होकर उत्तर एवं दक्षिण से विशाल सेना चली आ रही है। वे सबके-सब घबरा उठे। उधर पश्चिम में नदी के पार, मगध की विशाल हस्ति-सेना साक्षात् काल सदृश जमी हुई थी।

नायकगण त्राहि-त्राहि करते हुए ब्रह्मदत्त के पास यह भयावह समाचार लेकर पहुंचे। ब्रह्मदत्त ने अपना सिर पीट लिया। वह उन्मादी जैसा चीख उठा :

"तुम लोगों ने मेरे साथ विश्वासघात किया। मगध सेना के आने के

पूर्व ही मैं तुम लोगों का शिरोच्छेद करवा दूंगा। कहां हैं मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र !"

वसुमित्र अपने कांडपटमंडप में थे। संवाद मिलते ही आ पहुंचे :

"महाराज की जय हो ! सुना, महाराज ने सेवक को स्मरण किया है।"

"महाराज का विनाश होने जा रहा है, मौल सेनाध्यक्ष ! इन नायकों ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। इन्हे मैं विनष्ट कर दूगा।

"क्या मैं वस्तुस्थिति जानने की धृष्टता कर सकता हू ?"

"इन नायको ने मुख्य मार्गों पर प्रहरी नियुक्त नही किये और अब देखिए कि उत्तर-दक्षिण से हमारा शिविर शत्रु-पक्ष के सैनिकों से घिर गया है।"—ब्रह्मदत्त ने घबरा कर कहा। वसुमित्र शांत भाव से महाराज की बात सुनते रहे। बोले कुछ नहीं। ब्रह्मदत्त का उन्माद बढ़ता जा रहा था। तभी एक सैनिक ने आकर सूचना दी :

"महाराज की जय हो ! शत्रु-पक्ष की सेना अब हमारे शिविर से मात्र एक कोश दूर रह गयी है। ब्रह्मदत्त यह सुनकर चीख उठा :

"तो मैं क्या करूं ? इन विश्वासघाती नायकों से कहो।···मौल सेनाध्यक्ष ! आप सुन रहे हैं ?"

"सुन रहा हूं, महाराज !"

"तो फिर आप निष्क्रिय होकर क्यों खड़े हैं ? कोई उद्यम कीजिए। पहले इन विश्वासघातियों के शिरोच्छेद का प्रबंध कीजिए। शीघ्र !"

"आप अपने नायकों का ही शिरोच्छेद करवा दीजिएगा तो शत्रु का सामना कौन करेगा ?" वसुमित्र की बात सुनकर ब्रह्मदत्त अवाक् होकर देखता रहा और घबराहट के स्वर में बोला :

"तो···तो···तो आप···आप भी मेरे विरोधी हो गये ?"

"मैं महाराज ब्रह्मदत्त का विरोधी कभी नहीं हो सकता।"

"फिर मेरे आदेश का पालन क्यों नहीं करते ?"

"ऐसा आदेश महाराज ब्रह्मदत्त नहीं दे सकते ?"—वसुमित्र ने पूर्ववत् शांत स्वर में उत्तर दिया। राजा ब्रह्मदत्त चौंक उठा। बोला :

"फिर···फिर मैं कौन हूं ?"

"आप ही राजा ब्रह्मदत्त हैं।"

तभी एक सैनिक ने आकर सूचना दी :

"शत्रु-पक्ष की सेना अब हमारे शिविर से मात्र आध क्रोश दूर रह गयी है। कोलाहल स्पष्ट सुनायी पड़ने लगा है।"

"मौल सेनाध्यक्ष !"

"आज्ञा, श्रीमन्।"

"युद्ध की घोषणा कीजिए। तूर्यनाद करवाइए। शंख एवं नांदीक बजने दीजिए।"

"मेरे विचार में यह सब व्यर्थ होगा, श्रीमन् !"

"व्यर्थ होगा ? कहते क्या हैं आप ?"

"सत्य ही कह रहा हूं। उत्तर से विशाल अश्व-सेना, दक्षिण से असंख्य पदाति सैनिक और सामने पश्चिम में नदी के उस पार हाथियों की असीम, विराट पंक्ति हमें ग्रस लेने को पर्याप्त है।"

"महाराज की जय हो !"—एक अस्त-व्यस्त प्रौढ सैनिक ने आकर अभिवंदना की। सैनिक के बहुमूल्य वस्त्र पसीने से भीग गये थे, और उसकी सांस फूल रही थी। वह कोई उच्चाधिकारी प्रतीत होता था। महाराज ने आश्चर्यचकित होकर उस सैनिक को देखा और प्रश्न किया :

"कौन···दौवारिक !"

"हा श्रीमन् ! अनर्थ हो गया। मागध कुमार अजातशत्रु ने चम्पा नगर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।"

"क्या कहा ?···च···च···चम्पा अब अजातशत्रु के अधीन है ?"

"हां, महाराज !"

"और तुम लोग मुंह देखते रह गये ?"

"आकस्मिक आक्रमण से हम लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, श्रीमन् !"

"किंतु, वह चम्पा पहुंचा कब ?—किस मार्ग से ?"

"यह तो मुझे नहीं मालूम। अजातशत्रु ने नगर के चारों ओर प्रहरी नियुक्त कर दिये हैं और वह स्वयं आपका सामना करने के लिए इसी ओर अग्रसर हो रहा है।"

"सर्वनाश !"—वसुमित्र ने कहा। किंतु, उनके स्वर में आश्वस्त होने का भाव स्पष्ट था।

बाहर कोलाहल उभर उठा। अश्वों की टाप, रथों की घरघराहट, सैनिकों के चीत्कार एवं हाथियों की चिंघाड़ ने शिविर को चारों ओर से रेगिस्तानी रेत के झंझावात-सा ढंक लिया। राजा ब्रह्मदत्त उन्मादी की भांति चीखता हुआ बाहर की ओर दौड़ पड़ा। शिविर मे कुहराम मचा हुआ था। नदी पार की हस्ति-सेना आधी नदी पार कर चुकी थी। अंग के मुट्ठी-भर योद्धा आतंकित मन से हाथियों पर बाण की वर्षा कर रहे थे। किंतु, हाथियों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। वे स्थितप्रज्ञ जैसे बढ़ते ही जा रहे थे। हस्ति-सेना की सतत प्रगति देखकर अंग के योद्धाओं के पाव उखड़ने लगे।

अंग के सैनिक बिना किसी नायक के युद्ध कर रहे थे। वे सहस्रों की संख्या में, कीट-पतंगों की तरह, धराशायी होते जा रहे थे। ब्रह्मदत्त ने अपने शिविर में चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। वहां उसे साक्षात भैरवी की लीला-भूमि दृष्टिगोचर हुई। शवों का अंबार लगा हुआ था, रक्त की धारा से सूखी मिट्टी गीली हो गयी थी। कहीं अश्व उछल रहा था तो कहीं पदाति सैनिक धकापेल मचाये हुए थे। तभी उसकी दृष्टि पश्चिम ओर पड़ी, जिधर मगध की हस्ति-सेना नदी पार कर धूल के गुब्बारे उड़ाती हुई विराट मेघ-खंड सदृश बढ़ी चली आ रही थी।

हस्ति-सेना को आते देखकर अंग की सेना में खलबली मच गयी। सभी प्राण लेकर नगर की ओर भागने लगे। इसी बीच उधर अजातशत्रु की विशाल सेना बांध की तरह आ खड़ी हुई थी। ब्रह्मदत्त का मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। वह अपने निजी कांडपटमंडप की ओर बढ़ना ही चाहता था कि सामने के हाथी से एक बाण सनसनाता हुआ आया और उसकी ग्रीवा के पास पसली में चुभ गया। वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। पुनः उसने उठने का प्रयत्न किया। सामने से चला आता हुआ हाथी तब तक बैठ चुका था। उस हाथी पर स्वयं सम्राट् बिम्बिसार विराजमान थे। उन्होंने ब्रह्मदत्त के निकट पहुंचकर ऊंचे स्वर में कहा—"मैं हूं, मगधपति बिम्बिसार। पह-चान लो।"

ब्रह्मदत्त पृथ्वी पर पडा हुआ था। उसकी ग्रीवा से पर्याप्त रक्त प्रवाहित हो चुका था। उसने आंखें खोलकर बिम्बिसार को देखा। बिम्बिसार ने पुनः ऊचे स्वर में कहा :

"तुमने मेरे पिता की हत्या करके मुझे प्रतिशोध लेने पर लाचार कर दिया। यही यह बाण है, जिससे तुमने मेरे पिता भट्टिय हेमजित के प्राण लिये।"

ब्रह्मदत्त कुछ नही बोला। मात्र उसके पीले होंठ फड़फड़ा उठे, मानो कह रहे हों—'कोई अमर नहीं है। तुम भी नही।'

चम्पा में प्रसन्नता का पर्व मनाया जा रहा था। नागरिक आश्वस्त एवं निश्शंक होकर इधर-उधर घूम रहे थे। राज-पथ को बहुत सुंदर ढंग से सजाया गया था। नगर के प्रमुख मार्गों के दोनों ओर की अट्टालिकाओं पर शत सहस्र दीप जगमगा रहे थे। सहस्त्रों सिंहपाद सैनिक सतर्कतापूर्वक चम्पा की वीथियों में अश्वारूढ़ हो चक्कर लगा रहे थे। यद्यपि चम्पा के नागरिक शंकित थे, फिर भी वे अपने भोजन-पान, वार्तालाप या दौड़-धूप में सामान्य रूप से व्यस्त थे।

सम्राट् बिम्बिसार अजातशत्रु को अंग का शासक एवं मंडलेश्वर नियुक्त कर सेना सहित मगध के लिए प्रत्यावर्तन कर चुके थे। अजातशत्रु की सेवा में रह गये थे, लगभग दस सहस्र सिंहपाद सैनिक तथा मगध के चुने हुए बीस सहस्र योद्धा। मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र के नेतृत्व में अंग की

मौल सेना अजातशत्रु को अंग का राजा मान चुकी थी।

उस दिन राजाज्ञा हुई थी कि संपूर्ण अंग महाजनपद में विजयोत्सव मनाया जाय। "कैसा विजयोत्सव ?"—यह प्रश्न नागरिकों को द्विधाग्रस्त किये हुए था। यद्यपि ब्रह्मदत्त से सभी चिढ़े हुए थे, निराश एवं क्रुद्ध थे, तथापि अंग की प्रजा इस भाव से मुक्त नहीं हो सकी थी कि ब्रह्मदत्त उनका राजा था। फिर भी राजाज्ञा की उपेक्षा करने का साहस किसी में नहीं था।

नगरश्रेष्ठी कुलाजिन का प्रासाद विशेष उत्साह को ध्वनित कर रहा था। वहां सहस्रों दीप जगमगा रहे थे। प्रासाद के प्रांगण में समज्या समारोह का आयोजन किया गया था। वहां सुरा, मैरेय, कापिशायनी आदि मदिराओं की नदी प्रवाहित हो रही थी। सभी अपनी-अपनी इच्छानुसार अपनी प्रिय मदिरा का पान कर रहे थे। गीत-नृत्य-वादित्र की गूंज से वातावरण अनुरागमय हो उठा था।

उत्साह एवं उल्लास का एक विशेष कारण भी था। आर्यपुत्र अजातशत्रु नगरश्रेष्ठी के घर पधारने वाला था। नगरश्रेष्ठी कुलाजिन गर्व एवं उल्लास से भरे हुए थे। वे उत्साहपूर्वक अतिथियों का स्वागत करते दिखाई दे रहे थे। राजा अजातशत्रु के दर्शन करने की बलवती इच्छा से प्रेरित होकर बहुत-से अनाहूत अतिथि भी वहां पहुच गये थे।

अजातशत्रु की ख्याति चारों ओर कथा-कहानी बनकर फैल गयी थी। उसके रूप, उसकी आयु, उसके पराक्रम आदि विभिन्न गुणों की चर्चा घर-घर में होने लगी थी। चम्पा में छद्मवेश धारण कर निवास करने की उसकी कहानी ने कई रूप एवं रंग धारण कर लिये थे। उन रंगों में चमत्कार का पुट अधिक था।

जब लोगों ने सुना कि राजा अजातशत्रु आज नगरश्रेष्ठी कुलाजिन के यहां समज्या समारोह में सम्मिलित होने वाले हैं, तब वे सध्या होते ही कुलाजिन के प्रासाद की ओर उमड़ पड़े।

अपराह्ण व्यतीत हो गया। पूर्वरात्र का प्रथम मुहूर्त भी बीत चला कि तभी राजा अजातशत्रु धवलगृह से निकला। वह एक कम्बोजी अश्व पर आरूढ़ था। उसके एक ओर जीवक और दूसरी ओर सेनापति सिंहरथ

अश्वारूढ़ हो चल रहे थे। पीछे बहुत-से अश्वारोही सैनिक मर्यादित ढंग से अनुकरण कर रहे थे। नगरश्रेष्ठी कुलाजिन ने द्वार पर पहुंचकर अजातशत्रु का स्वागत किया। अजातशत्रु को देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

"सामंत सुमन को नहीं देख रहा हूं !"—अजातशत्रु ने चारों ओर दृष्टि फेंकते हुए पूछा। कुलाजिन ने तत्क्षण उत्तर दिया :

"भीड़ के भय से कहीं एकांत में खड़े होंगे।"

"और मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र ?"

"वे भी पधार चुके हैं श्रीमन् !"

सब लोग प्रसन्न थे, उल्लास एवं उत्साह से भरे हुए थे। मात्र देवदत्ता बहुत ही उदास, दु:खी एवं खिन्न-मन होकर प्रासाद की चंद्रशालिका में चिंतालीन हो बैठी थी। अजातशत्रु ने अंग-विजय के पश्चात ही नगर-श्रेष्ठी कुलाजिन के समक्ष देवदत्ता के पाणिग्रहण का प्रस्ताव रख दिया था। कुलाजिन ने यह प्रस्ताव सुनकर अपना भाग्य सराहा। किंतु, अजात-शत्रु ने इस प्रस्ताव के साथ ही मुस्कराकर निवेदन कर दिया था :

"देवदत्ता को मालूम न हो कि मैं वही व्यापारी हूं, जो बहुशालिक में ठहरा हुआ था।" कुलाजिन सहमत हो गये थे।

देवदत्ता ने जब सुना कि बिम्बिसार-पुत्र अजातशत्रु से उसका विवाह होने वाला है, तब वह हार्दिक क्लेश से मरणासन्न-सी हो उठी। वह भागी हुई बहुशालिक में जा पहुंची। वहां उसके प्रिय व्यापारी युवक का चिह्न तक नहीं था। निस्संदेह, कौमारभृत्य जीवक वहां उपस्थित था। उसने देवदत्ता का स्वागत किया, किंतु देवदत्ता ने रथ पर बैठे-बैठे ही प्रश्न किया :

"यहां कोशल के जो तरुण व्यापारी ठहरे हुए थे, वे कहां गये ?"

"वे ?…वे तो चले गये।"—जीवक ने मुस्करा कर कहा। देवदत्ता जीवक की मुस्कान देखकर जल उठी। वह अन्यथा भाव से उत्पीड़ित होकर बोली :

"कब चले गये ? कहां चले गये ?"

"उन्हें यहां से प्रस्थान किये कई दिन हो गये, किंतु मुझे यह नहीं

मालूम कि वे कहां गये । मैं तो सोचता था कि आपके साथ ही वे भी···"

देवदत्ता जीवक की पूरी बात सुनने के पूर्व ही वहां से भाग चली । और तब से आज तक उसे किसी ने हंसते नहीं देखा । आज अजातशत्रु के आगमन की सूचना मिलने पर वह दुःख, ग्लानि एवं तीव्रतम मानसिक प्रतिक्रियाओं से मरी जा रही थी। चंद्रशालिका के एकांत में बैठी हुई वह उद्विग्न होकर जीवन-मृत्यु के द्विधा-ग्रस्त मार्ग का निश्चय कर रही थी। संकल्प-विकल्प के ज्वार से उसकी आंखें भर-भर आती थीं। नीचे प्रांगण का कोलाहल उसके कानों में मृत्यु के चीत्कार-सा चुभ रहा था। तभी किसी ने धीरे से पुकारा :

"देवदत्ते !"

देवदत्ता को लगा, जैसे वह स्वप्न देख रही हो। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने ध्यानपूर्वक उस व्यक्ति को देखा, जो उसे पुकार रहा था। फिर उसने उस व्यक्ति पर से दृष्टि हटाये बिना आसपास के दृश्य-श्रव्य जगत का आभास लिया। उसे विश्वास हो गया कि वह जाग्रत एवं जीवित अवस्था में है। उस व्यक्ति ने बिल्कुल निकट आकर फिर पुकारा। देवदत्ता आनंदातिरेक से विह्वल होकर उस व्यक्ति के चरणों पर लेट गयी। अपनी स्थिति का अनुभव कर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उस व्यक्ति ने देवदत्ता को बलपूर्वक उठाकर बायीं बांह के सहारे खड़ा किया और कहा :

"रो क्यों रही हो ?" देवदत्ता सिसक-सिसककर रोती हुई बोली :

"तुम···तुम···कहां चले गये थे ?"

"कहीं नही।"

"मैं तुम्हें ढूंढ़ती हुई बहुशालिक पहुंची थी। वहां तो तुम थे नहीं !··· किंतु···किंतु···यह तुमने अपना वेश क्यों बदल रक्खा है ?

"कैसा वेश ?"

"यही, राजाओं-जैसा ?"

"क्या यह वेश तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

"लगता है। तुम जिस वेश में भी रहो, मुझे प्रिय ही लगोगे। किंतु··· मैं···मैं बड़ी अभागी हूं। मेरे पिता को यश एवं प्रतिष्ठा की लिप्सा ने

विवेकहीन बना दिया है। वे मेरा विवाह मगध-सम्राट् बिम्बिसार के पुत्र अंगराज अजातशत्रु से कर देने का निश्चय कर चुके हैं। मुझे यहां से ले चलो, अन्यथा मैं प्राण दे दूंगी। अभी···अभी वह दुष्ट अजातशत्रु नीचे प्रांगण में आया होगा।"

चिंता मत करो देवदत्ते ! तुम मेरी हो और मेरी ही रहोगी। विश्व की कोई शक्ति तुम्हें मुझसे अलग नही कर सकती।"

"तो चलो, यहां से भाग चलें।"

"हां।"

"तो ऐसा करो। मैं यहां प्रतीक्षा करता हूं। तब तक तुम वस्त्र आदि परिवर्तित कर आओ। हम लोग नीचे प्रांगण में समज्या समारोह में सम्मिलित होने चलेंगे और वही से अवसर देखकर भाग निकलेंगे। द्वार पर मेरा अश्व भी प्रस्तुत है।"

भोली देवदत्ता सचमुच ही वस्त्र आदि परिवर्तित कर समज्या समारोह में सम्मिलित हो गयी। वहां पहुंचने पर वह कौतूहल से भर उठी। जिसे देखो, वही उसके प्रेमी श्रेष्ठि-पुत्र का अभिवादन करता था। वहां अजातशत्रु का पता भी नहीं था। अजातशत्रु के प्रति उसके मन मे इतनी वितृष्णा थी कि किसी से यह पूछने की भी उसकी इच्छा नहीं हुई कि राजा अजातशत्रु कौन है ? वह श्रेष्ठि-पुत्र के साथ उद्यान में घूमती रही। उसने नृत्य में भी हिस्सा लिया। आनंद में वह अचेतन हो रही थी। एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी। समज्या का उल्लास बढता ही गया। गीत-नृत्य वादित्र का रंग निखरता गया। मैरेय एवं कापिशायनी का प्रभाव सबके अंग-प्रत्यंग में परिलक्षित होने लगा।

"कब चलोगे ?"—एकांत पाकर देवदत्ता ने श्रेष्ठि-पुत्र से प्रश्न किया। श्रेष्ठि-पुत्र मुस्कराकर बोला :

"मेरे साथ चलकर बाद में पश्चाताप तो नहीं करोगी ?"

"क्यों व्यंग्य करते हो। पहले ही बहुत क्लेश पा चुकी हूं।"—देवदत्ता ने करुण स्वर में कहा। श्रेष्ठि-पुत्र ने मुस्कराकर कहा :

"तुम पर मैं व्यंग्य नहीं कर सकता देवदत्ते ! किंचित् सोचो तो सही। कहां अग का राजा अजातशत्रु, मगध साम्राज्य का भावी सम्राट् और

कहां मैं ? अजातशत्रु के साथ विवाह करके तुम पट्टमहिषी बनोगी और मेरे साथ…"

"बस, चुप रहो। यदि फिर ऐसी बात की तो मैं अपने प्राण दे दूंगी। तुम श्रेष्ठि-पुत्र न होकर अति साधारण कर्मकर भी होते, तो तुम्हारे समक्ष सोलहों महाजनपदों के किसी एकराट् को तुच्छ समझती।"

"किंतु, मुझमें ऐसा कौन-सा गुण है जिस कारण तुम मुझे इतना प्यार करती हो ?"

"मेरे प्रेम के कारण तुम स्वयं हो। प्यार का माप-दंड यदि गुण होता, तो सभी नारियां या तो अविवाहित रह जातीं या किन्हीं दो-चार व्यक्तियों से ही सभी विवाह कर लेतीं। नारी गुण का नहीं, पुरुष का वरण करती है।"

"अद्भुत ! देवदत्ते ! तुम सत्य ही विलक्षण हो। आओ, अपने पिता के पास चलो।"

"किंतु, वे तो…"

"तुम निश्चित रहो। कुछ कारणों से तुम्हारे पिता मेरा अनुरोध टाल नहीं सकते।"

दोनों नगरश्रेष्ठी कुलाजिन के पास पहुंचे। देवदत्ता सशंकित एवं भयभीत थी। कुलाजिन के निकट ही मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र, सामन्त सुमन, कौमारभृत्य जीवक एवं सेनापति सिंहरथ उपस्थित थे। श्रेष्ठि-पुत्र को देख कर वे सबके-सब उठ खड़े हुए। देवदत्ता अपने प्रेमी का प्रभाव देख कर किंचित् आश्वस्त हुई। श्रेष्ठि-पुत्र ने उन सब लोगों की उपस्थिति में कुलाजिन से अनुरोध किया :

"अपनी पुत्री देवदत्ता का हाथ मेरे हाथ में देकर मुझे कृतार्थ कीजिए।" नगरश्रेष्ठी कुलाजिन ने निस्संकोच होकर देवदत्ता का हाथ कोशल के श्रेष्ठिपुत्र के हाथ में रख दिया। देवदत्ता अवाक् देखती रह गयी। तभी उपस्थित जनसमुदाय ने हर्षोल्लास में भर जयकार किया :

"परम माहेश्वर हर्यंक कुलावसंत महाराज अजातशत्रु की जय !" देवदत्ता ने चौंक कर चारों ओर देखा। तभी जनसमुदाय ने पुनः जयकार किया :

"अग की महारानी देवदत्ता की जय !" देवदत्ता ने विस्मित नयनो से अपने प्रिय पति को देखा। कोशल का श्रेष्ठि-पुत्र मद-मद मुस्कराता हुआ बोला—

"मैं ही वह तुच्छ अजातशत्रु हू, प्रिये !"

अपररात्र का प्रथम मुहूर्त आरभ ही हुआ था कि सपूर्ण गिरिव्रज नगर में असख्य स्थानो से अग्नि की लपटें प्रज्वलित हो उठी। कुछ क्षण तक नगर-वासियो को इस अग्निकाड का आभास तक नही मिला। अग्नि के प्रज्व-लित होकर फैलते ही बहुत-से अश्वारोही अचानक कही से उत्पन्न हो गये और नगर मे लूट-मार मचाने लगे। तब तक नगरवासी जग उठे थे। कोलाहल से आकाश गूज उठा, चीत्कार से वातावरण कापने लगा, लोगों की भाग-दौड से पृथ्वी हिलने लगी, और अधेरी रात मे धुए से आच्छादित आकाश में काल की जिह्वा-सी आग की लपटें लपलपाने लगी।

लपटो की छाया मे दौडते हुए अश्वारोही साक्षात् काल की सजीव प्रतिमा-से दीख रहे थे। भागते हुए नर-नारियो को रौंदते हुए लुटेरे अश्वा-रोही निकल जाते और तब वहा बच रहती चीख एव क्रदन की दारुण गूंज ! यही क्रम कुछ काल तक चलता रहा कि धवलगृह से तूर्य-निनाद गूंज उठा। तूर्य की ध्वनि कुछ विचित्र थी। गिरिव्रज-वासी उस ध्वनि से अपरिचित थे। तूर्यनाद सुनकर लुटेरे अश्वारोहियो के अश्व धवलगृह की ओर मुड़ गये। नगर मे अग्निकांड चलता रहा।

धवलगृह के चारों ओर असंख्य अपरिचित सैनिक एकत्र थे। नगर मे लूट-मार मचाने वाले अश्वारोही भी वहीं आकर एकत्र होने लगे। मुख्य द्वार पर प्रहरियों एवं सैनिकों के शवों की पंक्तियां बिछी हुई थीं। वहां बीभत्स दृश्य उपस्थित था।

मुखशाला में नगरवधू सालवती का तथाकथित पुत्र पुष्पपाल एक उच्चासन पर बैठा था। उसके समक्ष ही सम्राट बिम्बिसार के बड़े पुत्र राजा दर्शक खड़े थे। पुष्पपाल उद्दंडतापूर्वक उनसे कह रहा था :

"मगध की ही नहीं, आपकी भी कुशल इसी में है कि आप बाहर चलकर यह घोषणा कर दें।"

"किंतु, सम्राट् बिम्बिसार की अनुपस्थिति में शासन-परिवर्तन की घोषणा करने वाला मैं कौन होता हूं?"—राजा दर्शक ने कांपते हुए स्वर मे कहा। पुष्पपाल ने व्यंग्य किया :

"उनकी अनुपस्थिति मे शासन चलाने वाले तो आप ही हैं।"

"यह तो पिताश्री सम्राट् बिम्बिसार की कृपा है।"

"उनकी उपस्थिति मे भी तो गिरिव्रज के वास्तविक शासक आप ही हैं।"

"यह भी उन्हीं का प्रसाद है कि उनके जीवन-काल में ही मैं राजा बन गया।"

"तो अब आपको मेरा प्रसाद प्राप्त करने के लिए मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।"

"ऐसा मैं नहीं कर सकता।"

"क्यों?"

"क्योंकि ऐसा करना मेरे अधिकार में नहीं है।"

"फिर किसके अधिकार में है?"—पुष्पपाल गरज उठा। दर्शक ने कांपते हुए कहा :

"सम्राट् या समिति के अधिकार में।"

"किंतु, अभी न तो सम्राट् हैं और न सभासद्। इस क्षण आर्यपट्ट के स्वामी आप बने हुए हैं। मैंने अपने शस्त्र-बल से आपको पराजित किया है। अतएव, आप मेरे अधीन हैं, मगध का आर्यपट्ट मेरे अधीन है। आपको

मेरे आदेश का पालन करना ही होगा।"

धवलगृह में उधर यह कांड चल रहा था, इधर गिरिव्रज नगर की ओर एक अश्वारोही उड़ा चला आ रहा था। नगर से कुछ दूर पर ही वह अश्वारोही चौंक कर खड़ा हो गया। सामने, गिरिव्रज नगर से आग की लपटें उठ रही थीं। अश्वारोही ने स्वगत-भाषण किया : "हाय रे अकर्मण्य राजा दर्शक ! नगरवधू के पुत्र का उपचार भी नहीं कर सके ? नगर को चुपचाप भस्म हो जाने दिया ?"

अश्वारोही ने अश्व को नगर की ओर न ले जाकर उत्तर-पूर्व की ओर उड़ा दिया। कुछ ही दूर बाद पहाड़ी क्षेत्र का सघन वन आरंभ हो गया। अश्वारोही को अधिक दूर तक नहीं जाना पड़ा। जंगल के बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी पर पुराना मंदिर था। अश्वारोही मंदिर के सामने पहुंच कर उतर गया। मंदिर का प्रांगण जन-शून्य था। किंतु, ज्यों ही अश्वारोही ने प्रांगण में पांव रक्खे, मंदिर के कक्ष की ओर से वाण की तरह प्रश्न हुआ :

"कौन है ?"

"मगध महामात्य वर्षकार।"—अश्वारोही ने रुक कर गंभीर स्वर में उत्तर दिया। क्षण-भर पश्चात् ही मंदिर के मुख्य द्वार के पार्श्व का प्रकोष्ठ उल्का के प्रकाश में जगमगा उठा। महामात्य उस प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हो गये।

"सेनापति धनंजय कहां हैं ?"—वर्षकार ने उक्त प्रकोष्ठ के प्रहरी से पूछा। वर्षकार का तीक्ष्ण स्वर सुनकर प्रहरी कांपता हुआ बोला :

"गर्भगृह में !"

"और पिताश्री ?"

"क···क···कौन"—प्रहरी घबराहट के मारे तुतलाने लगा। वर्षकार ने तीक्ष्ण दृष्टि से प्रहरी को देखा और कहा :

"महावीर वरुणदत्त को नहीं जानते ?"

"जी हां श्रीमन् ! वे भी गर्भगृह में हैं।"

"तो मार्ग प्रशस्त करो।"

गर्भगृह में महावीर वरुणदत्त एवं सेनापति धनंजय विचार-विमर्श में

तल्लीन थे। महामान्य को देखते ही धनजय चौंक कर उठ खड़ा हुआ :

"महामात्य ! आप ?"

"हा धनजय ! जिसकी आशका थी, वह घटित हो गयी।"

"क्या पुष्पपाल ने नगर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया ?"—धनंजय ने विचलित होकर प्रश्न किया। वर्षकार आसन ग्रहण करते हुए बोले :

"ऐसा ही दीखता है। सपूर्ण नगर से आग की लपटें उठ रही हैं।"

"किंतु, मेरे गुप्तचर ने अब तक कोई सूचना क्यों नहीं भेजी ?"

"वह धवलगृह में या कही और घिर गया होगा।"

"फिर क्या आदेश है ?"—धनंजय ने प्रश्न किया। महामात्य क्षण-भर विचारमग्न रह कर बोले :

"यहा कितने सैनिक हैं ?"

"बीस सहस्र।"

"हू।···और पश्चिमी सीमा पर ?"

"पद्रह सहस्र।"

"वज्जि गण-संघ की ओर ?"

"बीस सहस्र।"

"तो ठीक है। वज्जिसंघ की ओर के सैनिक वहीं रहें। शेष सभी सैनिक ब्राह्म मुहूर्त तक यहां एकत्र हो जाय।"

"किंतु, हमें यह तो मालूम ही नहीं है कि पुष्पपाल के पास कितने सैनिक हैं।"

"कोई चिंता नहीं। पुष्पपाल की शक्ति वज्जिसंघ है। अतएव, पूर्वी सीमा पर किसी निपुण व्यक्ति को नेतृत्व सौंपना होगा।"

"मैं प्रस्तुत हूं !"—वृद्ध वरुणदत्त ने सोल्लास अपनी इच्छा प्रकट की। महामात्य ने करुण दृष्टि से अपने पिता को देखा, मानो कह रहे हों—'मैं भी कैसा पुत्र हूं, जो अपने पिता को कभी विश्राम तक नहीं दे सका !' धनंजय कदाचित् वर्षकार की दृष्टि का आभास पा गया; बोला :

"नहीं भंते ! आपको विश्राम की आवश्यकता है। हम लोग स्थिति को संभाल लेंगे।"

"नहीं धनंजय ! पिताश्री को वज्जि गण-संघ की सीमा पर जाने दो।"—महामात्य ने धीमे स्वर में कहा—"राज्य कर्मचारियों में अपने-पराये का भेद ही देश में विक्षोभ के बीज बो देता है ।"—महामात्य ने अंतिम वाक्य स्वगत भाषण के ढंग से कहा। वरुणदत्त ने हंसते हुए कहा :

चिंता मत करो पुत्र ! तुम्हारा पिता खट्वा पर पड़े-पड़े अपने प्राण त्यागने को नरक-यातना से भी अधिक कष्टकर मानता है। युद्ध ही मेरा जीवन बन गया है और युद्ध-क्षेत्र मेरा प्रासाद। अब इस अवस्था में मैं अपना स्वभाव कैसे परिवर्तित कर लूं ? व्यर्थ के संकल्प-विकल्प में पड़ कर समय नष्ट करने से अनर्थ हो सकता है।"

"आप उचित कहते हैं पिताश्री !···धनंजय !"

"आज्ञा आर्य ब्राह्मण !"

"पांच सहस्र चुने हुए योद्धा मेरे साथ धवलगृह में प्रवेश करेंगे। वे सबके-सब विश्वासी एवं प्राण को तुच्छ समझने वाले हों। क्योंकि उन्हें मैं धवलगृह में उस गुप्त मार्ग से ले जाऊंगा, जिसे दो-चार के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। ये पांच सहस्र योद्धा शीघ्रातिशीघ्र यहां उपस्थिति हों। मैं इनके साथ अभी ही, अंधकार एवं कोलाहल के रहते, गिरिव्रज पहुंच जाना चाहता हूं। पूर्वाह्न के सप्तम मुहूर्त के व्यतीत होते ही तुम्हें शेष सैनिकों के साथ नगर में प्रविष्ट हो जाना है। तुम्हारी सेना चार दलों में विभक्त हो और चारों दल धवलगृह में पहुंच कर सुनिश्चित समय पर आ मिलें। शीघ्रता करो।"

पुष्पपाल बाह्यास्थानमंडप में चक्कर काट रहा था। उसके पास ही पंद्रह-बीस सैनिक खड़े थे, जो आकार-प्रकार-व्यवहार से दस्यु-से दीखते थे। बाह्यास्थानमंडप सजाया जा रहा था। नगर में घोषणा कर दी गयी थी कि सभा के सभी सदस्य अपराह्न में बाह्यास्थानमंडप में उपस्थित हों।

पुष्पपाल गर्व से चूर होकर चक्कर काटता रहा। तभी प्रहरी ने आकर सूचना दी :

"वज्जि गण-संघ का एक दूत आया है।"

"उसे उपस्थित करो।"—पुष्पपाल प्रहरी को आदेश देकर शीघ्रता

से राजा के सिंहासन पर जा बैठा और कृत्रिम गंभीरता से दूत की प्रतीक्षा करने लगा। दूत ने आते ही पुष्पपाल का जयकार किया और कहा :

"वज्जि गण-संघ के पराक्रमी, उपसेनापति वीर शिरोमणि सिंह सेनापति ने आपको अपने वचन का स्मरण दिलाया है।"

"मुझे स्मरण है दूत ! सिंह सेनापति का मैं आभारी हूं और गंडक के किनारे स्थित मगध की खान एवं बंदरगाह मैं वज्जिसंघ को सौंपता हूं।"

"किंतु, इसके लिए आपके हस्ताक्षर-युक्त घोषणा-पत्र की अपेक्षा है, राजन् !"

"हां, हां, मैं अभी देता हूं।...कोई है ?"

"अभी नहीं महाराज!"—दूत ने निवेदन किया—"जब तक आपका राज्याभिषेक न हो जाय, आपके घोषणा-पत्र अथवा हस्ताक्षर का कोई महत्व न होगा।"

"ठीक है। मैं समझ गया।"

"सिंह सेनापति का एक और निवेदन है।"

"क्या ?"

"जब तक आपका राज्याभिषेक नहीं हो जाता, तब तक वज्जिसंघ की कुछ सेना गिरिव्रज में रहेगी। वज्जिसंघ को भूतपूर्व सम्राट् बिम्बिसार से नहीं, उद्धत एवं महत्वाकांक्षी राजकुमार अजातशत्रु से भय है। फिर थोड़ी बहुत सेना तो अंग-अभियान से लौट ही आयेगी। उन्हें रोकने का प्रबंध तो होना ही चाहिए।"

"हां, हां, मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"किंतु, वज्जिसंघ की सीमा पर मगध की सेना है, जो हमारा मार्ग अवरुद्ध किये है।"

"कैसी सेना ?"—पुष्पपाल ने आश्चर्य प्रकट किया : "वह मेरी सेना नहीं है। उसे विनष्ट करके वज्जि-सेना यहां आ जाय।"

"एक निवेदन और।"

"वह क्या ?"

"वज्जि गण-संघ के अध्यक्ष राजा चेटक के दौहित्र कुमारद्वय हल्ल

और वेहल्ल को मगध साम्राज्य का आधा भाग दे दिया जाय।"

"ऐं···किंतु···अ···अच्छा, इस पर विचार करूंगा।"

"इसका तुम्हे अवसर ही नही मिलेगा, ब्राह्मण-पुत्र !"—बीच में ही मेघगर्जन-सा यह वाक्य बाह्यास्थानमडप मे विस्फोटित हो उठा। उपस्थित लोगों ने चौंक कर देखा—महामात्य वर्षकार आर्यपट्ट पर बैठे पुष्पपाल को तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कह रहे थे: "अंततोगत्वा, तूने अपने कुल का परिचय दे ही दिया।"

पुष्पपाल घबरा कर आर्यपट्ट से उठ खड़ा हुआ। किंतु, तत्क्षण ही उसे अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। वह अपनी घबराहट छिपाने के लिए पुन: आर्यपट्ट पर बैठने के पूर्व, गरज उठा:

"नायको ! बंदी बना लो इस मूर्ख ब्राह्मण को।"

वहां एकत्र नायक एकसाथ वर्षकार की ओर आगे बढ़े कि तभी वर्षकार दृढ़, किंतु, ऊंचे स्वर में बोल उठे:

"सावधान ! धवलगृह में एवं धवलगृह के चारों ओर मेरे सैनिक सन्नद्ध हैं।"

महामात्य के मुख से यह वाक्य निकला ही था कि न जाने किधर से सहस्रों राजसैनिक वहां आ एकत्र हुए और बाह्यास्थानमंडप के चारों ओर पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। पुष्पपाल के नायक गण डर के मारे कांपने लगे, पसीने-पसीने हो गये। महामात्य ने अपने एक नायक को आदेश दिया:

"इस कृतघ्न की ग्रीवा में हाथ डाल कर आर्यपट्ट से नीचे गिरा दो।"

तत्क्षण आदेश का पालन किया गया। पुष्पपाल लुढ़कता हुआ महामात्य के चरणों पर आ गिरा और गिड़गिड़ाता हुआ बोला:

"मुझे क्षमा कर दीजिए प्रभो ! मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई। मैं सत्य ही बहुत बड़ा पातकी हूं, कृतघ्न हूं !" इसी बीच उसने अपने एक नायक को सहायता के निमित्त संकेत भी कर दिया था। महामात्य ने क्रुद्ध स्वर में कहा:

"लिच्छवि दूत ! तुम अवध्य हो। अतएव जा सकते हो। सिंह सेनापति से कह देना कि अजातशत्रु अब कुमार नहीं, अंग के राजा हो गये हैं। मैं दोनों को एकत्र करने की व्यवस्था कर रहा हूं। जाओ।" दूत चुपचाप

वहां से विदा हो गया।

महामात्य ने पुष्पपाल से पूर्ववत् स्वर में कहा :

"तू ब्राह्मण होकर इतना भी नहीं जानता कि रत्नियों के आशीर्वाद एवं पवित्र जलों से अभिसिंचित हुए बिना कोई भी व्यक्ति उस पवित्र आर्य-पट्ट की ओर पांव नहीं बढ़ा सकता ? इतना बड़ा अपराध करके अब तू क्षमा की भीख मांगता है ? तेरा अपराध अक्षम्य है। तूने देश के साथ द्रोह करके वज्जियों से दुरभिसंधि की।" पुष्पपाल पूर्ववत् महामात्य के चरणों में औंधा पड़ा रहा और नीची दृष्टि से द्वार की ओर देखता रहा। महामात्य ने पुष्पपाल के नायकों की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा : "और तुम लोग जो कल तक मद्य का व्यापार करते थे, घरों में सेंध डालते फिरते थे, आज मगध के नायक बने हुए हो ? स्थापित सत्ता को उलट देना क्या इतना सहज है ? सैनिको ! बंदी बना लो इन दुष्टों को।"

राजसैनिक महामात्य के आदेश का पालन करने के निमित्त बढ़े ही थे कि द्वार पर कोलाहल सुनायी पड़ा। सब लोगों की दृष्टि द्वार पर जा लगी। तभी पुष्पपाल लाघव से उठ खड़ा हुआ और उसने महामात्य से दो-तीन पग पीछे हटकर उन पर खड्ग का भरपूर प्रहार किया। महामात्य पूर्व से ही प्रस्तुत थे। वे खड्ग का प्रहार बचा गये। तब तक पुष्पपाल के सहस्रों सैनिक आ पहुंचे थे। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध छिड़ गया। बाह्यास्थानमंडप रक्त-रंजित हो उठा। कुछ राजसैनिक महामात्य के चारों ओर वृत्त बनाकर उनकी सुरक्षा में तत्पर हो गये। देखते ही देखते बाह्या-स्थानमंडप शवों से पट गया। वहां पांव रखने को भी स्थान रिक्त नहीं रहा। महामात्य चिंताग्रस्त होकर युद्ध का दृश्य देखते रहे। उनके मुखमंडल पर विभिन्न भावों की रेखाएं डूबती-उभरती रहीं। अचानक चमत्कार हुआ। धवलगृह के बाहर से मगध सम्राट् बिम्बिसार के जयकार का घोष सुनायी पड़ा। पुष्पपाल ने अधीर होकर अपने सैनिकों को देखा। वे भी उस घोष को सुनकर भयभीत हो गये। राजसैनिकों में उत्साह का ज्वार उमड़ पड़ा। पुष्पपाल के सैनिक दहल उठे। पुष्पपाल ने जब देखा कि विजय तो दूर, अब प्राण बचने की भी कोई आशा नहीं है, तब वह वहां से भाग निकला। उसको देखा-देखी उसके सैनिक भी भाग खड़े हुए। किंतु, भागने

का मार्ग भी अवरुद्ध हो चुका था। मुख्य द्वार से सहस्रों राजसैनिक भीतर चले आ रहे थे। अंत में निराश होकर पुष्पपाल ने आत्मसमर्पण कर दिया।

गिरिव्रज नगर से उस समय भी धुआं उठ रहा था।
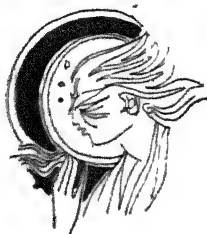
प्रातःकाल का चौथा मुहूर्त व्यतीत हो रहा था। महावीर वरुणदत्त अपने कांडपटमंडप में आंखें बंद किये लेटे हुए थे। उनकी बायीं भुजा, वक्ष-स्थल एवं कनपटी पर ओषधि का लेप चढ़ा हुआ था। घाव गहरे एवं घातक थे। पास ही एक परिचारक बैठा हुआ पंखा झल रहा था। आंखें बंद किये ही उन्होंने परिचारक से पूछा :

"आयुष्मान् नहीं आये ?"

"आते ही होंगे, आर्य !'

"धनंजय कहां हैं ?"

"शिविर में ही होंगे ! बुलाऊं ?"

"हां।"

धनंजय ने आकर धीमे स्वर में महावीर वरुणदत्त की अभिवंदना की। वरुणदत्त ने धनंजय की ओर देखा और कहा :

"किंचित् पास आओ वीर !" धनंजय पर्यंक से सट कर खड़ा हो गया। वरुणदत्त धीमे स्वर में बोले : "वज्जियों को हमने परास्त तो कर दिया, किंतु हमें निश्चित नहीं होना चाहिए।"

"कम-से-कम आप तो निश्चित रहें आर्य ! आपकी देह से अत्यधिक रक्त गिर चुका है। वैद्य ने आपको शांत रहने का परामर्श दिया है।"

"मैं तो अब महाशांति की ओर अग्रसर हो रहा हूं, धनंजय ! इसीलिए तुम्हें स्मरण किया है। आयुष्मान् अब तक नहीं आये ?"

"वे कुछ ही क्षणों में पहुंचने वाले हैं।"

"कदाचित् दोनों साथ ही पहुंचें।"

"कौन दोनों ?"

"आयुष्मान् वर्षकार तथा मेरी महाशांति !"

"ऐसा न कहिए, आर्य ! अभी हमें आपके आशीर्वाद की अत्यधिक आवश्यकता है।"

"सत्य ही कह रहा हूं।"···अब हमारे पास कितने सैनिक शेष हैं ?"

"मात्र बीस सहस्र।"

"यह पर्याप्त नहीं हैं, धनंजय ! लिच्छवियों को यह अनुमान भी नहीं था कि हम उनका प्रतिरोध करने के लिए यहां बैठे हैं। चोट खाया हुआ सर्प साक्षात् काल बन जाता है। अब निश्चय ही सिंह सेनापति स्वयं प्रतिशोध लेने के लिए मगध पर आक्रमण करेगा।"

"तो क्या हुआ ? हम भी प्रस्तुत हैं।"—धनंजय ने गर्व से उबल कर कहा। वरुणदत्त के होठों पर मुस्कराहट कांप गयी। उन्होंने धनंजय को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा :

"तुम्हारा उत्साह अभिनंदनीय है वत्स ! शूर इसी प्रकार अपने प्राण उत्सर्ग कर देते हैं। किंतु, शूरों की परंपरा अक्षुण्ण रखने की वृत्ति से ही मगध का कल्याण नहीं होगा। वीरता के गुण भी ग्रहण करने होंगे। युद्ध में शारीरिक शक्ति की ही नहीं, विवेक की भी अपेक्षा होती है।"

"आपका कथन सर्वतः समुचित है।"

"फिर क्या सोचा है ?···क्या बीस सहस्र सैनिकों को काल का ग्रास बना देना चाहते हो ?"

"सेनाध्यक्ष सुनीथ के अंग-अभियान से लौटने तक हमें प्रतीक्षा करनी होगी। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।"

"मार्ग है।"

"आज्ञा कीजिए।"

"सेना को पीछे ले चलना होगा।

"जी ?"

"हां, सेना गिरिव्रज के बाहर चैत्यक पहाड़ी में चलकर छुप जाय। यहां शिविर के कांडपटमंडप, परिवस्त्रा, पटकुटी आदि ज्यों-के-त्यों छोड़ दिये जायं, जिससे कि शत्रु भ्रम में पड़े रहें। कुछ अश्व एवं हाथी भी यहीं शिविर मे छोड़ दिये जायं। एक सहस्र सैनिक शिविर के दायें-बायें नदी के किनारे जगलो मे छुप बैठें और यदा-कदा उस पार बाण फेंकते रहें। यहां से गिरिव्रज तक के मार्ग में भी दो-तीन अनुरूप स्थानों पर कुछ चतुर योद्धा छुप बैठें।"

"फिर तो लिच्छवियों की सेना सीधे गिरिव्रज जाकर ही विश्राम करेगी।"

"हां, ऐसा विश्राम कि वर्षों तक उठने का साहस नहीं होगा। तुम नहीं समझोगे, धनंजय !···जीवन-भर यही व्यवसाय किया है।"

"मैं क्षमा चाहता हूं, आर्य ! योजना मेरी समझ में नहीं आयी, इसीलिए धृष्टता कर दी।"

"योजना यह है वत्स, कि लिच्छवियों को गिरिव्रज ले जाकर उन्हें विनष्ट कर दिया जाय। वैशाली से गिरिव्रज पहुंचने में सामान्य रूप से सेना को प्रायः ग्यारह दिन लगते हैं। मेरी योजना के अनुसार मार्ग में अवरोध उपस्थित कर देने से उन्हें बीस दिन से कम नहीं लगेंगे। तब तक हमारे अश्वारोही सैनिक चम्पा से गिरिव्रज आ पहुंचेंगे।"

"अद्भुत भंते ! आपकी योजना तो निश्चय ही अपूर्व है।"

"तो इसकी व्यवस्था भी शीघ्र होनी चाहिए।"—महामात्य वर्षकार का गंभीर आदेश कांडपटमंडल के आर-पार गूंज उठा। वे द्वार पर से अपने पिताजी की योजना सुन चुके थे। भीतर आते हुए बोले : "चम्पा के लिए दूत प्रस्थान कर चुका है।"

"आ गये, आयुष्मान् ? मैं तो सोच रहा था कि···

"हां पिताश्री ! मैं आपको यहां से ले जाने के लिए आया हूं। आपको विश्राम एवं समुचित चिकित्सा की आवश्यकता है।"

"क्या कहा ? मुझे यहां से ले जाना चाहते हो ?"

"आपका स्वास्थ्य चिन्ताजनक हो उठा है ।"—महामात्य ने विनम्रतापूर्वक कहा ।

वरुणदत्त ने पर्यंक से उठते हुए प्रतिवाद किया :

"यहां और भी तो बहुत-से घायल सैनिक पड़े हुए हैं। उनकी तुमने कोई व्यवस्था नहीं की। मैं इन सैनिकों का नायक होते हुए भी इन्हें यहां छोड़कर तुम्हारे प्रासाद में विश्राम करने जाऊं ? वरुणदत्त के पुत्र और भगवान औदुम्बरायण के शिष्य के मुख से यह मैं क्या सुन रहा हूं ?"

धीर, वीर, गंभीर महामात्य वर्षकार अपने पिता का क्रुद्ध स्वर सुन कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। जीवन में पहली बार वे ग्लानि से भर उठे। उन्होंने साहस करके कहा :

"आप में और अन्य साधारण सैनिकों में कोई तुलना नहीं है, आर्य ! आप मगध के लिए अधिक उपयोगी हैं। आपसे..."

"मगध के लिए मेरा कोई उपयोग नहीं है—कभी नहीं था। मैं उनके लिए जीता हूं, जो प्राण को तुच्छ समझते हैं, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं मानते, जो समस्त आर्यावर्त्त को तीन, चार, पांच या सोलह नहीं एक मानते हैं। जीवन-पर्यंत मैं इसी आदर्श की प्राप्ति के लिए लड़ता रहा हूं। मैं यहां मगध की ओर से वैशाली के विरुद्ध युद्ध करने नहीं आया। मैं तो एकता आंदोलन को जीवित रखने के लिए यहां आया हूं और यहीं रहूंगा।"

"मुझसे भूल हुई पिता ! मुझे क्षमा कर दें।"—वर्षकार मन-ही-मन अपने पिता के व्यक्तित्व को तौल कर गर्व से भर उठे। उनकी क्रूर, तीक्ष्ण आंखों में दो बूंद अश्रु छलक आये।

वरुणदत्त पुनः पर्यंक पर लेटते हुए बोले :

"मेरी अनुपस्थिति में यहां के सैनिक अनाथ हो जायेंगे। फिर तुम्हें भी कलंक लगेगा, पुत्र ! लोग कहेंगे कि महामात्य वर्षकार ने पक्षपात किया। महामात्य किसी का पुत्र, पिता या पति नहीं होता, वह तो अनुशासन, कर्तव्य एवं दायित्व का सजीव, साक्षात् आदर्श होता है।" महामात्य वर्षकार मस्तक झुकाये पिता की ओजस्विनी वाणी सुनते रहे।

वरुणदत्त कुछ रुककर बोले : "किंतु आज मैंने तुम्हें पिता के नाते स्मरण किया है, तुम्हें मूर्धाभिषिक्त करने के लिए, अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने के लिए। मेरे पास संपत्ति के नाम पर कुछ नहीं है, जिसका मैं तुम्हें स्वामी बनाऊं। गृहपति होकर भी मैं जीवन-भर जंगलों में भटकता रहा। जानते हो किसलिए ?…हमारे समक्ष एक आदर्श था, एक स्वप्न था, जिसे मूर्त्त रूप देने में हम पूर्ण सफल नहीं हुए। वही आदर्श एवं स्वप्न मैं तुम्हें सौंप रहा हूं। पुत्र ! मनुष्यों ने, बल्कि राजनीतिज्ञों ने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य एवं पृथ्वी के खंड-खंड कर रक्खे हैं। यह विभाजन कृत्रिम है, अप्राकृतिक है। जब तक यह कृत्रिम विभाजन स्थापित रहेगा, मनुष्य की अमूल्य शक्ति का अपव्यय होता रहेगा, उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध रहेगा। तुम मेरे पुत्र हो। अतएव, तुम्हारा यह धर्म है कि मेरे अधूरे कार्य को संपन्न करने का प्रयत्न करो। यही दायित्व तुम्हें सौंपने के लिए मैं अधीर था।

"आप निश्चित रहें। यही आदर्श मेरे जीवन का उद्देश्य होगा।"

"अपने उद्देश्य-प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं से तुम्हें विचलित नहीं होना चाहिए। मोह के अंधकार से तुम्हें सर्वदा सावधान रहना चाहिए। यदि सम्राट् बिम्बिसार भी तुम्हारे मार्ग में बाधक बनें, तो तुम्हें अपने आदर्श को ही वरण करना है, उसे ही अक्षुण्ण रखना है।"

"ऐसा ही होगा।"

"साधु, आयुष्मान् ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। अब मैं आश्वस्त हुआ। सेना हटाने का प्रबंध करो।"

वरुणदत्त की आशंका निर्मूल नहीं थी। मगध-सेना से पराजित होकर लिच्छवियों में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी। गिरिव्रज नगर के अग्निकांड ने नगर को तो ध्वस्त कर दिया, किंतु सत्ता के विरुद्ध षड्यंत्र विफल हो गया। वैशाली की वीथियों में रोषपूर्ण गोष्ठियां होने लगीं। वज्जि गण-संघ के स्वाभिमानी राजाओं ने संथागार की बैठक बुलाने की मांग की। अंततोगत्वा संथागार ने युद्ध की अनुमति दे दी। सिंह सेनापति के नेतृत्व में वज्जि गण-संघ की विशाल सेना मगध की राजधानी गिरिव्रज

पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ी।

गंगा के तट पर पहुंचकर सिंह सेनापति ने शिविर की स्थापना कर दी। उस पार मगध का सैन्य-शिविर लगा हुआ था। लिच्छवियों का पूरा दिन मगध के शिविर को परखने में ही बीत गया। वहां की निस्तब्धता को देखकर सिंह को आशंका हुई। वास्तविकता का पता लगाने के लिए उसने कई गुप्तचर भेजे। पूरा एक दिन इस कार्य में नष्ट हो गया। गुप्तचरों ने आकर सूचना दी कि शिविर में एक सैनिक भी नहीं है। तब तक संध्या हो चुकी थी। रात्रिकाल में ही गंगा को पार कर लेना अधिक उपयुक्त समझा गया।

गंगा में बाढ़ आयी हुई थी। धारा के प्रबल प्रवाह से कगार कट-कट कर गिर रहे थे। बहुत-सी नावें एकसाथ चल पड़ीं। उस पार सशस्त्र सैनिक सन्नद्ध थे। उल्काओं के प्रकाश गंगा पर तैरने लगे। नावें बीच धार में पहुंची ही थीं कि उस पार से सहस्रों बाण एवं अग्नि-पिंड बरसने लगे। इस आकस्मिक आक्रमण से लिच्छवि घबरा गये। कई नावों में आग लग गयी, बहुत-से मल्लाह एवं सैनिक काल के ग्रास हो गये। बहुत-सी नावें धारा के साथ बह गयीं। बहुत-से सैनिकों ने नदी में छलांग लगा दी। वज्जि-संघ की सेना में हाहाकार मच गया। सिंह सेनापति को लाचार होकर अपनी सेना को लौटने का आदेश देना पड़ा। इस अभियान में वज्जि-संघ के एक सहस्र सैनिक खेत रहे और सहस्रों कार्षापण मूल्य के सामान नष्ट हो गये।

प्रातःकाल होने पर मगध का सैन्य-शिविर ज्यों-का-त्यों मूक खड़ा था और वहां कुछ अश्व एवं हाथी दृष्टिगोचर हो रहे थे। रात्रिकाल में बाणों की वर्षा करने वाले मगध सैनिकों का कहीं चिह्न तक नहीं था।

सिंह सेनापति ने उसी क्षण नदी पार करने का आदेश दिया। एक साथ बहुत-सी नौकाएं एवं बड़े-बड़े बेड़े चल पड़े। बीच गंगा में पहुंचते ही पुनः बाणों की वर्षा होने लगी। किंतु, इस बार दिन होने के कारण लिच्छ-वियों ने मागध सैनिकों का केंद्र देख लिया। लिच्छवि सैनिक नदी में दायें-बायें फैल गये और प्रत्याक्रमण करते हुए आगे बढ़ने लगे। यद्यपि इस बार भी वज्जि गण-संघ के सैनिकों को अपरिमित हानि उठानी पड़ी, तथापि वे

बहुत बड़ी संख्या में नदी के पार जा उतरे और मागध सैनिकों को विनष्ट करने मे संलग्न हो गये।

सिंह सेनापति स्वयं वहां के युद्ध का निर्देशन कर रहे थे। मुट्ठी-भर मागधों का अप्रतिम साहस देखकर सिंह सेनापति अवाक् रह गये। वे स्वयं पराक्रमी योद्धा एवं उदार व्यक्तित्व के पुरुष थे। उन्हें जब निश्चय हो गया कि मागध सेना की संख्या कुछ सौ ही रह गयी है तब वे निर्देशन देना बंद कर प्रशंसात्मक दृष्टि से मागधों का ओजपूर्ण साहस देखने लगे। उनकी दृष्टि एक ऊचे टीले पर जा पड़ी, जहां से पेड के सहारे ओठंगा हुआ एक वृद्ध व्यक्ति, शीघ्रता से कानों तक प्रत्यंचा खीचता हुआ, बाणों की वर्षा कर रहा था और अपने सैनिकों को प्रोत्साहन भी देता जा रहा था। उस वृद्ध व्यक्ति के तेजस्वी मुखमंडल से अपूर्व शौर्य की रश्मियां प्रस्फुटित हो रही थी। उसके अंग-प्रत्यग से रक्त की धारा बह रही थी। किंतु, वह वीर अपने कर्तव्य में लीन था। कुछ सौ सैनिकों के बल पर विशाल सेना का प्रतिरोध करने में वह रंचमात्र कठिनाई का भी अनुभव करता प्रतीत नही हो रहा था। सिंह सेनापति ने देखा, एकसाथ दो बाण सनसनाते हुए गये और उस वृद्ध व्यक्ति के वक्षस्थल एव ग्रीवा में चुभ गये। उस व्यक्ति ने वीरतापूर्वक बाण खीच फेंकने की व्यर्थ चेष्टा की और तत्क्षण ही वह वही पेड़ के पास लुढ़क गया। सिंह ने अपने स्थान पर खड़े-खडे ही उस तेजस्वी वृद्ध योद्धा को नमस्कार किया। वृद्ध के गिरते ही मागध सैनिकों ने शस्त्र डाल दिये। सिंह सेनापति अपना अश्व दौड़ाते हुए वृद्ध के पास पहुंचे और वहीं खड़े एक भयभीत मागध से पूछा :

"ये कौन हैं ?"

"महामात्य वर्षकार के पिता महावीर वरुणदत्त !"—उस मागध ने किंचित् गर्व से कहा। सिंह सेनापति ने अपना आच्छादनक वरुणदत्त की देह पर डालते हुए कहा :

"ऐसे महापुरुषों के रक्त से सिंचित मगध-भूमि निश्चय ही नमस्य है। नायक कपिल !"

"आज्ञा सेनापति !"—सिंह के उपनायक कपिल ने, जो वहां पहुंच चुका था, आदेश की याचना की। सिंह सेनापति ने श्रद्धायुक्त स्वर में

कहा :

"महावीर वरुणदत्त का शव सम्मानपूर्वक महामात्य वर्षकार के पास पहुंचाने की व्यवस्था कर दी जाय।"

"ऐसा ही होगा, सेनापति !"

इसके पश्चात् वज्जियों की सेना पाटलिग्राम से आगे बढी। उस दिन वज्जियों को किसी अन्य प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। दो दिन तक वज्जि-संघ की सेना निर्विरोध अग्रसर होती रही। अचानक दूसरे दिन के रात्रि-काल में वज्जियों के स्कंधावार पर वज्रपात हुआ। उस समय सभी सैनिक निद्रामग्न थे। प्रहरी यथास्थान सन्नद्ध थे। वह क्षेत्र जन-शून्य था। चारों ओर जंगल-ही-जंगल उगा हुआ था। भूमि ऊबड़-खाबड़ थी। ठीक मध्यरात्रि में स्कंधावार के चारों ओर अग्नि की लपटें प्रज्वलित हो उठीं। जंगल की आग ! देखते-ही-देखते स्कंधावार के चारों ओर के पेड़-पौधे धू-धू कर जलने लगे। शिविर में कुहराम मच गया। जिसका जिधर सींग समाया, वह उधर ही भाग निकला। अश्वों की हिनहिनाहट एवं हाथियों की चिंघाड़ से जंगल का ओर-छोर दहल उठा। सिंह सेनापति इधर-उधर दौड़कर व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। जिसको जिधर से राह मिली, थोड़ा-बहुत सामान लेकर दौड़ चला। बहुत-से अश्व एवं हाथी भाग निकले। सहस्रों कार्षापण का सामान जल गया, बहुत-से सैनिक कुचले गये, बहुत-से भाग गये और न जाने कितने शव दावानल में स्वाहा हो गये।

इसी भाग-दौड़ में प्रातःकाल हो आया। जंगल के बाहर सिंह सेनापति को दो दिन रुक जाना पड़ा। कारण, उनकी सेना तितर-बितर हो गयी थी। उसे फिर से संगठित करना पड़ा। किंतु, वज्जियों की शक्ति क्षीण हो गयी थी। सैनिकों की संख्या आधी से कुछ ही अधिक बच रही थी।

गिरिव्रज का चैत्यक पहाड़ी में छिपे मागध सैनिकों ने वज्जियों का जमकर सामना किया। दो दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। लिच्छवि प्रबलतर होते गये। मगध की सेना आधी रह गयी। सिंह सेनापति ने अंततोगत्वा मागध सेना को चारों ओर से घेरकर निष्क्रिय बना दिया। अब अंतिम प्रहार शेष था कि तभी सिंह सेनापति का दुर्भाग्य उदित हो

उठा ।

मध्याह्न के समय मगध की तीस सहस्र अश्व-सेना एवं पांच सहस्र हस्तिसेना चम्पा से गिरिव्रज आ पहुंची । अब स्थिति सर्वथा विपरीत पड़ गयी । वज्जि-संघ की सेना मागध सैनिकों के चक्रव्यूह में फंस गयी ।

"अब क्या किया जाय, सेनापति ?"—उपनायक कपिल ने चिंतातुर होकर प्रश्न किया। सिंह सेनापति विवेकशील योद्धा थे । उन्होंने परिस्थिति को भांप लिया । बोले :

"इस बार भाग्य ने हमारे साहस एवं शौर्य का साथ नहीं दिया, बंधु! हमें संधि-प्रस्ताव रखना चाहिए !"

"क्या वे हमारा प्रस्ताव स्वीकार करेंगे ?"

"अवश्य।"

"यह आपने कैसे अनुमान कर लिया ?"

"चम्पा से आनेवाली सेना निश्चय ही अत्यधिक श्रांत होगी; मगध में गृह-कलह व्याप्त है और गिरिव्रज नगर के अग्निकांड ने यहां की शासन-व्यवस्था के साथ-साथ नगर-रक्षा का प्रबंध भी छिन्न-भिन्न कर दिया है । महामात्य वर्षकार दूरदर्शी पुरुष है। वह ऐसी परिस्थिति में युद्ध की अपेक्षा संधि-प्रस्ताव से अधिक प्रसन्न होगा ।"

सिंह सेनापति का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ । संधि-प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया । वज्जि गण-संघ की सेना निराश होकर लौट चली ।

सरमा पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। दैवी वरदान उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो गया। जीवक के चले जाने के पश्चात् सरमा अपने वृद्ध पिता के साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी। किंतु, वह जीवक को भूल न सकी। एक क्षण के लिए भी जीवक का सौम्य, देवतुल्य स्वरूप उसकी आंखों से ओझल नहीं हो पाता था। कोई था भी नहीं, जिसके समक्ष वह अपने मन की व्यथा कह पाती। उस अनुस्मरण की व्यथा में उसे अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होता और वह मन-ही-मन पुलकित हो उठती। उस पुलकन में भी असीम वेदना थी, असह्य पीड़ा थी, जिसे अनुभव करने वाला उसके अतिरिक्त और कोई नहीं था। वह अकेलेपन की निस्सीमता में खो जाती और तब न तो उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान रहता और न आसपास के जीवन का।

वृद्ध ब्राह्मण अब जीवन-निर्वाह के साधन जुटाने की चिंता से मुक्त हो गये थे। उन्होंने भिक्षाटन-वृत्ति का परित्याग कर दिया था। इस परिवर्तन से विल्वग्राम के लोग चौंक उठे। चारों ओर यह बात फैल गयी कि ब्राह्मण के घर स्वर्ण-निष्क से भरा हुआ एक कुंभ निकला है।

एक रात को कुछ कपाटघ्न[1] ब्राह्मण के घर आ ही पहुंचे। भीषण कष्ट के पश्चात् वृद्ध ब्राह्मण को सुखमय जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतएव, उन्होंने पहले तो कपाटघ्नों से अनुनय-विनय

१. चोर

किया। जब इसमें कोई सफलता नहीं मिली तब वृद्ध ने गांववालों को पुकारना आरंभ किया। तभी कपाटघ्नों ने ब्राह्मण की ग्रीवा पकड़ ली। बेचारे वृद्ध की यही गति शेष थी, सो भोग कर तत्क्षण ही स्वर्ग सिधार गये। सरमा अपने पिता की दशा देख कर मूर्च्छित हो गयी। कपाटघ्नों को अच्छा अवसर मिला। वे काष्ठ-मंजूषा तोड़ कर धन निकाल ले भागे।

सरमा नितांत अकेली रह गयी। अकेलापन उसे डसने लगा। कुछ दिन तक वह इस आशा में वहां बैठी रही कि कदाचित् उसके देवता कौमारभृत्य जीवक पधार जायं। किंतु, जब उसे जीवक की छाया तक का आभास नहीं मिला, तब वह निराश होकर एक दिन गिरिव्रज नगर की ओर चल पड़ी।

जीवन में पहली बार वह गांव से बाहर निकली थी। उसे मालूम था कि उसका मार्ग आशंकाओं से भरा हुआ है। उसे गिरिव्रज का मार्ग भी ज्ञात नहीं था। चम्पा से गिरिव्रज जाने वाला पण्य-पथ सुरक्षित नहीं था। विभिन्न प्रकार की घटनाओं का समाचार गांवों में पहुंचता रहता था। सरमा इन भयावह समाचारों से अनभिज्ञ नहीं थी। किंतु, सरमा के समक्ष कोई विकल्प भी नहीं था। या तो वह अपने-आपको बेच कर अपना भरण-पोषण करती या क्षुधा की ज्वाला में जल मरती। ये दोनों ही बातें असंभव थीं। इसके अतिरिक्त, जीवक के दर्शनों के लिए उसकी आंखें तरस रही थीं।

पण्य-पथ पर सर्वदा ही आवागमन होता रहता था। वहां एकांत का भय नहीं था। वहां यदि दस्युओं का भय था तो मात्र सार्थवाहों को, जो करोड़ों का सामान लेकर चलते थे। सरमा को क्या भय ? वह तो अस-हाय, दरिद्र एवं अबला थी।

वर्षा ऋतु का आरंभ था। पण्य-पथ के दोनों ओर विशाल क्षेत्र में कहीं हल्य भूमि थी तो कहीं ऊषर, कहीं गोचर तो कहीं वन। स्वामी खेतों के किनारे बैठे दीख रहे थे और कृषीवल खेतों में काम कर रहे थे। दूर-दूर पर छोटे-छोटे ग्राम बसे हुए थे। ग्रामों के घर अधिकतर कच्ची ईंटों के बने थे, घरों में लकड़ी का उपयोग उदारतापूर्वक किया गया था।

सरमा दिन-भर चलती रही। उसके मन में विभिन्न प्रकार के विचार उठते रहे—'यदि मार्ग में कोई दुर्घटना हो जाय?…यदि दस्युओं ने मुझे पकड़ लिया?…या यदि मैं कहीं दास-विक्रेताओं के चंगुल में पड़ गयी तो? · हे वासुदेव कृष्ण, मेरी रक्षा करना।…और यदि सकुशल गिरिव्रज पहुंच कर भी मुझे उनके दर्शन न हुए तो?'…सरमा रह-रह कर अपनी अगुली में पड़ी मुद्रिका देख लेती थी। तब उसके अंग-प्रत्यंग में उत्साह एवं उमंग की लहर दौड़ जाती थी। वह तत्क्षण ही कल्पना में डूब जाती थी और उसे मालूम भी नहीं होता था कि वह कितनी दूर निकल आयी है।

अपराह्न का सप्तम मुहूर्त आरंभ होने पर वह भूतार्म ग्राम जा पहुंची। वह ग्राम प्राच्य प्रदेश के अनुरूप बहुत ही छोटा था और दरिद्र दीखता था। फिर भी वहां सभी वर्गों के लोग बसे हुए थे। सरमा एक ब्राह्मण के घर ठहर गयी। ब्राह्मण के आतिथ्य-सत्कार से आप्लावित होकर वह निश्चिंत होकर सो गयी। किंतु, विधाता वहीं कहीं अंधकार की ओट में खड़ा अट्टहास कर रहा था, जिस अट्टहास की ध्वनि को वह सुन नहीं सकी।

अपररात्र के कई मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर वह अचानक चौंक कर जाग उठी। हाथ-पांव हिलाने-डुलाने में अपने को असमर्थ पाकर वह चीत्कार कर उठी। उसके चीत्कार की बेधकता से अंधकार को रंचमात्र भी क्षति नहीं पहुंची। प्रकोष्ठ के बाहर किंचित् हलचल अवश्य उठ खड़ी हुई, किंतु वह भी मात्र पानी के बुलबुलों जैसी। सरमा की पूरी देह में रुक्ष रज्जु जकड़ी हुई थी, जिससे उसकी देह का रक्त-संचार अवरुद्ध हो रहा था। बाहर दो व्यक्ति वार्तालाप कर रहे थे। एक कह रहा था :

"नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता।" इस व्यक्ति का स्वर सुन कर सरमा आश्चर्य एवं घृणा से भर उठी। यह स्वर उसके आतिथेय का था। अज्ञात व्यक्ति ने अनुनय-विनय के स्वर में कहा :

"देखते नहीं हो, कैसी दुबली-पतली है? पचास कार्षापण में भी यह महंगी है।"

"तुम्हारे कहने से मैं मान लूंगा? ऐसा सौंदर्य मैंने आज तक नहीं

देखा। मेरी तीनों पत्नियां जीवित न होतीं, तो मैं इसे कदापि नहीं बेचता।"

"तुमने देखा ही क्या है ?"—अज्ञात व्यक्ति ने किंचित् खीझ के स्वर में कहा : "नगरों एवं पुरों में ऐसी लड़कियों को युद्धक्षेत्र से लौटे हुए पदाति सैनिक भी नहीं पूछते। मैं दो सौ कार्षापण से अर्ध काकणी[1] भी अधिक नहीं दूंगा।"

"तो रहने दो। मुझे मात्र दो सौ कार्षापण के लिए यह पाप नहीं करना है।"

"अर्ध काकणी में बेचो या शत सहस्र स्वर्ण-निष्क में, पाप तो दोनों ही स्थिति में समान रूप से लगेगा। वास्तव में पाप तो तुम कर रहे हो उसकी अंगुली में पड़ी मुद्रिका हड़पने के लिए, जिसका मूल्य एक सहस्र कार्षापण से कम नहीं होगा; बल्कि अधिक ही होगा। किंतु, सोच लो। यदि तुमने इस लड़की को मुक्त कर दिया तो तुम कहीं के न रहोगे ? उसके पास साधारण मुद्रिका नहीं है, राजमुद्रिका है। निश्चय ही इस लड़की का संबंध किसी राजपुरुष से है।"

"मैं तुम्हारी चाल में आने वाला नहीं हूं, वणिक। हुंह···कहां राज-पुरुष और कहां इधर-उधर भटकने वाली यह छोकड़ी !"

"अच्छा तो मैं चलता हूं, ब्रह्म-बंधु !"

"सावधान वणिक ! यदि मुझे ब्रह्म-बंधु कहा तो···।"

"तो क्या कर लोगे ? ब्रह्म-बंधु नहीं तो क्या तुम ब्राह्मण हो ? यही कर्म होते हैं ब्राह्मण के ? अरे, अभी तो मैंने ब्रह्म-बंधु कहा है। एक सप्ताह पश्चात् ही यहां राजसैनिक आयेंगे। तब तुम्हारे शव को दस्यु घसीटेंगे और श्वान एवं काक उसका भक्षण करेंगे।" दास-विक्रेता की बात सुनकर ब्राह्मण सचमुच ही डर गया। वह अपने मन का भय छिपाता हुआ बोला :

"तू अपने वचन पर स्थित रहेगा ?"

"कैसा वचन ?"

"अभी जो कुछ तूने कहा है।"

"अरे बात तो कहो।"

---

१. चौथाई रत्ती चांदी

"तूने मुद्रिका का मूल्य एक सहस्र लगाया है न ?"

"हां।"

"तो एक सहस्र मुद्रिका के और दो सौ कार्षापण इस लड़की के निकाल कर रख दे और अपना माल ले जा।"

दास-विक्रेता यह प्रस्ताव सुन कर मन-ही-मन गद्‌गद हो उठा। कारण, द्रव्य की दृष्टि से वह मुद्रिका उतनी मूल्यवान नहीं थी, जितना कि महत्व की दृष्टि से। यदि किसी षड्‌यंत्रकारी या राजवंश के शत्रु के हाथ वह मुद्रिका बेच दी जाय तो निश्चय ही दस-बारह सहस्र तक मूल्य मिल सकता है, ऐसा सोच कर दास-विक्रेता ने कृत्रिम अन्यमनस्कता दर्शाते हुए कहा :

"अच्छी बात है। तुम दुराग्रह करते हो तो तुम्हारा प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।"

सरमा भय से कांप उठी। उसे अपनी भयावह स्थिति का ज्ञान हो गया। दारुण कल्पनाओं के झंझावत ने उसके विवेक को छिन्न-भिन्न कर दिया और वह निर्दिष्ट पथ से भटक कर दुर्भाग्य के दुश्चक्र में जा फंसी। कोई उपाय नहीं था। वह रोती-बिलखती रह गयी, किंतु, दास-विक्रेता ने उसे शकट पर लाद ही लिया।

उधर सूर्योदय हुआ और इधर सरमा शकट पर लेटी हुई अपने भाग्य के अचानक अस्त हो जाने की घटना एवं उसके परिणाम पर विचार करती रही। शकट में जुते हुए पुष्ट एवं विशाल बैल गति में अश्व को भी म्लान कर रहे थे।

सरमा दरिद्र परिवार की लड़की थी। फिर भी, उसने इस प्रकार के दुःख का अनुभव कभी नहीं किया था। भाई के गृह-त्याग के समय वह बहुत रोयी थी। उस रुदन में भय नहीं, आशा का भाव सन्निहित था। वह रोगिणी होकर खट्‌वा पर पड़ गयी थी, फिर भी उसे भय-जनित दुःख नहीं हुआ। वृद्ध पिता के स्वर्गवासी होने पर सरमा को अपार कष्ट हुआ। वह सर्वथा अकेली पड़ गयी। और आज तो वह अपने को मृत अनुभव कर रही थी; उसकी निर्जीव देह वेदना एवं क्लेश का साकार रूप धर कर शकट पर पड़ी थी। उसने अपने देवता से मिलने की जितनी भी योजनाएं बना

रक्खी थी, वे सभी अब उसकी मृतवत् देह में रज्जु बन कर लिपट गयी थी। यदि जीवक उसके जीवन मे न आया होता तो वह कदाचित् इस घटना से रंचमात्र भी उत्पीड़ित नही होती। अब वह विधाता के अट्टहास की स्पष्ट ध्वनि सुन रही थी। उसे लग रहा था, मानो वह ध्वनि शनैः-शनैः निकट, निकटतर आती जा रही है। और उस ध्वनि के निकटतम पहुंचते ही उसके आतंक से वह मूर्च्छित हो जाती थी।

पराक्रमी अजातशत्रु अब विधिवत् अंग महाजनपद का मंडलेश्वर था। बल्कि, वास्तविकता तो यह थी कि वह अंग का स्वतंत्र राजा बन बैठा था। सब लोग 'राजन्' एवं 'महाराज' कहकर उसका संबोधन करते थे। प्रशासन-कार्य के लिए अजातशत्रु गिरिव्रज के आदेश की न तो प्रतीक्षा करता था, न अपेक्षा ही। अपने पराक्रम, कर्मठता, कार्यकुशलता एवं महामात्य वर्षकार की शिक्षा के बल पर उसने कुछ ही दिनों में अंग के अधिकांश सामंतों एवं राजपुरुषों की भक्ति प्रदान कर ली। जिन लोगों ने उपद्रव करना चाहा, उन्हें सिंहपाद सैनिकों के प्रचंड प्रकोप का भाजन बनना पड़ा। यद्यपि अजातशत्रु राजकार्य में स्वतंत्र था और अंग महाजनपद का शासन-प्रबंध पूर्णतया उसी के हाथों में था, तथापि प्राचीन काल से चला आ रहा अंग महाजनपद अपना अस्तित्व खो चुका था, उसका माहात्म्य प्रवाहित होकर मगध-साम्राज्य के महासमुद्र में विलीन हो चुका था।

अजातशत्रु राजकार्य से निवृत्त होकर धवलगृह के उद्यान में मंद गति

से भ्रमण कर रहा था। रानी देवदत्ता उसके साथ थी। अभी सूर्योदय में विलम्ब था। चम्पा के धवलगृह का उद्यान अपनी प्राचीनता के गौरव के अनुरूप ही, विश्व में प्राप्य अधिकांश लता-द्रुमों एवं पक्षियों से सुशोभित था। कर्णिकार, चम्पक, नागकेसर, रक्तशोक, केसर, प्रियंगुलतिका, नागवल्ली, जामुन, धूलिकदम्ब, कट्फल, शेफालिका, जायफल आदि के अतिरिक्त अन्य अगणित पेड़-पौधे वहां लगाये गये थे। वर्षा-ऋतु में उद्यान अपने पूर्ण यौवन की सुरभि एवं सौंदर्य बिखेर रहा था। पक्षियों को उन्मुक्त आनंद प्राप्त हो रहा था। गौरैया, चकोर, तोते, कोयल आदि अभिभावकविहीन गृह के शिशुओं की भांति कलरव करके वातावरण को संगीतमय बना रही थीं।

अजातशत्रु मंद-मंद गति से चल रहा था। उसका दाहिना हाथ देवदत्ता की कटि को सहारा दे रहा था। चलते-चलते वह देवदत्ता को निहार लेता था। देवदत्ता सकुचा कर पृथ्वी की ओर देखने लग जाती थी।

"आओ, उस शिलाखंड पर बैठें।"—अजातशत्रु ने एक शाल-वृक्ष ने नीचे रक्खे शिलाखंड की ओर संकेत करके कहा। दोनों वहां जाकर बैठ गये। अजातशत्रु देवदत्ता को अपनी गोद में लिटाकर उसके दूध में धोये मुखमंडल को निहारने लगा। देवदत्ता अपनी वल्लरी-सरीखी बांहें अजातशत्रु की ग्रीवा में डाल कर झूल-सी गयी और बोली :

"ऐसे क्या देख रहे हैं?"

"देख रहा हूं प्रिये, कि नारी में वह अमृत-रस कहां छुपा रहता है, जो साम्राज्य-विजय की तृष्णा को भी डुबो कर अनस्तित्व की अतल गहराई में पहुंचा देता है।"

"किंतु साम्राज्य-विजय की तृष्णा तो शाश्वत सत्य नहीं है, सार्वभौम भी नहीं, जबकि पुरुष नारी के सहवास के लिए सदा ही आकुल-व्याकुल रहता है। ऐसा क्यों?"

"क्योंकि नारी जन्म नहीं लेती, वह पुरुष की आजन्म इच्छाओं को स्वनिर्मित सजीव प्रतिमा होती है। अपनी ही इच्छाओं का अपरिग्रह कर सकना परिव्राजकों के ही वश की बात है; सामान्य पुरुष तो उसकी छाया मात्र हैं। फिर वह प्रतिमा तो उसकी अपनी ही रचना होती है। अतएव,

पुरुष का नारी के प्रति व्यासक्त होना स्वाभाविक है। जहां तक साम्राज्य-तृष्णा का प्रश्न है, यह एक विशेष तृष्णा है, जिसे तुम महत्वाकांक्षा कह सकती हो। मेरा जन्म राजवंश में हुआ, स्पष्ट ही मै उस क्षेत्र में ही अपने विकास का मार्ग ढूढूंगा, जो शिल्पी हैं या कवि है या कृषीवल हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र में विकास की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिए प्रयत्नशील होंगे। उनका वह प्रयत्न भी तृष्णा के नाम से ही पुकारा जायेगा।"

"तृष्णा कोई उत्तम स्वभाव तो है नही।"

"उनके लिए, जो जीवन-संघर्ष को मिथ्या मानते हैं। जिन्होने जीवन को सत्य कर जाना है, वे तृष्णा के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। यह सत्य है कि अवरोध से गति उत्पन्न होती है। किंतु, हमारे शास्ता कदाचित् भूल जाते हैं कि यदि संघर्ष न हो तो अवरोध का प्रश्न ही नहीं उठे।" अजातशत्रु के विचारों को देवदत्ता सुनती रही। क्षण-भर की शांति को भंग करती हुई देवदत्ता मुस्करा कर बोली :

"आप क्या अंग को अधीनस्थ करके सतुष्ट नही हैं ?"

"नही देवदत्ते ! अजातशत्रु के नाते अंग को जीतकर बहुत संतुष्ट हूं; किंतु, राजा अजातशत्रु के नाते अंग को जीतकर मैं अत्यधिक असंतुष्ट हो उठा हूं। वास्तव में, मैं किसी को भी अधीनस्थ करना नहीं चाहता; अंग को भी नहीं। मैं तो सबको मुक्त कर देना चाहता हूं। कोई भयग्रस्त न रहे, सबके-सब अधीनस्थ होने की आशंका से मुक्त हो जायें। मेरी यही इच्छा है, किंतु मेरी यह इच्छा तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक कि पंद्रहों महाजनपदों की कृत्रिम सीमाएं टूट नहीं जातीं। मैं इन्हीं सीमाओं को तोड़ फेंकना चाहता हूं।"

"और मेरी इन सीमाओं को ?"—देवदत्ता ने अपनी बांहों के सहारे ऊपर की ओर उठते हुए पूछा। अजातशत्रु ने देवदत्ता को आलिंगन-पाश में जकड़ कर वक्षस्थल से लगा लिया और भावातिरेक से कांपते हुए कहा :

"इन सीमाओ का संतोष ही मेरी प्रेरणा का उद्गम-स्थल है और ये रससिक्त अधर मेरे उद्दाम प्रवाह के अखंड, अभेद्य कगार।"

"महाराज की जय हो !" उसी क्षण परिचारिका ने लता-द्रुम की ओट से अभिवंदना की। अजातशत्रु ने अपनी भुजाएं शिथिल कर दीं।

देवदत्ता अपने प्रियतम के पार्श्व में जा बैठी। अजातशत्रु ने गंभीर स्वर में आदेश दिया :

"कौन है ? सामने आओ।"

"मैं हूं महाराज की दासी। मुखशाला में एक भिक्षु आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"भिक्षु ?"—अजातशत्रु चौंक उठा। परिचारिका ने निवेदन किया :

"वे कुछ आवश्यक कार्य से स्वामी के दर्शन करना चाहते हैं।"

"मैं अभी किसी को दर्शन देने की इच्छा नहीं रखता। कह दो, कल बाह्यास्थानमंडप में उपस्थित रहें।"

"किंतु, वह भिक्षु···"

"कोई भिक्षु-भिक्षु मेरी दृष्टि में महत्व नहीं रखता। आदेश का पालन करो।"—अजातशत्रु गरज उठा। परिचारिका सहम कर दो पग पीछे हट गयी और मुड़कर जाने लगी कि कुछ सोचकर अजातशत्रु ने आदेश दिया : "ठहरो ! वह भिक्षु कहां से आया है ?"

"गिरिव्रज से।"

"गिरिव्रज से ?"—अजातशत्रु ने जिज्ञासा-भाव से पूछा : "क्या नाम है उस भिक्षु का ?"

"देवदत्त।"

"देवदत्त !"—अजातशत्रु जैसे नींद से चौंक उठा। वह घबराकर शिलाखंड से उठता हुआ बोला—"तुमने आरंभ में ही क्यों नहीं बताया ? ···देवदत्ते ! तुम वासगृह में चलकर मेरी प्रतीक्षा करो। मैं अभी आया।" अजातशत्रु शीघ्रता से मुखशाला की ओर दौड़ चला। पीछे से परिचारिका भी भाग चली।

मुखशाला में देवदत्त एक उच्चासन पर ध्यानावस्थित मुद्रा में बैठा था। वह अजातशत्रु की अभिवंदना का उत्तर देता हुआ बोला :

"मेरा आशीर्वाद फल रहा है या नहीं ?"

"हां शास्ता !"

"प्रथम दर्शन देने के समय मैंने जो-कुछ तुमसे कहा था, वह स्मरण है ?"

"हां शास्ता ! सब स्मरण है।"

"और अपनी महत्वाकांक्षा ?"

"वह भी स्मरण है।"

"तो अब तुम्हारी महत्वाकांक्षा के फलीभूत होने के दिन आ गये। यही अवसर है कि तुम मगध साम्राज्य के सम्राट् बन सकते हो। गिरिव्रज नगर जलकर राख हो गया है।"

"गिरिव्रज नगर जलकर राख हो गया ? कैसे ? कब ?"—अजातशत्रु कौतूहल, क्रोध, एवं प्रतिशोध की भावनाओं से भड़क उठा। देवदत्त ने शांत भाव से उत्तर दिया :

"अंग-विजय के पांच दिन पूर्व।"

"यह किसका दुश्चक्र था ?"

"वृद्ध सम्राट बिम्बिसार की प्रौढ़ा प्राणेश्वरी नगरवधू सालवती का।"

"यह आप कहते क्या हैं ?"

"सत्य ही कह रहा हूं। सालवती का पुत्र पुष्पपाल सम्राट् बिम्बिसार का ही पुत्र है। पुष्पपाल ने मगध-सिंहासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के विचार से यह दुश्चक्र रचा। किंतु, बेचारा अब असफल होकर कारागार में दम तोड़ रहा है।"

"उस क्लीव में इतना साहस !"—अजातशत्रु दांत पीसता हुआ बोला। भिक्षु देवदत्त ने तत्क्षण ही अजातशत्रु की क्रोधाग्नि में घृत डाल दिया—

"अभी क्या ? मंडलेश्वर अजातशत्रु को बंदी बनाना तो शेष ही है।"

"शास्ता !"—अजातशत्रु गरज उठा।

"शांत वत्स ! सत्य वचन से इतना उद्वेलित होना अशोभनीय है।"

"किंतु, मैं उस धृष्ट युवक को जीवित जला दूंगा।"

"यह तब तक असंभव है जब तक प्रचंड पराक्रमी सिंह सेनापति जीवित है।"

"आपका तात्पर्य ?"

"स्पष्ट है। लिच्छवि वीर सिंह सेनापति के सहारे ही पुष्पपाल ने

ऐसा साहस किया।"

"तो मैं वैशाली को धूल में मिला दूंगा। वैशाली को उच्छिन्न कर दूंगा।"

"यह कार्य उतना सरल नहीं है, जितना तुम सोचते हो। अभी तो लिच्छवियों ने ही गिरिव्रज को धूल में मिला दिया। एक सहस्र वर्ष से चला आ रहा गिरिव्रज नगर जलकर स्वाहा हो गया, सहस्रों योद्धाओं के अतिरिक्त महावीर वरुणदत्त भी लिच्छवियों की वीरता की बलिवेदी पर चढ़ गये। मागध वीर अंगविजय के गर्व में चूर ही रहे और लिच्छवि सैनिक गिरिव्रज तक आ पहुंचे। महामात्य वर्षकार को लाचार होकर संधि करनी पड़ी।"

"यह मैं क्या सुन रहा हूं, शास्ता ? महामात्य ने वज्जियों से संधि कर ली ?···प्रतिहारी !"

"आज्ञा, श्रीमन्।"—प्रतिहारी ने प्रवेश कर निवेदन किया।

"कौमारभृत्य जीवक से मैं शीघ्र मिलना चाहता हूं। सेनापति सिंहरथ, मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र और सामंत सुमन से मेरे समक्ष उपस्थित होने का अनुरोध करो। शीघ्र !"

प्रतिहारी भागता हुआ बाहर चला गया। अजातशत्रु उन्मादी की तरह मुखशाला में चक्कर काटने लगा। देवदत्त ने अजातशत्रु का क्रोध जागृत रखने के लिए कहा :

"सालवती इतना बड़ा अपराध करके भी महाराज बिम्बिसार की प्रेमिका बनी हुई है। यदि महामात्य वर्षकार न होते, तो कदाचित् मगध का आर्यपट्ट पुष्पपाल को मिल ही जाता। बिम्बिसार की दृष्टि में जैसा पुष्पपाल, वैसा अजातशत्रु !"

"ऐसे पिता का मैं अस्तित्व मिटा दूंगा, शास्ता ! पुष्पपाल तो दूर, यदि दर्शक, विमल, अभयकुमार, हल्ल-बेहल्ल आदि विधिसम्मत कुमार भी मगध का आर्यपट्ट अधीनस्थ करना चाहेंगे तो उनका शिरोच्छेद करते अजातशत्रु को कोई संकोच नहीं होगा।"

"वैसी स्थिति के लिए भी तुम्हें प्रस्तुत रहना चाहिए, अजातशत्रु ! वह दिन दूर नहीं है, जब तुम्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने

स्वजनों के विरुद्ध ही युद्ध की घोषणा करनी होगी। आज लिच्छवि जो चाहते हैं, वही करते हैं। न जाने कितनी बार उन्होंने मगध की खान लूट ली, मगध के बंदरगाह पर नियुक्त मागध सैनिकों को मारा-पीटा, किंतु, वर्षकार ने चेटक-पुत्री महारानी चेलना के भय से वैशाली के विरुद्ध आरोप तक नहीं लगाया।"

"ठीक है, शास्ता ! अब अजातशत्रु स्वयं इसका उपचार करेगा।"

"क्या आज्ञा है ?"—जीवक ने आते ही प्रश्न किया। सामंत सुमन, सेनापति सिंहरथ तथा मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र भी तब तक वहां पहुंच चुके थे।

अजातशत्रु ने उन्मादियों के-से स्वर में कहा :

"मैं अभी गिरिव्रज प्रस्थान करूंगा। सिंहरथ ! सैनिकों को अभियान के लिए प्रस्तुत करो।"

"किंतु, आपके इस आकस्मिक निर्णय का कारण ?"—जीवक ने अर्थपूर्ण दृष्टि से देवदत्त की ओर देखते हुए अजातशत्रु से प्रश्न किया। अजातशत्रु भभक कर बोल उठा :

गिरिव्रज जल कर राख हो गया। लिच्छवियों की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि अब वे सीधे गिरिव्रज तक पहुंचने लगे।"

'किंतु, वे पराजित होकर सभी दुर्दशाओं को प्राप्त हुए।"—जीवक ने शांत स्वर में कहा। अजातशत्रु चौंक उठे :

"तो क्या आपको इस बात की सूचना थी ?"

"जी हां। गिरिव्रज से दूत आया हुआ है।"

"कब ?"

"आज ही; बाह्यास्थानमंडप से आपके प्रस्थान करते ही।"

"मुझे इसकी सूचना क्यों नहीं दी गयी ?"

"सूचनार्थ सूचना देना आवश्यक नहीं समझा गया।"

"सूचनार्थ सूचना देना ?"

"जी हां, दूत मगध महामात्य वर्षकार की सूचना मात्र लाया है, कोई आदेश नहीं।"

"किंतु, मैं तो अभी ही गिरिव्रज के लिए प्रस्थान करूंगा। मेरे साथ

सिंहपाद सैनिक भी अभियान करेंगे ।"

"तब तो अंग ही नही, मगध का विनाश भी निश्चित है ।"—जीवक ने गंभीरतापूर्वक घोषणा की। अजातशत्रु तिलमिला उठा । बोला :

"बंधु जीवक, आप यदि अपना ज्ञान ओषधि-विज्ञान तक ही सीमित रक्खें तो अच्छा हो ।"

"यह तो आपने मेरे मन की बात कह दी, बंधु अजातशत्रु ! किंतु, मगध का स्नेह एवं महामात्य वर्षकार का आदेश मुझे यदा-कदा विवश कर देता है । आप गिरिव्रज जाना चाहते हैं तो आनंदपूर्वक जाइए। मंडलेश्वर को भला कौन रोक सकता है ? मात्र इतना ध्यान रखिएगा कि आपके यहां से प्रस्थान करते ही अंग आपके हाथ से निकल जायेगा और···और शेष शक्ति का हरण महामात्य वर्षकार कर लेंगे ।"

"आर्य जीवक ठीक ही कहते हैं, राजन्। आपका अभी यहां से प्रस्थान करना किसी भी दृष्टि से तर्कसंगत नही है ।"—सामंत सुमन ने प्रभावपूर्ण स्वर मे निवेदन किया । अजातशत्रु शिशुओं की भांति मचल उठा :

"तो मैं चुपचाप मगध का विनाश कैसे देखता रहूं ?"

"मगध के निर्माता आप नहीं हैं, प्रजा के प्रतिनिधि महामात्य वर्षकार हैं। शिष्य एव मंडलेश्वर के नाते आपको महामात्य में आस्था रखनी चाहिए ।"—जीवक ने समझाने के ढंग से कहा । अजातशत्रु ने पूर्ववत स्वर में व्यग्रता प्रकट की—

"कौन कहता है कि मैं आचार्य वर्षकार में आस्था नहीं रखता ?"

"आपका उतावलापन, आपका व्यवहार।"—जीवक ने तत्क्षण उत्तर दिया। अजातशत्रु क्रुद्ध स्वर में बोले :

"तो ठीक है । मैं नही जाऊंगा । किंतु, जब तक मुझे गिरिव्रज का सही चित्र नहीं मिल जायेगा, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा ।"

"और यदि आप प्रस्थान कर दें, तब तो अन्न-जल का परित्याग नहीं करेंगे ?"—जीवक ने प्रश्न किया ।

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"कार्य का आरंभ ही कार्य की इति है। मैं अपने कार्य में संलग्न

रहूंगा, इमका मुझे संतोष रहेगा।"

"आप मंडलेश्वर हैं। आपके नाम पर ही शासन के सभी कार्य संपादित होते हैं। कार्य जो भी करे, संतोष आपको होता है।"

"निश्चय।"

"तो गिरिव्रज जाने का कार्य भी आप किसी विश्वसनीय व्यक्ति को सौंप दें।"

"किसे सौंपूं?"

"जिस पर आपका विश्वास हो।"

"मेरा विश्वास आप पर है। आप जायेंगे?"

"क्यों नहीं जाऊंगा? आप आदेश तो करें।"—जीवक ने मुस्करा कर कहा। अजातशत्रु सहज स्वर में उपालम्भ देते हुए बोला :

"मैंने सोचा था कि आप महामात्य के आदेश पर यहां आये हैं। कदाचित् मेरा आग्रह आप न मानें।

"अंग-विजय के साथ उनके आदेश का पालन हो गया।"

"अच्छी बात है बंधु जीवक! कल ब्राह्म मुहूर्त में आप प्रस्थान कर दें।"—अजातशत्रु ने मुस्कराकर कहा। जीवक तत्क्षण दृढ़तापूर्वक बोल उठा :

"ब्राह्म मुहूर्त में क्यों? अभी क्यों नहीं?"

"अभी रात्रिकाल में वन्य प्रदेश से होकर जाना निरापद नहीं होगा।"

"कोई चिंता नहीं। मैं रात्रिकाल में ही प्रस्थान कर देना चाहता हूं, जिससे कि चम्पावासियों के मन में कोई जिज्ञासा नहीं उपजे। सेनापति सिंहरथ! दो सौ योद्धा मेरे साथ कर दीजिए। और नन्दिसेन तो मेरे अभिन्न अंग बन ही गये।"

तीन-चार मुहूर्त पश्चात् ही कौमारभृत्य जीवक और नन्दिसेन दो सौ योद्धाओं के साथ रात्रिकाल में ही चम्पारण्य के बीहड़ पथ पर निकल पड़े।

सूर्यास्त हो चुका था। बिल्व-ग्राम के अधिकांश गृहपति अपने-अपने खेतों से घर लौट आये थे और कुछ अभी लौट रहे थे। घरों से धुआं उठ कर आकाश में छा गया था। गायों के रम्भण से दिशाएं गूंज रही थीं। गृह-पत्नियां गृह-कार्य में व्यस्त थीं और उनके छोटे-छोटे शिशु गला फाड-फाड़ कर रो रहे थे। कोई किसी को पुकार रहा था, तो कोई राग अलापता हुआ घर को लौट रहा था। इस चहल-पहल में विचित्र शांति संतरित हो रही थी, ऐसी शांति जो मंदिरों में पूजन-अर्चन के उत्क्रोश में समाहित रहती है।

अचानक बिल्व-ग्राम की शांतिपूर्ण चहल-पहल भंग हो गयी। कुछ भक्त,[1] जो खेतों से लौट रहे थे, चिल्लाते हुए गांव की ओर भागे। बहुत-से सैनिकों को बिल्व-ग्राम की गोचर भूमि में अपना शिविर डालते हुए देख कर वे भयभीत हो उठे थे। उन्होंने दौड़ कर ग्रामणी को इस बात की सूचना दी। ग्रामणी घबराया हुआ गोचर भूमि की ओर दौड़ चला। मार्ग में ग्रामणी ने देखा कि दो अश्वारोही गांव के उत्तर से, खेत की राह, पुष्प-पाल के घर की ओर बढ़ रहे हैं। ग्रामणी आसन्न विपत्ति की आशंका से आतंकित हो उठा। वह दौड़ता हुआ अश्वारोहियों के पीछे भागा।

अश्वारोहियों में से एक था जीवक और दूसरा नन्दिसेन। नन्दिसेन अब सामान्य सैनिक नहीं था। उसे गौल्मिक बना दिया गया था। पुष्पपाल

१. खेतिहर मजदूर

के घर की दशा देख कर जीवक चौंक उठा। वह चिंता एवं आश्चर्य के साथ घर के भीतर प्रविष्ट हुआ। भीतर पहुंचते ही वह स्तम्भित रह गया। वहां शून्यता के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। अनायास सरमा का संकट-ग्रस्त मुखमंडल जीवक की आंखों के आगे तैर गया। नन्दिसेन अश्व से उतर कर जीवक की प्रतीक्षा में खड़ा था। जीवक ने बाहर आते ही दुःखी स्वर में कहा :

"यहां तो कोई नहीं है।"

"फिर कहां चले गये सबके-सब ?"—नन्दिसेन ने सामान्य स्वर में प्रश्न किया। जीवक पूर्ववत् स्वर में बोला :

"यही प्रश्न तो मुझे भी कौतूहल में डाले हुए है।"

"मुझे तो लगता है कि पण मिलने पर वे लोग यहां से किसी नगर में चले गये।"

"नहीं नन्दिसेन ! वे लोग स्वेच्छा से नही गये होंगे। निश्चय ही कुछ अमगल हुआ होगा।"—जीवक ने चिंतालीन मुद्रा में कहा। नन्दिसेन खेत की ओर से निकट आती हुई एक छाया को देखकर बोला :

"कोई आ तो रहा है।"

जीवक उस ओर आशा से देखता रहा,और छाया के बिल्कुल पास आ जाने पर उसने प्रश्न किया :

"कौन है ?"

"मैं हूं भते ! इस ग्राम का ग्रामणी।"

"फिर तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस घर के लोग कहां हैं ?"

"जी···पुष्पपाल तो···"

"पुष्पपाल की बात छोड़ो। मैं जानता हूं कि वह कहां है ? मुझे सरमा और वृद्ध ब्राह्मण के बारे में सूचना चाहिए।"

"बात यह हुई कि वृद्ध ब्राह्मण की तो कपाटघ्नों ने हत्या कर दी।" ग्रामीण ने घबरा कर कहना आरंभ किया।

जीवक और नन्दिसेन चौंक कर एकसाथ बोल उठे :

"वृद्ध ब्राह्मण की कपाटघ्नों ने हत्या कर दी ?"

"जी।"

"और सरमा ?"—जीवक ने किंचित् क्रुद्ध स्वर में प्रश्न किया। ग्रामणी कांपता हुआ बोला :

"वह यहां से चली गयी।"

"कब ?"

"दस दिन हो गये।"

"कहां चली गयी ?"—जीवक गरज उठा।

ग्रामणी आपादमस्तक कांपता हुआ बोला : "मालूम नहीं, आर्य !"

"तो मालूम करो। तुम ग्रामणी किस बात के हो ? एक असहाय को कपाटघ्न लूट लें, उसकी हत्या कर दें और तुम मुंह देखते रह जाओ। एक अबला अपना घर-द्वार छोड़ने के लिए लाचार हो जाय और तुम फिर भी ग्रामणी के पद को सुशोभित करते रहो। जाओ और सभी ग्रामवासियों से पूछो कि सरमा कहां गयी।"

"किंतु, प्रभो, सरमा हम लोगों को सूचना दिये बिना ही चली गयी। इसलिए..."

"क्या गांववालों को सरमा सूचना देने गयी थी कि उसके घर पणों की वर्षा हुई है ?"

"जी नहीं, श्रीमन् !"

"फिर कपाटघ्न कैसे आ धमके ?"

"उसका परिवर्तित जीवन-स्तर देखकर लोगों ने भांप लिया।"

"और जब वह भूखों मर रही थी, तब तुम लोगों की गृध्र-दृष्टि को क्या हो गया था ? मैं तुम्हारा कोई भी तर्क सुनने को प्रस्तुत नहीं हूं। मेरे गौल्मिक नन्दिसेन कुछ सैनिकों के साथ यहीं रहेंगे। सात दिन के भीतर यदि तुम लोगों ने सरमा को नहीं ढूंढ़ निकाला तो बिल्व-ग्राम को जलाकर भस्म कर दिया जायेगा। चलो नन्दिसेन !"

जीवक वहां एक पल भी नहीं रुका और नन्दिसेन के साथ शिविर में लौट आया।

"नन्दिसेन !"—जीवक ने अपने कांडपटमण्डप में पहुंचकर आर्द्र स्वर में पुकारा। नन्दिसेन उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था। वह लपक कर आगे आया और अति विनम्र स्वर में बोला :

"आज्ञा, श्रीमन् ।"

"मैं नही जानता था कि सरमा मेरे जीवन में पदार्पण कर चुकी है। आज मैं पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो गया। यदि यह घटना घटित न होती या मैं आज सरमा को देख लेता तो कदाचित् ऐसा अनुभव नहीं करता। अब तो लगता है, जैसे सरमा मेरी सुख-शांति भी अपने साथ ही लेती चली गयी।"

"मुझे आदेश दीजिए, भंते ! मैं सोलहों महाजनपदों का कण-कण छान मारूंगा।"

"आदेश नहीं, निवेदन है, नन्दिसेन ! सरमा का इस तरह अंतर्धान हो जाना मगध की शासन-व्यवस्था पर तो कलक है ही, मेरे सर्वनाश का बीजारोपण भी है।"

"आप मुझ पर विश्वास कीजिए। यदि सरमा जीवित होंगी, तो मैं निश्चित ही ढूढ़ निकालूगा।"

"हां, नन्दिसेन ! यह दायित्व तुम पर डाल कर मैं स्वयं गिरिव्रज जाता हूं। राजा अजातशत्रु को दिये गये वचन का मुझे निर्वाह करना है। पांच सैनिक मेरे साथ कर दो। शेष तुम्हारे कार्य में सहायता देगे।"

"तो क्या आप अभी प्रस्थान कर देंगे ?"

"हां। अब मैं इस गांव में एक पल भी नहीं ठहर सकता। गांव पर दृष्टि पड़ते ही मुझमें एकसाथ क्रोध, घृणा, प्रतिशोध एवं तीव्र वेदना की ज्वाला धधक उठती है और मैं अपना संतुलन खोने लगता हूं। अश्व प्रस्तुत करने का आदेश दो।"

जीवक आवश्यक आदेश आदि देकर, बिना अन्न-जल ग्रहण किये, उसी रात बिल्व-ग्राम से चल पड़ा। साथ में मात्र पांच सैनिक थे। एक क्षण के लिए भी वह दल रात्रि में कहीं नहीं रुका। सूर्योदय हो चुका था। जीवक फिर भी चलता ही रहता, किंतु, उसे अश्वों को विश्राम देना था। अतएव, भूतार्म-ग्राम आने पर जीवक ने कुछ काल तक विश्राम करने का निश्चय किया। संयोग की बात कि वह दल उसी दुष्ट ब्राह्मण के द्वार पर जा ठहरा, जिस ने सरमा को छलपूर्वक बेच दिया था।

राजपुरुष एवं सैनिकों को द्वार पर आया हुआ देख कर ब्राह्मण के

प्राण सूख गये। भय के मारे उसका कंठ सूखने लगा। जीवक ने जब उसे पुकारा तब तो वह प्रायः मूर्च्छित-सा ही हो गया। उसने किसी विधि अपने को संभाला और जीवक की अभिवदना की। जीवक कुशल वैद्य था। उसने ध्यानपूर्वक उस ब्राह्मण को देखा और प्रश्न किया :

"आपके यहां हम छहों अतिथियों के योग्य भोजन-भात की व्यवस्था हो सकती है ?"

"क्यों नहीं श्रीमन् !"—ब्राह्मण ने थूक निगलते हुए द्रुत गति से कहा—"सौ व्यक्तियों की भी व्यवस्था हो सकती है। आपके आशीर्वाद से यहां सब-कुछ है।"

जीवक ने आश्चर्यचकित होकर ब्राह्मण के छोटे-से अव्यवस्थित, छिन्न-भिन्न घर को देखा। घर बहुत पुराना था। निश्चय ही, भारी वर्षा होने पर वह घर पानी पर तैरने लगता होगा।

"आप सौ आदमियों के भोजन की व्यवस्था कर सकते हैं ?"

"जी हां, श्रीमन्।"

"आपके घर से तो ऐसी समृद्धि प्रकट नहीं होती···आप करते क्या हैं ?"

"ब्राह्मण हूं और खेती करवाता हूं।"

"लगता है, आप कुछ अस्वस्थ हैं।"

"जी नहीं, श्रीमन् ! मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं।"—ब्राह्मण ने कांपते-हकलाते स्वर में कहा। जीवक फिर कुछ भी प्रश्न करना व्यर्थ समझ कर सामने के वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। सरमा की विभिन्न दारुण आकृतियां एक-एक कर उसके मस्तिष्क में आती-जाती रहीं। वह वेदना से मन-ही-मन छटपटाता रहा। ब्राह्मण ने सेवा-सत्कार में तन-मन-धन अर्पित कर दिये। तीन मुहूर्त अपराह्ण व्यतीत होने पर जीवक वहां से चल पड़ा। ब्राह्मण नहीं-नहीं करता रहा, फिर भी जीवक ने उसे सौ कार्षापण दे ही दिये। जीवक तथा उसके अंग-रक्षकों के दृष्टि से ओझल हो जाने के पश्चात् ब्राह्मण ने संतोष की सांस ली।

गिरिव्रज पहुंचने तक जीवक को सरमा के दीख जाने की आशा थी। ठीक मध्याह्न के समय वह गिरिव्रज नगर में प्रविष्ट हुआ। आधे से

अधिक नगर ध्वस्त पड़ा था। नगरवासी अपने-अपने कार्य में उत्साहपूर्वक लगे हुए थे। जीवक को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि नगर पर या नगरवासियों पर लिच्छवियों के आक्रमण का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

ध्वस्त गिरिव्रज के उत्तर, पहाड़ियों की तलहटी में नये नगर का निर्माण हो रहा था। नगर-दुर्ग को भी फिर से सुदृढ़ करने का कार्य चल रहा था। प्रहरीगण नगर मे सतर्कतापूर्वक चक्कर काट रहे थे। कार्यक्षमता में कही भी कोई कमी दृष्टिगोचर नहीं हुई। जीवक ने मन-ही-मन वर्षकार की प्रशासन-बुद्धि को सराहा।

जीवक दासों के हट्ट के पास पहुंच कर अचानक विचलित हो उठा। उसके मस्तिष्क में सरमा की दयनीय आकृति चुभ गयी। उसे लगा, मानो ग्राहकों से घिरी हुई सरमा लाज से गड़ी जा रही है, ग्राहक उसके नग्न अंग-प्रत्यंग को घूर-घूरकर, छू-छूकर देख रहे हैं, और सरमा पृथ्वी में समा जाना चाह रही है।…जीवक ने अपने अश्व को हट्ट की ओर मोड़ दिया। सामने से एक वृद्ध पुरुष चले आ रहे थे। जीवक उन्हें देखकर रुक गया। जीवक ने अपने पार्श्व में खड़े अंग-रक्षकों से कहा :

"इन्हें पहचानते हो ? ये हैं भवन-निर्माण कला के प्रसिद्ध विशेषज्ञ महागोविन्द।"

महागोविन्द के निकट आने पर जीवक ने उनकी अभिवंदना की। महागोविन्द जीवक को देखकर अत्यधिक उत्साह से बोल उठे:

"कौन ? आयुष्मान् कौमारभृत्य जीवक ? कब आये ?"

"अभी आ ही रहा हूं, आर्य ! आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

"आपकी अनुपस्थिति में स्वास्थ्य क्या ठीक रहेगा ?' सत्तर वर्ष का होने को आया। सोचा, दो-चार वर्ष आपकी ओषधि के सहारे कट जायेंगे। किंतु, आप तो अपना क्षेत्र छोड़कर दंड-नीति में जा पड़े। कभी यहां, तो कभी…"—तभी महागोविन्द की दृष्टि जीवक के अंग-रक्षकों पर जा पड़ी और उन्होने पहला वाक्य अधूरा छोड़कर दूसरा वाक्य आरंभ किया : "क्या आप अभी अपने प्रासाद की ओर जा रहे हैं ?"

"जी हां।…किंतु, आर्य महागोविन्द ! वैद्य के नाते एक जिज्ञासा है ?"

"आज्ञा कीजिए।"

"इन दिनों आप किस वैद्य की चिकित्सा में हैं ?"

"किसी वैद्य की चिकित्सा में नहीं हूं। वासुदेव कृष्ण की शपथ। आप जो ओषधि दे गये थे, उसी का सेवन कर रहा था। वह भी पंद्रह दिन से समाप्त पड़ा है। यदि दो-चार दिन और आप आने में विलंब कर देते, तो मैं निश्चय ही···।"—महागोविन्द ने हाथ-मुख के संकेत से ही अधूरा वाक्य पूरा कर दिया। जीवक मुस्कराता हुआ बोला :

"जहां तक मुझे स्मरण है, मैंने ऐसी कोई ओषधि नहीं दी थीं, जो आपको इस आयु में दास-दासियों के हट्ट की ओर आने पर विवश कर सके।"

जीवक की बात सुनकर महागोविन्द ठहाका मारकर हंसने लगे, और कुछ काल तक हंसते ही रहे। जीवक मुस्कराता हुआ उन्हें देखता रहा। महागोविन्द अपना अट्टहास कम करते हुए बोले :

"आयुष्मान् जीवक ! मैं आपके कौशल का लोहा मान गया। आपकी शैली अद्भुत है, आश्चर्यजनक है ! किंतु, निश्चित रहिए; मैं दासों में हट्ट में आया था, उसी कार्य से, जिसकी आपको आशंका है। किंतु मेरा उद्देश्य यह नहीं था, जो आप सोचते हैं।"—महागोविन्द अचानक गंभीर होकर बोलने लगे—"आपकी अनुपस्थिति में मुझ पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। ···मेरी वृद्धा पत्नी क्षेत्रिय व्याधि की तीव्रता से पीड़ित होकर···" महागोविन्द वाक्य अधूरा छोड़कर मौन हो अपना सिर कंपाते रहे। जीवक ने गंभीर स्वर में कहा :

"कोई व्याधि ऐसी नहीं है, जिसकी चिकित्सा न हो सके। अतएव, यह कहना कि देह-परिवर्तन के पश्चात् ही इस व्याधि की चिकित्सा हो सकती है, वैद्य की अज्ञानता का सूचक है।"

"किंतु, मेरे दुर्भाग्य से आप तो थे नहीं। क्या करता ? वैद्यों ने क्षेत्रिय व्याधि की घोषणा करके आत्मसमर्पण कर दिया। मेरी वृद्धा मुझे और मेरे ढाई वर्ष के पुण्यवर्द्धन को यहीं छोड़कर स्वयं···।"

"मुझे दुःख है कि मैं समय पर आपके काम न आ सका।"—जीवक ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा। महागोविन्द पुनः हंसने लगे। बोले :

"अरे कोई बात नही। आवागमन तो लगा ही रहता है। पुण्यवर्द्धन की देख-भाल के लिए एक सुरुचिसंपन्न दासी की आवश्यकता थी। इसी-लिए, इधर हट्ट मे चला आया था। अन्यथा मुझे इन दासियों की अब क्या आवश्यकता हो सकती है भला ! मै तो एक-दो वर्ष में ही…।" महागोविन्द ने हाथ के संकेत से "महाप्रयाण करने वाला हूं" शब्दों की पूर्ति कर दी।

"दासी मिल गयी ?"—जीवक ने सहानुभूतिपूर्वक प्रश्न किया।

"हां मित्र ! मिल गयी।"

"कैसी है ?"

"अभी तो अच्छी ही दीखती है। सच पूछिए तो उसे देखते ही मुझे लगा, जैसे मेरी अपनी पुत्री ही…"

"और यह नगर का क्या समाचार है ?"—जीवक ने अपने चारों ओर हाथ का सकेत करते हुए पूछा। महागोविन्द ने एक लंबी सांस खीची और कहा :

"निराशाजनक।"

"क्यों ?"

"महामात्य वर्षकार की इच्छा है कि तत्काल गिरिव्रज को ही अस्थायी रूप से पुनर्निमित कर दिया जाय और गंगा-गंडकी के संगम पर पाटलिग्राम में स्थायी नगर का निर्माण किया जाय। इधर सम्राट् की इच्छा है कि गिरिव्रज की उत्तरी तलहटी में नये नगर का निर्माण किया जाय और उसका नाम रक्खा जाय राजगृह।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? तीनों स्थलों पर कुछ-न-कुछ निर्मित हो ही जायेगा। तब तक भिक्षुओं को आनंद प्राप्त हो रहा है।"

"आपका तात्पर्य ?"

"नगर-निर्माण के लिए जितना काष्ठ एकत्र किया गया था, वह सब भिक्षुगण उठा ले गये।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"सत्य ही कह रहा हूं। पांच सहस्र भिक्षुओं के आवास के लिए काष्ठ की आवश्यकता थी। महाराज ने नगर-निर्माण के निमित्त एकत्र काष्ठ में

से कुछ ले लेने की अनुमति दे दी, और देखते-ही-देखते काष्ठ की धूल भी···।" महागोविन्द ने चुटकी बजाकर संकेत से वाक्य पूरा कर दिया।

"तो क्या महामात्य की भी यही इच्छा थी ?"

"महामात्य को तो इस घटना का पता भी नहीं है। वे पाटलिग्राम गये हुए हैं। कदाचित् आज लौटें।"

"यह तो सम्राट् ने बहुत ही बुरा किया।"

"मेरा भी यही विचार है। सालवती-कांड ने सम्राट् का मस्तिष्क असंतुलित कर दिया है।"

"सालवती-कांड का क्या हुआ ?"

"कुछ दिनों में सम्राट् अपना निर्णय देंगे। इसके लिए बाह्यास्थान-मंडप में समिति की बैठक होगी।"

"और पुष्पपाल कहां है ?"

"कारागार में।"

"अच्छा आर्य ! अब मुझे आज्ञा दीजिए।"

"और मेरी ओषधि ?"

"संध्याकाल मेरे औषधालय में पधारिए।"

जीवक वहां से हट्ट में आये। वहां सैकड़ों नग्न-अर्द्धनग्न दास-दासियां बिकने को एकत्र थीं। दास-विक्रेता ऊंचे स्वर में ग्राहकों का आह्वान कर रहे थे। सैकड़ों ग्राहक एवं दर्शक धक्का-मुक्की करते हुए इधर-उधर आ-जा रहे थे। प्रत्येक उम्र की स्त्रियां पानी के मोल बिक रही थीं।

जीवक एक-एक कर सब लड़कियों को देख गया। सरमा का वहां चिह्न तक नहीं था। हार-थककर जीवक अपने प्रासाद में लौट आया।

"अब क्या होगा ?"—अनुला ने जीवक से चिंतित स्वर में पूछा। जीवक क्षण-भर अनुला का मुंह निहारता रहा। 'तुम अनुला से प्रेम नहीं कर सकते'—वर्षकार का यह कथन जीवक के मस्तिष्क में प्रश्न बनकर चुभ रहा था।

"ऐसे क्या देख रहे हो ?"—अनुला ने प्रश्न किया। जीवक चिंतित स्वर में बोला :

"तुम्हें देख रहा हूं और सोच रहा हूं कि अब क्या होगा ?"

"इस बात के लिए मुझे क्यों देख रहे हो ? मां को देखो। यदि पुष्पपाल को मृत्यु-दंड मिला तो मां आत्महत्या कर लेगी या विक्षिप्त हो जायेगी।"

"और यदि पुष्पपाल अपने षड्यंत्र में सफल होता तो क्या होता ? कभी सोचा है ?···गिरिव्रज लिच्छवियों से पदाक्रांत होता, मगध कंदुक की भांति कभी वज्जिसंघ तो कभी वत्स, कभी अवन्ति तो कभी कोशल के पैरों की ठोकरें खाकर छिन्न-भिन्न हो जाता, संपूर्ण आर्यावर्त्त की प्रजा सैन्य-संगठन के वृत्त में घिर कर घुट मरती और तब उत्तर-पश्चिम से आने वाले दस्यु हमारी छाती पर आ बैठते।"

"यह मैं समझती हूं भन्ते ! किंतु, मां का दुःख देखा नहीं जाता। उन्होंने तो अन्न ग्रहण करना भी त्याग दिया है। मुझे तो उनके प्राण बचने की आशा दिखायी नहीं देती।"

"मगध के प्राण के समक्ष सालवती तो क्या, सम्राट् बिम्बिसार के प्राण भी तुच्छ हैं।

"तो मेरे प्राण ले लो और पुष्पपाल को छोड़ दो।"—सालवती उन्मादिनी की भांति विलाप करती हुई वहां आ पहुंची। जीवक और अनुला मौन हो गये। सालवती बोलती रही: "व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है तो फिर इतने बड़े साम्राज्य और सम्राट् को पुष्पपाल से डरने की क्या आवश्यकता है ?"

जीवक इसका उत्तर देने के लिए उद्यत हुआ कि तभी अनुला का संकेत पाकर चुप हो रहा। अनुला ने मां को तोष देने के भाव से कहा :

"इसमें कौमारभृत्य कर ही क्या सकते हैं, मां ? इनका परामर्श सुनेगा ही कौन ?"

"सब सुनेंगे।" सालवती क्षुब्ध स्वर में बोली : "जीवक सम्राट् बिम्बिसार के प्राणदाता हैं। महामात्य वर्षकार को इन पर गर्व है। राजा अजातशत्रु इनके मित्र हैं।"

"आपको भ्रम हुआ है, देवि ! मेरी प्रतिष्ठा और गौरव तभी तक है जब तक कि मैं राजकार्य में हस्तक्षेप नहीं करता। इसके अतिरिक्त मेरा यह निश्चित मत है कि पुष्पपाल ने अक्षम्य अपराध किया है। उससे बड़ा कृतघ्न, मेरे जानते, मगध में कदाचित् ही कोई होगा। किंचित् विचार कीजिए, आर्ये ! आप तो मगध-कल्याणी हैं। मगध के कल्याण के लिए ही आपकी नियुक्ति हुई है। जो मगध का अहित करना ही अपना धर्म बना ले, उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?"

"आप ठीक कहते हैं, आर्य जीवक ! पुष्पपाल को दंड मिलना ही चाहिए। किंतु, मैंने मगध के कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया, व्यक्तिगत सुख का स्वाद तक नहीं प्राप्त किया, सो क्या इसी दिन के लिए ?···ठीक है। आप कुछ न कीजिए, मगध कुछ न करे, महामात्य वर्षकार अपने राजनियम के पालन में अटल रहें। मुझे इससे रंचमात्र भी क्लेश नहीं पहुंचेगा। मैं तो सम्राट् से पूछूंगी कि प्रजावती या राजमहिषी की कोख से जन्मे पुत्र के साथ भी वे ऐसा ही व्यवहार करेंगे ? क्या उन पर भी मगध का दंड-विधान लागू होगा ?" सालवती दुःख के अतिरेक से रो उठी।

वह सिसकती हुई वहां से चली गयी। जीवक और अनुला खिन्न एवं परितप्त हृदय से उसे जाते हुए देखते रहे। प्रकोष्ठ में अखंड शांति व्याप गयी। सालवती की सिसकियों के स्वर की प्रतिध्वनि भी समाप्त हो गयी, किंतु उसका प्रचंड प्रभाव जीवक को विचलित करने लगा। एक लंबी सांस खींचता हुआ जीवक बोला :

"अनुले ! मैं वैद्य हूं। इसी नाते तुम्हारे पास आया था। उस समय मैं यह नहीं जानता था कि एक दिन मेरा ही रोग अचिकित्स्य हो उठेगा।

"तुम्हारा रोग ?"

"हां अनुले ! तुम्हारे परिवार के साथ मेरा विचित्र संबंध हो गया है, जिससे मेरी स्थिति भी विचित्र हो उठी है। अनुकूल एवं प्रतिकूल धाराओं के प्रबल वेग का प्रतिफल बनकर मैं अनिश्चय के आकाश में लटका हुआ हूं।"

"मैं समझी नहीं।"

"यही तो कठिनाई है, अनुले, कि स्थिति की वास्तविकता न तो मैं समझ पा रहा हूं और न समझाने का मार्ग ही देख रहा हूं।"

"तुम्हें हो क्या गया है ? जब से चम्पा से लौटे हो, विचित्र मुद्रा में डूबे रहते हो।"

"तुम ठीक कहती हो। कुछ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी है।"

"कौन-सी स्थिति ?"

"कुछ तो प्रकट है, जिसे तुम भी अनुभव कर रही हो और कुछ प्रच्छन्न है जिसका आभास मात्र मुझे मिल रहा है। अनुले ! मैं तुम्हें प्यार करता हूं, किंतु मुझे लगता है, जैसे मेरे इस भाव का आभास पाकर विधाता अट्टहास करने लगता है।"

"यह सब व्यर्थ की बातें हैं। युद्ध की विभीषिका ने तुम्हारे हृदय को उद्वेलित कर दिया है।"

"नहीं अनुले ! युद्ध की विभीषिका ने नहीं, स्वयं मेरे भाग्य ने मुझे द्विधा में डाल दिया है। अब तो इसका उपचार समय ही कर सकता है। तुम्हारी मां की स्थिति ने तो मेरे आदर्शों पर ही कुठाराघात कर दिया है,

जिसकी वेदना कदाचित् मेरे प्राण ही ले ले ।" जीवक की बातें सुनकर अनुला चुप हो गयी। जीवक कुछ काल पश्चात् वहां से सीधा महामात्य वर्षकार के प्रासाद में जा पहुंचा।

महामात्य वर्षकार के पास नायक धनंजय बैठा था। जीवक को देखते ही महामात्य बोल उठे :

"पधारो कौमारभृत्य जीवक ! पधारो ।" जीवक के आसन ग्रहण करते ही महामात्य ने प्रश्न किया—"नगरवधू सालवती का क्या समाचार है ? कुछ उद्विग्न-से दीखते हो ?"

"आप तो वासुदेव कृष्ण की भांति अंतर्यामी, घट-घट व्यापी हैं, आर्य ब्राह्मण ! मुझसे क्या पूछते हैं ?"

"मेरे जितने भी सूत्र या सूचना-केंद्र हैं, उन सबमें विश्वसनीय मैं जिसे मानता हूं, उसी से प्रश्न कर रहा हूं ।"

"सालवती तो निश्चय ही प्राण दे देगी ।"—जीवक ने सहानुभूति के स्वर में कहा। वर्षकार अचानक गंभीर हो उठे। बोले :

"मगध का भाग्य संवारने के क्रम में यह एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना होगी, आवुस !"

"तो क्या पुष्पपाल को निश्चय ही मृत्यु-दंड मिलेगा ?"

"न्याय तो यही कहता है। वैसे सम्राट् की जो इच्छा होगी, वही होगा।...तुम्हारा क्या विचार है ?"

जीवक यह प्रश्न सुनकर चौंक उठा। सालवती के करुण चित्त की पृष्ठ-भूमि में एक धूमिल प्रच्छन्न चित्र उभर आया। वह चित्र था सरमा का। संपूर्ण परिस्थिति से अनभिज्ञ अभागी सरमा के मुखमंडल के कुछ मूक निवेदन की ध्वनि जीवक के मस्तिष्क में झंकृत हो उठी। जीवक मनुष्योचित व्यामोह से परे नहीं जा सका। वह संकोच के स्वर में बोला :

"मेरा विचार आप क्यों पूछते हैं ?"

"क्योंकि बिल्व-ग्राम से तुम्हारा भी रागात्मक संबंध है ।"

"महामात्य !"

"चौंको नहीं, आवुस ! तुम्हारे पीछे मैंने गुप्तचर नहीं नियुक्त किये हैं। नन्दिसेन का दूत तुम्हारे प्रासाद में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। दुर्भाग्य

से मैं उस समय स्वयं तुम्हारे प्रासाद में उपस्थित था और मगध के महा-
मात्य से मगध अथवा अग का सैनिक कोई भेद नही रख सकता।"

"वह क्या कह रहा था ?"

"ब्राह्मण-कन्या सरमा का कोई पता नहीं है।"

"फिर ?"—जीवक ने चितातुर स्वर में प्रश्न किया। महामात्य
वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से क्षण-भर जीवक को देखते रहे और बोले :

"मैने सैनिको को यहां आने का आदेश दे दिया है। दूत तुम से मिलकर
बिल्व-ग्राम लौट जायगा।"

"सरमा का क्या होगा ?"

"यह दायित्व मुझे सौंप देने की तुममें शक्ति है ?"

"मेरे अहोभाग्य, आचार्य !"

"तो निश्चित रहो। मगध के गुप्तचर अपना कार्य आरंभ कर चुके हैं।
अब बताओ कि पुष्पपाल के साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?"

"तो क्या आप जानते थे कि पुष्पपाल सालवती का पुत्र नही है ?"

"भली भांति।"

"फिर…फिर आपने…?"

"तुममें विवेक उत्पन्न करने के लिए।"

"मुझमें विवेक उत्पन्न करने के लिए ?"—जीवक ने आश्चर्य एवं
किंचित् विक्षोभ के स्वर में प्रतिवाद किया। महामात्य मुस्कराते हुए बोले :

"तुलनात्मक ज्ञान विश्वसनीय एवं सहज-ग्राह्य होता है।"

"किंतु, इस घटना में मैं कहां से आ गया ?"

"समय आने पर मालूम हो जायेगा। तत्काल मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"
जीवक लाचार होकर मौन रह गया। वर्षकार उसकी ओर देखते रहे।
जीवक ने कहा :

"पुष्पपाल ने अक्षम्य अपराध किया है। उसे मृत्यु-दंड मिलना
चाहिए।"

"हृदय से कह रहे हो ?"

"नही, तर्क के आधार पर—मगध के कल्याण की दृष्टि से। पुष्प-
पाल ने देश के साथ द्रोह किया है। उसने मगध के शत्रु वज्जि गण-संघ से

दुरभिसंधि करके प्रत्येक मागध के मस्तक पर कलंक का टीका लगा दिया है।"

"तुम्हारा हृदय क्या कहता है ?"

"वह अभी मेरे वश में नहीं है।"

"फिर भी ?"

"पुष्पपाल को क्षमा-दंड दे दिया जाय ।"

"इसके पक्ष में तुम्हारा तर्क ?"

"पुष्पपाल मूर्ख है। तभी तो उसने शासन-तंत्र के दलदल में पांव रखने का विफल प्रयास किया ।"

"शासन-तंत्र को दलदल क्यों समझते हो ?"

"इसके चारों ओर स्थित ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, प्रतिस्पर्धा एवं स्वार्थ का वृत्त देखकर कोई भी संवेदनशील विवेकी पुरुष इसे दलदल ही कहेगा ।"

"और यदि तुम्हें आर्यपट्ट पर प्रतिष्ठित कर दिया जाय ?"

"तो उसे स्वीकार कर मैं ईश्वर के साथ विश्वासघात करूंगा ।"

"क्यों ?"

"राजा बनकर मैं अपने गुणों का उपयोग नहीं कर पाऊंगा। और मैं मानता हूं कि ईश्वर ने मानव-समाज की सेवा के निमित्त मुझमें गुण उत्पन्न किये है, मुझे जन्म दिया है।"

"मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं आवुस ! आज मेरा क्षणिक भ्रम भी दूर हो गया।"

"आपका भ्रम ?"

"हां। कठिनाइयों एवं षड्यंत्रों की छाया में चलते रहने का अभ्यस्त व्यक्ति अपनी निश्छलता की छाया से अपरिचित रह जाता है। पुष्पपाल के प्रति तुम्हारे विचार को मैं ध्यान में रखूंगा ।"

"मैं अनुगृहीत हुआ आर्य !"

"मंडलेश्वर अजातशत्रु का क्या संदेश है ? पाटलिग्राम से लौटते ही मैं तुम्हारे प्रासाद में इसी आशय से पहुंचा था।"

"पुष्पपाल एवं लिच्छवियों की दुरभिसंधि का समाचार सुनकर वे अत्यधिक उद्विग्न हो उठे है। और…"

"और गिरिव्रज पर सिंह सेनापति के आक्रमण का समाचार सुनकर उन्मत्त।"

"हां, कुछ ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। वे स्वयं यहां आने को आतुर हो उठे थे।"

"जिससे कि अंग भी हाथ से निकल जाय।"

"वास्तव में वे अंग-विजय से उतने प्रसन्न नहीं हैं जितने कि गिरिव्रज-कांड से अप्रसन्न है।"

"मैं उनकी चिंता का अनुभव करता हूं। किंतु, धीरज के अभाव में हमारा विनाश अनिवार्य हो उठेगा।"

"आपने सुना ? सम्राट् ने नगर-दुर्ग के निमित्त एकत्र काष्ठ भिक्षुओं को दे दिया।"

"हां आवुस, सुना। सम्राट् को मैं बचपन से जानता हूं। पराक्रमी पुरुष विलास के कूप में गिरकर अध्यात्म की तरी ढूढ़ने लगता है और अपने चतुर्दिक खड़ी परिस्थितियों की दीवार को भूल जाता है। सम्राट् बिम्बिसार का अब निस्तार नहीं दीखता। इसी का मुझे दुःख है।...अच्छा, अब तुम जाकर विश्राम करो। कल प्रातःकाल भेंट होगी।"

जीवक महामात्य का अभिवादन करके चला गया।

जीवक के चले जाने के पश्चात् महामात्य वर्षकार विचारमग्न हो गये। नायक धनंजय महामात्य के चिंताग्रस्त मुखमंडल की रेखाओं को पढ़ने का

विफल प्रयत्न करता हुआ चुपचाप बैठा रहा। कुछ काल तक महामात्य के मुखमंडल पर विभिन्न रेखाएं बनती-बिगड़ती रही। अचानक धर्नजय भय-भीत हो उठा। उसकी दृष्टि महामात्य पर लगी थी। महामात्य का मुख-मंडल भयावह हो उठा था, उनके भाल पर कई रेखाएं उग आयी थीं, उनकी आंखें छोटी हो गयी थीं और उनमें से स्फुलिंग-सी प्रकट होती मालूम हो रही थी। संकल्प का रौद्र रूप उनके मुखमडल पर साकार हो उठा था। अचानक महामात्य का तीक्ष्ण स्वर मुखशाला में गूज उठा :

"प्रतिहारी !"

धनंजय चौककर उठ खडा हुआ। महामात्य भी उठकर मुखशाला में चक्कर काटने लगे। प्रतिहारी के आने पर उन्होंने आदेश दिया :

"नगरवधू सालवती को लाने के लिए मेरा रथ भेजो। मैं उससे अभी मिलना चाहता हूं।"

"जो आज्ञा, श्रीमन् !" प्रतिहारी के प्रस्थान कर जाने के पश्चात् महामात्य ने धनजय से प्रश्न किया :

"तन्त्र का ज्ञान रखते हो ?"

"जी ?...कोई विशेष नही।"

"मंत्र यदि निर्दिष्ट लक्ष्य पर पहुंचकर विफल हो जाता है तो उसका परिणाम क्या होता है ?"

"मंत्र सिद्ध करने वाले तांत्रिक का विनाश !"

"पुष्पपाल भी किसी का मत्र ही है।"

"हां श्रीमन् ! लिच्छवियों का।"

"तो इसे लिच्छवियों के पास ही लौट जाना चाहिए।"

"जी ?"

"हा धनंजय ! वैशाली-अभियान में अब विलंब नहीं है। अतएव, पुष्पपाल हमारा मार्ग प्रशस्त करेगा।"

"मैं समझा नही, आर्य ब्राह्मण !"

"अभी स्पष्ट हुआ जाता है। तुम कारागार के प्रहरियों को आदेश दे आओ कि सालवती को पुष्पपाल से मिलने मे कोई बाधा न डाले।"

"यह आप..."

"आदेश का पालन करो।"

"जो आज्ञा !"

"और सुनो ! सालवती अकेली जायेगी और अकेली आयेगी। मेरी आज्ञा के अधीन उसे सभी प्रकार की सुविधाएं एवं सम्मान प्राप्त है।"

"जो आज्ञा !"

धनजय महामात्य के आदेश एवं उनकी भयावह मुख-मुद्रा पर विचार करता हुआ कारागार की ओर भाग चला। अश्व की गति से भी तेज उसकी कल्पना दौड़ रही थी। महामात्य ने सम्राट् बिम्बिसार के प्रति जीवक के समक्ष जो भाव व्यक्त किये थे, धनजय उन्हे स्मरण करके कांप-कांप उठता था।

रात्रि उतर चुकी थी। गिरिव्रज नगर मे चहल-पहल मची हुई थी। मदिरालय में उन्मुक्त आनंद प्रवाहित हो रहा था, गणिकाओं की अट्टालिकाओ में जीवन का यौवन सिमट आया था, प्रवीण व्यक्ति वालो को काढ़े-सवारे वहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो श्रेष्ठि-चत्वरों में भ्रमण कर रहे थे और तरुण दासिया सज-सवर कर बल खाती हुई इधर-उधर आ-जा रही थी।

सालवती अर्द्धमृत-सी अपने प्रकोष्ठ मे पड़ी थी कि वर्षकार के यहां से दूत आ पहुचा। तत्क्षण ही, उसी दशा मे, वह महामात्य के प्रासाद में जा पहुची। महामात्य तब तक मुखशाला मे ही चक्कर काट रहे थे। सालवती की दशा देखकर वे भी मन-ही-मन चौक उठे। किंतु, उन्होंने अपने मन का भाव प्रकट नही होने दिया और आसन की ओर संकेत करते हुए कहा :

"नगर की सर्वश्रेष्ठ सुदरी का वर्षकार अपने गृह मे स्वागत करता है।"

"धन्यवाद, भंते ! क्या आज्ञा है ?"

"आज्ञा देनी नही है, लेनी है।"

"मगध साम्राज्य के परम शक्तिशाली महामात्य को मैं आज्ञा दूं ? आर्य ! पुत्र-शोक से मैं निश्चय ही उद्विग्न हो उठी हू, किंतु, पागलपन की उस सीमा तक अभी नही पहुंची हूं कि आपको आज्ञा देने की धृष्टता कर

सकूं।"

"मैं तुम्हारी वेदना का अनुभव कर सकता हूं, सालवती ! किंतु, तुम्हें मात्र अपने पुत्र के भविष्य की चिंता है और मुझे संपूर्ण मगध की। फिर भी मगध के प्रति तुम्हारे त्याग की महत्ता का विचार कर मैं तुम्हारी सहायता करने को प्रस्तुत हूं।"

"यह आपकी कृपा है, महामात्य ! और आपकी ही कृपा से मेरे पास किसी वस्तु का अभाव नहीं है कि मैं आपसे सहायता की याचना करूं। मुझे तो न्याय चाहिए।"

"न्याय का विचार तो व्यवहार के अधीन न्यायाधीश करता है।"

"उस व्यवहार के व्यवस्थापक तो आप ही हैं।"

"फिर मुझसे ही उस व्यवस्था की परंपरा को खंडित करवाना चाहती हो ?"

"नहीं। मैं तो परंपरा को अक्षुण्ण रखना चाहती हूं।"

"वह किस प्रकार ?"

"अपने अधिकार के लिए उद्यम करना क्या अपराध है ?"

"नहीं।"

"फिर मेरे पुत्र पुष्पपाल को क्यों दंड दिया जा रहा है ?"

"क्योंकि उसके उद्यम ने देश को भयानक विपत्ति में डाल दिया।"

"और यदि कुमार अजातशत्रु, राजा दर्शक, अभय कुमार, विमल कुन्दन या हल्ल-बेहल्ल ने इस तरह का विद्रोह किया होता, तो ?"

"उन्हें भी वही दंड मिलता जो आज पुष्पपाल को मिलने जा रहा है। सम्राट् बिम्बिसार भी दंड से परे नहीं हैं।"

"तो ठीक है, महामात्य ! फिर आप मेरी सहायता क्यों करना चाहते हैं ?"

"जिसके लिए सम्राट् सहित संपूर्ण गिरिव्रजवासी अपने प्राण उत्सर्ग करने को आतुर रहते हैं, उस सालवती के लिए मैं भी एक बार अपने कर्तव्य से च्युत होने का आनंद प्राप्त करना चाहता हूं।"

"मैं जीवन-मरण के प्रश्न से जूझ रही हूं, महामात्य ! आपका परिहास मेरे प्राण ले लेगा।"—सालवती ने अर्द्धस्वर में कहा। महामात्य

मुस्करा कर बोले :

"मैं परिहास नहीं कर रहा हूं। पुष्पपाल ने अक्षम्य अपराध किया है। कल उसे निश्चय ही प्राण-दंड मिलेगा।"

"फिर भी आप कह रहे हैं कि आप मेरा उपहास नहीं कर रहे हैं। क्या यही सब सुनाने के लिए आपने मुझे यहां आमंत्रित किया है ?"

"नहीं। मैंने तुम्हें आमंत्रित किया है यह बताने के लिए कि मैं पुष्पपाल को कारागार से भाग जाने का अवसर दे सकता हूं।"

"महामात्य !"—सालवती हर्ष से चीत्कार-सा कर उठी। महामात्य ने गंभीर स्वर में कहा :

"हां सालवती ! किंतु, एक कठिनाई है।"

"वह क्या ?"—सालवती अधीर हो उठी।

"पुष्पपाल के स्थान पर किसी विश्वसनीय व्यक्ति को कारागार में रख देना होगा। वह व्यक्ति ऐसा हो, जो हमारी इस योजना का भंडाफोड़ न करे।"

"मैं प्रस्तुत हूं, आर्य !"—सालवती उल्लासपूर्वक बोली। महामात्य किंचित् आश्चर्य की मुद्रा में बोले :

"तुम ?"

"हां, महामात्य ! इससे बड़ा सुख मुझे मोक्ष में भी प्राप्त नहीं होगा। मुझे मां के पद को सार्थक करने का अवसर दीजिए, प्रभो ! मैं आपके पांव पड़ती हूं।"—सालवती हर्ष-विषाद के अतिरेक से विह्वल होकर सचमुच ही महामात्य के चरणों में गिर पड़ी। महामात्य ने सालवती को सहारा देकर उठाया और कहा :

"स्थिर-चित्त हो आसन ग्रहण करो।···प्रतिहारी !"

"आज्ञा, प्रभो !"—प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया।

"देवी सालवती के कारागार तक पहुंचने की व्यवस्था करो।··· सालवती ! तुम्हें अपने मुख पर आवरण डालकर कारागार में जाना होगा और उधर से भी···।"

"मैं समझ गयी, भंते।···चलो प्रतिहारी। शीघ्रता करो।"

सालवती प्रफुल्लित होकर वहां से चल पड़ी, वर्षकार कुछ काल तक

मुखशाला में चक्कर काटते रहे कि तभी धनंजय आ उपस्थित हुआ। महा-मात्य ने उसे देखते ही प्रश्न किया :

"व्यवस्था कर दी ?"

"हां, श्रीमन् !"

"साधु, आवुस ! अब एक कार्य और संपन्न करना है। पांच-सात विश्वसनीय योद्धाओं के साथ कारागार पहुंचो और सालवती ज्यों ही कारागार के बाहर निकले, उसे बंदी बनाकर यहां ले आओ।"

"जी ?"

"चौंको नहीं। वह सालवती नहीं, सालवती के वेश में स्वयं पुष्पपाल होगा। किंतु, सावधान ! किसी प्रहरी को इस घटना का आभास तक नहीं मिले और तुम्हारे साथ के योद्धा भी इसकी चर्चा न करे। यहां लाते समय पुष्पपाल के हाथ, मुंह आंखें बंधी रहनी चाहिए।"

"ऐसा ही होगा, श्रीमन् !"

"तो शीघ्रता करो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।"

आदेश मिलते ही धनंजय वहां से दौड़ चला। अपराह्न आरंभ हो चुका था।

पुष्पपाल दयनीय स्थिति में महामात्य वर्षकार के समक्ष खड़ा था। उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी-मूंछें, उलझे-रूखे बाल एवं अस्त-व्यस्त वस्त्र देखकर ही दया उपजती थी। महामात्य कह रहे थे :

"तुम्हें अंतिम अवसर दे रहा हूं। यदि इस बार चूके तो तुम्हारी रक्षा वासुदेव कृष्ण भी नहीं कर सकेंगे।"

"आप सत्य कहते हैं श्रीमन् ! मैं बड़ा ही पातकी हूं। मुझे दंड दीजिए।"—पुष्पपाल ने रुद्ध कंठ से कहा। महामात्य गंभीर स्वर में बोले :

"हां, मैं तुम्हें दंड ही देने जा रहा हूं—क्षमा-दंड !"

"मैं उसके योग्य नहीं हूं।"—पुष्पपाल सिसकता हुआ बोला। महामात्य किंचित् तोष दिलाते हुए बोले : "तुम्हारी योग्यता का उपयोग मुझे मालूम है। किंतु, तुम्हें वचन देना होगा।"

"मैं वचन देता हूं, श्रीमन् !"

"यह लो।" कार्षापण की थैली बढ़ाते हुए महामात्य ने कहा : "तुम्हें वैशाली जाना है। सेनापति सिंह तुम्हारे मित्र हैं। उन्हें मालूम है कि तुम कारागार में हो और तुम्हें प्राण-दंड मिलने वाला है। अब उन्हें यह भी मालूम हो जायेगा कि तुम कारागार से भाग निकले हो। लिच्छवि अपनी मित्रता और वचन का निर्वाह करना जानते हैं। वे तुम्हें सम्मान के साथ अपने यहां रक्खेगे। मेरा तात्पर्य समझ रहे हो ?"

"जी नहीं।"

"वैशाली में रह कर वैशाली की शक्ति एवं वहां की गतिविधि से मुझे परिचित कराते रहना तुम्हारा कर्तव्य हुआ।"

"मैं प्रस्तुत हूं, आर्य ब्राह्मण !"—पुष्पपाल उत्साहपूर्वक बोला।

"और यदि तुमने विश्वासघात किया ?"

"तो मैं स्वयं गंगा में डूब मरूंगा।"

"यह दंड बहुत साधारण होगा, पुष्पपाल ! जिस देश में तुम्हारा जन्म हुआ है, उस देश के प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। किंतु, अवसर मिलने पर भी तुम अपने कर्तव्यों एव दायित्वों के प्रतिकूल आचरण करते रहे। कभी एकांत में बैठकर अपने क्रिया-कलापों पर विचार करोगे तो तुम्हें आत्म-ग्लानि होगी, तभी तुम अपने-आप में परिवर्तन ला सकोगे। प्रत्येक वस्तु की एक सीमा होती है। मैं मगध का नागरिक ही नहीं, महामात्य भी हूं। अतएव मेरी सीमाएं और भी छोटी हैं। और मैं तुम्हारे लिए बारंबार अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकता।"

"मैं कृतघ्न हूं, देव ! मेरा हृदय मुझे धिक्कार रहा है। आप विश्वास करें, यदि आपका आदेश मेरे समक्ष न होता तो मैं निश्चय ही आत्म-हत्या कर लेता। आपने मुझे रंक से राजा तो बना दिया था, किंतु कर्म की प्रेरणा नहीं दी थी। कदाचित् इसी कारण मैं अपनी अक्षय शक्ति का सदुपयोग नही कर सका।"

"तुम ठीक कहते हो।...अच्छा तो अब विलंब करना उचित नहीं होगा। प्रातःकाल होते-होते तुम्हें गिरिव्रज से दूर निकल जाना है।"

"जो आज्ञा !"

'और, सुनो। इस भ्रम में मत रहना कि वैशाली पहुंच कर तुम मेरी पहुंच से परे हो जाओगे।"

"मैं जानता हूं, आर्य !"

"मेरे दूत तुमसे समय-समय पर मिला करेंगे। उनका संकेत-शब्द होगा 'अभिषेक'। यह मुद्रिका लो। मगध की सीमा के भीतर कोई विपत्ति आने पर काम आयेगी। वैशाली पहुचने के लिए गंगा पार करते समय इसे गंगा की भेट कर देना। अब तुम शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दो।"

पुष्पपाल महामात्य के चरण-स्पर्श करके वहां से चल पड़ा। गिरिव्रज नगर रात्रि के अंधकार में डूबा हुआ था। चारों ओर अखड शांति व्याप्त थी। पुष्पपाल को लंबी यात्रा पर जाना था। भूख एवं शारीरिक दुर्बलता से वह अति क्लांत हो गया था। अनजाने ही उसका अश्व एक परिचित मद्य-विक्रेता की दूकान के निकट जा पहुंचा। कदाचित् मद्य की उष्णता स्फूर्ति भर दे, ऐसा सोच कर वह दूकान के सामने अश्व से उतर पड़ा और द्वार खटखटाने लगा। क्षण-भर के बाद ही भीतर से परिचित स्वर सुनायी पड़ा :

"कौन है ?"

"मैं हूं पुष्पपाल। द्वार खोलो।"

तत्क्षण द्वार खुल गया। प्रौढ़ मद्य-विक्रेता चौंक कर पुष्पपाल को देखता हुआ स्वप्नवत् स्वर में बोला :

"आप ?"

पुष्पपाल दूकान में प्रवेश करता हुआ धीमे स्वर में बोला :

"हां मित्र ! कारागार से भाग निकला हूं। क्षुधा-निवृत्ति का कोई उपाय है ? और थोड़ी कापिशायनी भी ले आओ। शीघ्रता करो।"

मद्य-विक्रेता दौड़ कर कापिशायनी और थोड़ा-सा शूल्यमांस[1] लाकर पुष्पपाल के समक्ष रखता हुआ बोला :

"यही थोड़ा-सा शूल्यमांस बच रहा है।"

'पर्याप्त है।"—पुष्पपाल उसे चबाता हुआ बोला। मद्य-विक्रेता ने पूछा :

"अब आप क्या करेंगे, आर्य ? महामात्य वर्षकार के गुप्तचर तो सभी जगह उपस्थित रहते है। उनके जाल से बच निकलना टेढ़ी खीर है।"

"मैं मगध से बाहर जा रहा हूं।"

"मगध से बाहर ? कहां ?"—मगध-विक्रेता घबराहट के स्वर में बोल उठा। वास्तव में, मद्य-विक्रेता पुष्पपाल का अपना ही आदमी था। मगध के विरुद्ध षड्यंत्र में दोनों ही सहमार्गी थे। पुष्पपाल ने शांत स्वर में उत्तर दिया :

"वैशाली जा रहा हूं।"

"आप वैशाली जा रहे है ?"

"हां।"

"आज ही वैशाली से एक दूत आया है।" मद्य-विक्रेता ने उत्साह-पूर्वक कहा। पुष्पपाल चौक उठा। किंतु, वह संयमित स्वर में बोला :

"कहां है वह दूत ?"

"राजकुमार हल्ल-बेहल्ल से मिलने गया है। एक दास-विक्रेता से मुझे राजमुद्रिका हाथ लग गयी थी। वह दूत उसी मुद्रिका के सहारे हल्ल-बेहल्ल के प्रासाद में अनायास प्रवेश पा गया होगा।"

"जाने दो। मुझे तो शीघ्र वैशाली पहुंचना है। अब तो इस देश में अपना निर्वाह होगा नही।"—कहने को तो पुष्पपाल ने कह दिया, किंतु, मन-ही-मन वह वैशाली के दूत को बंदी बनाकर वर्षकार के चरणों में ला पटकने को व्यग्र हो उठा। उसने मद्य-विक्रेता पर अपनी व्यग्रता प्रकट

१. सीक कबाब

नहीं होने दी। वह स्थिर-चित्त हो वहां से चल पड़ा। कुछ दूर आगे जाकर उसने दूसरे मार्ग से हल्ल-बेहल्ल के प्रासाद की ओर अपना अश्व मोड़ दिया।

हल्ल-बेहल्ल के प्रासाद में पहुंच कर उसे मालूम हुआ कि तीनों व्यक्ति धवलगृह की ओर गये हैं। यह सुनते ही पुष्पपाल का माथा ठनका। वह विद्युत-गति से धवलगृह की ओर उड़ चला। मुद्रिका पास में होने के कारण उसे राजद्वार में प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

भीतर प्रतीहारीगण बाह्यास्थानमंडप तक यथास्थान उपस्थित थे। बाह्यास्थानमंडप के बाद चारों ओर सन्नाटा था। दूर-दूर तक कहीं कोई प्रहरी दिखाई नहीं पड़ रहा था। पुष्पपाल धवलगृह के मार्गों से भली भांति परिचित था। वह कमलवन की ओर चल पड़ा। सुवीथी में पहुंचते ही उसके पांव जड़ हो गये।

वह ऐसे स्थान में खड़ा हो गया, जहां घोर अंधकार छाया हुआ था। वहां से दीवार दायीं ओर मुड़ती थी। भुनभुनाहट का स्वर सुन कर वह चौंक उठा था और वहीं से उसने झांक कर देखा था, उसके पश्चात् ही उसके पांव जकड़ गये थे। उसने देखा कि हल्ल अपना रक्त-रंजित खड्ग हाथ में लिये खड़ा है और वैशाली का दूत कह रहा है :

"अभी बस इतना ही पर्याप्त है। मैंने सभी मार्ग देख लिये हैं। अब कोई कठिनाई नहीं होगी। आप अपना पत्र दे दीजिए। मुझे रात्रि का अंधकार रहते ही यहां से प्रस्थान कर देना चाहिए।"

पुष्पपाल हल्ल का रक्त-रंजित खड्ग देख कर भयावह कल्पनाओं से आक्रांत हो उठा। उसका रक्त खौलने लगा। वह महाराज के वासगृह का मार्ग जानता था। किंतु, वहां जाकर निरीक्षण करने का न तो उसके पास समय था, न ही इसकी आवश्यकता थी। जो होना था, हो चुका था। अब भवितव्य को रोकना अनिवार्य था। अतएव वह धैर्यपूर्वक वहीं खड़ा होकर उन लोगों का वार्तालाप सुनने लगा।। बेहल्ल कह रहा था :

"तीन-चार मास तक अजातशत्रु के यहां आने की कोई आशंका नहीं है।"

"किंतु, यह खूसट महामात्य जो जमा बैठा है।"—दूत ने धीमे स्वर

मे जिज्ञासा की। हल्ल खड्ग उछालता हुआ बोला :

"कहो तो उसे भी समाप्त कर दू ।"

"उसे समाप्त करना सरल नही है, बधु !"—बेहल्ल ने कुछ सोचते हुए कहा। फिर तत्क्षण ही वह किंचित् उत्साह से बोला : "किंतु, हम व्यर्थ ही चिंतित होते है । वह तो शीघ्र ही पाटलिग्राम प्रस्थान करने वाला है ।

"क्यो, पाटलिग्राम मे क्या है ?"—दूत ने जिज्ञासा की।

"वह वहा एक विशाल दुर्ग बनवा रहा है । इस कार्य मे वह अत्यधिक व्यस्त रहेगा। फिर हम कोई षड्यत्र रचकर उसे चम्पा की यात्रा करने पर विवश कर देगे ।"

"तो मुझे अब आज्ञा दीजिए। अधिक विलब घातक हो सकता है ।"—दूत ने व्यग्र स्वर मे कहा । बेहल्ल ने उसे एक पत्र देते हुए कहा :

"इस पत्र मे पूरी योजना है और धवलगृह तथा उसके गुप्त-मार्गो का मानचित्र है । तुम चाहो, तो यह मौक्तिकमाल भी ले जा सकते हो। पिताश्री को दे देना । वहां यह अधिक सुरक्षित रहेगी ।"

"नही, नही, इसे अपने पास ही रखिए ।"—दूत घबरा कर बोला, जैसे उसने सर्प देख लिया हो—"इस बहुमूल्य माला को साथ ले जाने का अर्थ मृत्यु को आमत्रण देना है ।"

पुष्पपाल ने कौतूहल से उस विख्यात मौक्तिकमाल को देखा । वह रोमाचित हो उठा। बडे-बड़े सम्राट् उस मौक्तिकमाल के लिए मगध से ईर्ष्या करते थे। उल्का के मद्धिम प्रकाश मे माला जगमगा रही थी। बेहल्ल उसे अपने उत्तरीय मे छिपाता हुआ बोला :

"अब मै उसे धवलगृह मे तो नही हो रहने दूगा। अपने प्रासाद मे रखूगा ।"

"फिर तो चोरी प्रकट हो जायगी ?"—दूत ने कहा। हल्ल हसता हुआ बोला :

"धवलगृह का रत्नागार वर्ष-दो वर्ष पर खुला करता है ।

"तो मैं चलू ?"

"हां, चलो । जिस मार्ग से हम आये है, उसी मार्ग से चले ।"

पुष्पपाल उन तीनों के पीछे हो लिया। धवलगृह के जिस ओर वे लोग बढ रहे थे, उसी ओर उसने अपने अश्व बांध रक्खे थे। गुप्त-मार्ग से होकर तीनों धवलगृह के बाहर निकल आये। पुष्पपाल कुछ ही दूर पीछे अंधकार में छिपा खड़ा रहा। बेहल्ल ने कहा :

"सेनापति सिंह से कह देना कि पांच सहस्र प्रति माह के हिसाब से पांच महीने में पच्चीस सहस्र लिच्छवि सैनिक नागरिक वेश में गिरिव्रज पहुंच जायं। तभी कल्याण है। मैंने पत्र में भी लिख दिया है।"

"आपकी आज्ञा का पालन किया जायेगा। सिंह सेनापति स्वयं इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र संपन्न करने को व्यग्र हैं।"

"अच्छा तो तुम कुछ देर यहीं ठहरो, पहले हम दोनोंको जाने दो। क्योकि बाहर खूसट वर्षकार के गुप्तचर तथा सैनिक चक्कर लगाते रहते हैं।"

हल और बेहल्ल अपने-अपने अश्व पर आरूढ होकर चल पड़े। पुष्पपाल के मन मे हुआ कि वह धवलगृह में जाकर देख आये कि किसकी हत्या हुई है। किंतु, शीघ्र ही उसमें विवेक का उदय हुआ और वह दूत से पत्र प्राप्त करने को व्याकुल हो उठा। हल्ल और बेहल्ल दूर जा चुके थे। लिच्छवि-दूत अपने अश्व की ओर चल पडा। तत्क्षण पुष्पपाल उसकी पीठ पत्र जा पहुंचा! पदचाप सुनते ही दूत ने मुड़ कर देखा और दोनों एक-दूसरे से गुथ गये। खड्ग की खनखनाहट अंधकार में गूजने लगी। दूत अधिक बलशाली था। उसने अचानक पुष्पपाल पर खड्ग का एक प्रहार किया। पुष्पपाल का खड्ग झन्नन्न् से दूर जा गिरा। पुष्पपाल घबरा गया। कोई उपाय न देख कर उसने कार्षापण से भरा थैला दून के मुंह पर दे मारा। दूत जब तक संभले-संभले तब तक पुष्पपाल उसकी छाती पर जा बैठा और गर्दन दबोचने लगा। कार्षापण की चोट से दूत की नाक फट गयी थी और रक्त की धार बहने लगी थी। बेचारा अर्द्धमृत-सा हो रहा था, फिर भी उसने साहस करके पुष्पपाल को हवा में उछाल दिया। दुर्भाग्य से पुष्पपाल पुनः उसी की छाती पर आ गिरा, जिससे दूत की पसली टूट गयी। तभी चमत्कार हुआ। दोनों योद्धाओं ने देखा कि पांच सैनिक उन्हें घेर कर खड़े हैं और एक व्यक्ति अलग खड़ा होकर आदेश दे

रहा है : "दोनों को मेरे पास ले जाओ।"

पुष्पपाल महामात्य का स्वर सुनकर आश्चर्य एवं उल्लास से भर उठा। महामात्य ने स्नेहपूर्वक कहा :

"तुमने इस बार मेरे आदेश का पालन न करके बहुत अच्छा किया, पुष्पपाल ! किंतु अब तुम्हें शीघ्र प्रस्थान कर देना चाहिए। कहीं अधिक चोट तो नहीं आयी ?"

"नहीं, श्रीमन् ! मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं।"

"यह सब वासुदेव कृष्ण की कृपा है। यह लो कार्षापण की दूसरी थैली। सैनिको ! इस दूत को मेरे गुप्त कारागार में डाल दो।"

"उसके पास एक पत्र है, श्रीमन् ! उससे ले लीजिए।"

पुष्पपाल की बात सुनते ही दूत ने पत्र को नष्ट करने का प्रयास किया कि तभी सैनिको ने उसे असमर्थ बना दिया। पत्र महामात्य वर्षकार को सौंप दिया गया। महामात्य ने कहा :

"अब इसे ले जाओ। इसके प्राण बहुत मूल्यवान हैं। अतएव ध्यान रखना।"

सैनिक उस दूत को पकड़ ले गये। वे सभी सैनिक वर्षकार के निजी अंगरक्षक थे। उन सबके चले जाने के पश्चात् पुष्पपाल ने संपूर्ण कहानी वर्षकार को सुना दी। वर्षकार ने कहा :

"आज की इस घटना ने तुम्हारे कलंक को धो डाला। फिर भी तुम्हें मगध के कल्याण के लिए कुछ दिन और लोक-दृष्टि में कलंकित होकर ही रहना है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। अब जाओ। वासुदेव कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें।"

"किंतु महामात्य, हल्ल का वह रक्त-रंजित खड्ग ! कहीं···"

"हां, आज पराक्रमी दौवारिक हमारे बीच नही रहे। हल्ल ने उनकी हत्या कर दी।"

"ओह···! दौवारिक मारे गये ?"

"हां ! तुम जाओ।" पुष्पपाल वर्षकार के चरण-स्पर्श कर अश्व पर आरूढ़ हो गया। अश्व हवा में उड़ चला। वर्षकार कुछ देर तक वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि से उस ओर देखते रहे। ब्राह्म मुहूर्त में थोड़ा ही विलंब था।

वर्षकार विचारमग्न मुद्रा में वहां से पैदल ही चल पड़े।

दासों के हट्ट में लाकर सरमा को अर्ध-नग्न करके ग्राहक के समक्ष प्रदर्शित करने का उद्यम किया गया। सरमा बहुत ही सरल एवं संकोचशील युवती थी। उसने जीवन में कभी किसी का प्रतिरोध नहीं किया था, किसी पर वह कभी कुपित नहीं हुई थी। उसे ऐसा अवसर ही नहीं मिला था। जब दास-विक्रेता के भृत्यों ने सरमा को नग्न करना चाहा, तब सरमा ने अचानक सिंहनी की भांति उछलकर एक भृत्य के दाहिने हाथ का मांस नोच लिया। भृत्य चीत्कार करता हुआ भाग खड़ा हुआ। दूसरा भृत्य भयभीत होकर पीछे हट गया।

दास-विक्रेता को जब इस घटना की सूचना मिली, तब वह स्वयं क्रुद्ध सांड़ की तरह हुंकड़ता हुआ वहां आ पहुंचा। उसके हाथ में छोटी-सी लपलपाती हुई हेति थी। सरमा दीवार से पीठ के सहारे चिपकी हुई क्रुद्ध नागिन की तरह चमकती हुई आंखों से दास-विक्रेता को देखती रही। दास-विक्रेता उसकी ओर लपककर चला आ रहा था। सरमा अपनी प्रथम विजय से उत्साहित हो उठी थी। वह दास-विक्रेता का उग्र रूप देखकर रंचमात्र भी विचलित नहीं हुई। प्रत्युत, वह अत्यधिक धैर्य के साथ आसन्न विपत्ति की प्रतीक्षा करने लगी।

दास-विक्रेता कुछ दूर तो लपक कर आया, किंतु ज्यों ही उसकी दृष्टि सरमा की दृष्टि से मिली त्यों ही दास-विक्रेता का शौर्य मद्धिम पड़ गया।

सरमा की दृष्टि से स्फुलिंग छिटक रहे थे। दास-विक्रेता की गति धीमी पड़ गयी। सरमा दीवार से सटी हुई खड़ी रही। दास-विक्रेता हेति चमकाता हुआ, गालियां देता हुआ भयभीत मन से सरमा के पास पहुंचा ही था कि वह अचानक दास-विक्रेता पर टूट पड़ी। दास-विक्रेता उस अप्रत्याशित आक्रमण से घबरा कर गिर पड़ा, उसकी हेति दूर जा पड़ी और जब तक वह संभल कर उठे-उठे, तब तक हेति सरमा के हाथ लग चुकी थी। दास-विक्रेता सरमा का चडिका रूप देखकर वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

इस घटना के बाद किसी ने सरमा के साथ अभद्र व्यवहार करने का दुस्साहस नहीं किया। महागोविंद अपने प्रमुख भृत्य के साथ एक दासी की खोज में हट्ट पहुंचे। सरमा उन्हें पसंद आ गयी। उनका भृत्य सरमा के निकट जाकर उसके अंग-प्रत्यंग को छूकर जांचने ही वाला था कि सरमा का भरपूर तबड़ाक उसके गाल पर पड़ा। भृत्य की आंखों से तारे फूटने लगे। वह क्रोध से तिलमिला कर सरमा की ओर लपका ही था कि तत्क्षण भयभीत होकर तमाचा पग पीछे हट गया। सरमा के हाथ में हेति चमक रही थी। महागोविंद दूर खड़े हंसने लगे। भृत्य अपना क्रोध पीकर रह गया। महागोविद हंसते हुए बोले :

"मुझे तो ऐसी ही दासी चाहिए, जो मेरे पुत्र में शौर्य की शिखाएं प्रज्वलित कर सके।"

मुंहमांगा मूल्य देकर महागोविंद ने सरमा का क्रय कर लिया और भृत्य से कहा :

"इसे सम्मानपूर्वक प्रासाद में ले जा। पुनः अभद्रता करने का प्रयत्न मत करना। मैं थोड़ी देर में पहुचता हूं।"

सरमा महागोविंद जैसे भद्र पुरुष की दासी बन कर आश्वस्त हुई। महागोविंद का पुत्र पुण्यवर्द्धन शीघ्र ही सरमा से घुल-मिल गया। सरमा को एक सहारा मिल गया। वह उत्साहपूर्वक पुण्यवर्द्धन के लालन-पालन में लगी रहने लगी। किंतु, दो चिंताएं शूल बन कर उसके हृदय में चुभ गयी थीं, जिसके चलते वह शांति का अनुभव नहीं कर पाती थी। जीवक के दर्शन कर पाने की लालसा उसे व्यग्र किये रहती और भृत्य की कुदृष्टि से वह भयभीत हो उठती। प्रमुख भृत्य महागोविंद का प्रिय पात्र था।

गृहपति के बाद घर में उसी की चलती थी। सरमा को देखते ही वह उस पर आसक्त हो गया था। किंतु, जब वह सरमा को स्पर्श करने से भी वंचित रह गया, तब उसकी पाशविक वृत्ति प्रचंड रूप ग्रहण कर जागृत हो उठी। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, त्यों-त्यों भृत्य की तृष्णा बलवती होती गयी। सरमा को देखते ही उसकी आंखें तरल होकर चमकने लगती। सरमा इस परिस्थिति से अनभिज्ञ नहीं थी।

एक रात महागोविन्द को राजगृह से लौटने में विलम्ब हो गया। सभी परिचारक प्रथम कक्ष्या में कार्यरत थे। सरमा द्वितीय कक्ष्या पर रहती थी। पुण्यवर्द्धन को सुलाते-सुलाते सरमा भी सो गयी। प्रमुख भृत्य घात में लगा हुआ था। ऐसा स्वर्ण अवसर देखकर वह कामोत्तेजना से उन्मत्त हो गया। क्षण-भर वह नीद में अचेतन सरमा के अप्रतिम सौंदर्य की चकाचौध में खोया रहा। फिर उसने बुभुक्षित व्याघ्र की भांति सरमा को दबोच लिया। सरमा चौक कर जग पड़ी। भय एव घृणा से वह उबल उठी। तत्क्षण उसमें प्रत्युत्पन्नमति प्रकट हुई। उसने अपने दांतों से भृत्य का नासिकाग्र काट फेका। भृत्य वेदना से अर्द्ध-मूर्च्छित सा हो गया। सरमा ने तभी उसके पजे से निकल कर हेति के प्रहार से उसे समाप्त कर दिया।

भृत्य को मरा हुआ देख कर सरमा अत्यधिक भयभीत हो उठी। वह दासी थी। उसे मालूम था कि इस प्रकार के अपराध का दंड क्या होता है। उसने ऐसी स्थिति की कल्पना भी नही की थी। क्षण-भर पूर्व जो भृत्य कामोत्तेजना से उन्मादग्रस्त होकर असहाय सरमा पर बुभुक्षित व्याघ्र-सा टूट पड़ा था, उसी भृत्य की निष्प्राण देह भूमि पर पड़ी थी। सरमा पसीने-पसीने हो गयी। पुण्यवर्द्धन गहरी नीद में सोया हुआ कोई सुखद स्वप्न देख रहा था। वह कभी-कभी मुस्करा उठता या हसने लगता था। सरमा को शिशु की मुस्कराहट में ईश्वर के संकेत का आभास मिला।···उसने वहां से भाग जाने का निश्चय कर लिया, किंतु, भृत्य-कांड ने उसे सजग कर दिया था। वह समाज को भय की दृष्टि से देखने लगी थी। उसे कोई सहारा नही दीख रहा था। उसका अप्रतिम रूप एवं यौवन उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो चुके थे। शिशु की मुस्कान रह-रह कर प्रस्फुटित हो उठती। सरमा को लगा, मानो पुण्यवर्द्धन कह रहा हो: 'मुझे साथ ले

लो। फिर तुम मां बन कर हिंस्र जीव-जंतुओं के बीच भी निरापद रह सकोगी।"

सरमा ने एक क्षण का भी विलंब नहीं किया। पुण्यवर्द्धन को गोद में उठा कर वह वहां से भाग चली। प्रथम कक्ष्या में कार्यरत परिचारकों को आभास तक नहीं मिला और सरमा प्रासाद से बाहर निकल गयी।

ध्वस्त गिरिव्रज के प्राचीर कई स्थानों पर धराशायी हो गये थे। अतएव, रात्रिकाल में भी नगर से बाहर निकलने में सरमा को कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। नगर के बाहर बीहड़ वन तथा पहाड़ी क्षेत्र पड़ता था। चारों ओर भीषण सन्नाटा छाया हुआ था। अंधकार की गहनता में हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। कभी-कभी दूर-पास के पेड़ हरहरा उठते थे। झाड़ी-झुरमुटों में गति का संचार होने लगता था। सरमा सहम कर पुण्यवर्द्धन को वक्ष से जकड़ लेती थी और फिर चल पड़ती थी।

रात्रि व्यतीत होती रही और सरमा अविराम चलती रही। महागोविन्द का प्रासाद छोड़ते समय उसमें अपार शक्ति आ गयी थी। किंतु, मन का उत्साह तन की सीमित सामर्थ्य का साथ न दे सका। सरमा के पांव लड़खड़ाने लगे। फिर भी वह बलपूर्वक चलती ही रही।

सूर्योदय के साथ ही उसे खुले खेतों के दर्शन हुए। सामने छोटा-सा ग्राम दृष्टिगोचर हुआ। अनुभव ने सरमा को ग्राम की ओर बढ़ने की प्रेरणा नहीं दी। ग्राम के पास पहुंच कर उसने अपनी गति और बढ़ा दी। ग्राम की गोचर भूमि तक पहुंचते-पहुंचते उसकी सामर्थ्य शेष हो गयी और वह एक पेड़ के नीचे अर्द्धमूर्च्छित हो गिर पड़ी।

चेतना लौटने पर सरमा ने देखा कि एक किशोर पुण्यवर्द्धन को गोद में लिये दूध पिला रहा है। पुण्यवर्द्धन अपनी दाहिनी भुजा किशोर की ग्रीवा में डाले था और बायें हाथ की उंगलियों से कभी किशोर की नाक पकड़ लेता था, तो कभी उसके बाल खींच लेता था, फिर अपनी कर्मठता पर ठहाका मार कर हंसने लगता था। सरमा को जाग्रत अवस्था में देख कर किशोर ने कहा :

"आपके लिए भी दूध रख दिया है।"

सरमा तन्मय होकर उस दरिद्र किशोर का निश्छल आतिथ्य देखती

रही। किशोर ने हंस-हंस कर बहुत सारा दूध सरमा को पिला दिया। सरमा की विलुप्त शक्ति पुनः लौट आयी। वह वहां से तत्क्षण ही चल पड़ी। इस प्रकार कई दिन-रात व्यतीत हो गये। सरमा चलत ही रही। उसके वस्त्र धूलि-धूसरित होकर कई जगहों पर फट गये, उसकी त्वचा की स्निग्धता झुलस गयी और उसके मुखमंडल का आकर्षण धूप-पानी के प्रभाव से प्रच्छन्न हो गया। समय पर भोजन न मिलने से पुण्यवर्द्धन की मुस्करा-हट भी विलीन हो गयी। अब वह रह-रह कर रोने-चिल्लाने लगता था। सरमा की यात्रा का अंत अनंत असीमता में खोता जा रहा था। उसकी शक्ति, उत्साह एवं आशा समाप्त हो चली थी। अब वह दो पग भी चलती तो आंखों के आगे अंधेरा छा जाता, पांव लड़खड़ाने लगते और वह वहीं भूमि पर बैठ जाती। पुण्यवर्द्धन रोने लगता तो उसे पुचकारती हुई वह स्वयं फूट-फूट कर रोने लगती। अंततोगत्वा वह असहाय एवं असमर्थ होकर छिन्न लता-सी गिर पड़ी। पुण्यवर्द्धन गला फाड़-फाड़ कर रोने लगा।

अपराह्न का चौथा मुहूर्त बीत रहा था। एक अश्वारोही तीर की गति से भागा चला जा रहा था पुण्यवर्द्धन का आर्त्तनाद सुनकर चौंक उठा। उसने अचानक ही अश्व को रोक लिया, जिससे अश्व अपने पिछले पांवों के बल खड़ा हो गया। शिशु के रुदन का स्वर पीछे छूट गया था। अश्वारोही ने उसी ओर अश्व को मोड़ लिया। पथ के किनारे कुछ झाड़ियां उगी थीं।

उन्हीं झाड़ियों के बीच से शिशु के रुदन का स्वर चारों ओर फैल रहा था। अश्वारोही वहां पहुंचकर द्रवित हो उठा। तीन वर्ष का एक कोमल शिशु अपनी मृत मां के पास बैठा रो रहा था। कुछ दूर पर तीन-चार शृगाल घात लगाये बैठे थे। शृगालों को दूर बैठे देखकर अश्वारोही को यह समझते देर नहीं लगी कि स्त्री में अभी प्राण शेष हैं। वह अश्व से नीचे कूद पड़ा और दौड़ कर उस स्त्री के पास जा पहुंचा। ज्यों ही अश्वारोही की दृष्टि स्त्री के मुखमंडल पर पड़ी, वह क्षण-भर के लिए काष्ठवत् रह गया।

अचानक उसके मुंह से चीत्कार की-सी ध्वनि निकल पड़ी···

"सरमा ! मेरी बहन !"

सरमा अचेतन अवस्था में ही पड़ी रही। अश्वारोही अन्य कोई नहीं, पुष्पपाल ही था। वह दौड़कर अश्व पर से जल से भरी हुई दृति[1] तथा कापिशायनी ले आया। कुछ काल की परिचर्या के पश्चात् सरमा ने आंखें खोल दी। उसके होठों से अस्फुट ध्वनि निकल पड़ी···

"भ्राता !"

"हां बहन ! मैं ही हूं, तुम्हारा अभागा अग्रज।"

पुष्पपाल अपनी बहन और शिशु पुण्यवर्द्धन को गोद में उठा कर पास के आम्र-वन में ले गया। सरमा चल सकने में असमर्थ थी। शृगालों ने उसके पांव का मांस नोच लिया था। पांच-छह दिन व्यतीत हो जाने पर भी सरमा के घाव नहीं भरे। प्रत्युत वह दिन-प्रतिदिन दुर्बल ही होती गयी। अत में हार-थक कर पुष्पपाल उन दोनों के साथ वैशाली की ओर चल पड़ा।

बाह्यास्थानमंडप में तिल रखने का भी स्थान नहीं था। चारों ओर पराक्रमी योद्धा खड्गहस्त हो खड़े थे। ग्रामणी, राज्याध्यक्षगण, राजकर्त्री एवं अमात्यगण मंचातिमंच विराजमान थे। लोगों के उत्क्रोश से वातावरण गूंज रहा था। महामात्य वर्षकार के पधारते ही उत्क्रोश का स्वर विचित्र ध्वनि के साथ दब गया, जैसे आग की चिनगारियों पर जल की बौछार पड़ने से ध्वनि होती है। कुछ ही काल पश्चात् सम्राट् बिम्बिसार भी

१. चमड़े की मशक

पधार गये। उन्होंने आसन ग्रहण करते ही महामात्य की ओर देखा और खिन्न स्वर में सभा आरंभ करने का आदेश दिया :

"बंदी पुष्पपाल को प्रस्तुत किया जाय।"

महाराज का आदेश पाकर महामात्य गरिमापूर्वक उठे और बोले :

"मुझे खेद है कि मगध के दुर्भाग्य का निर्णय करने हेतु ग्रामणीगण दूर-दूर से यहां एकत्र हुए हैं।"—महामात्य की बात सुनकर सभी चौंक उठे। ग्रामणियों को तो सदा ही दूर-दूर से आना पड़ता था। फिर इसमें खेद प्रकट करने की क्या आवश्यकता थी। सब लोग चकित होकर महामात्य की ओर देख रहे थे। महामात्य बोलते रहे : "मगध के महामात्य के विस्तार के साथ ही उसके दुर्भाग्य का सूर्य भी उद्भासित हो उठा है। एक ओर हमने अंग जैसे भयावह शत्रु को पराजित कर दिया तो दूसरी ओर गृह-कलह का झंझावात उठ खड़ा हुआ। यह सचमुच ही भयावह स्थिति है। गृह-कलह से देश की आत्मा मर जाती है। फिर उस देश के हाथ-पांव कितने भी पुष्ट क्यों न हों, कोई लाभ नहीं होता; प्रत्युत वह देश शीघ्र ही अपना अस्तित्व गंवा बैठता है। पुष्पपाल ने ठीक सकट के समय देश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और यदि वह सफल हुआ होता तो आज यहां सम्राट् बिम्बिसार के स्थान पर आप वज्जिगण-संघ के अध्यक्ष राजा चेटक को विराजमान पाते।" इतना कहकर महामात्य ने हल्ल और बेहल्ल की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। हल्ल और बेहल्ल मन-ही-मन विचलित हो उठे, किंतु ऊपर से आश्वस्त बने रहे। महामात्य बोलते रहे : "आप सोचते होंगे कि विपत्ति टल गयी है। परंतु बात सर्वथा इसके विपरीत है। अभी इससे भी भयावह स्थिति का मगध को सामना करना है। अब मैं सम्राट् से तथा आप महानुभावों से अनुरोध करता हूं कि पुष्पपाल के अपराध की परीक्षा करें और उसे समुचित दंड देने की व्यवस्था दें, जिससे कि भविष्य में कोई कुमार देश के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस न करे।"

"बंदी को उपस्थित किया जाय।"—सम्राट् ने फिर आदेश दिया। महामात्य का संकेत पाकर धनंजय दौड़ता हुआ बाहर गया और जिस व्यक्ति के साथ वापिस लौटा, उसे देख पूरी सभा सन्न रह गयी। सब के मुंह से एकसाथ चीत्कार की-सी ध्वनि निकल पड़ी :

"नगर-वधू !"

"सालवती ?"—सम्राट् भी चौंककर बोल उठे। मात्र महामात्य गंभीर बने रहे। वे पूर्वत् स्वर में बोले :

"हां श्रीमतो ! आप सालवती को ही बंदिनी के रूप में देख रहे हैं। पुष्पपाल कारागार से भाग निकला।"

"पुष्पपाल भाग निकला ?"

"कैसे ?"

"कब ?"—चारों ओर से प्रश्नों की झड़ी लग गयी।

"क्या नियत्रण की व्यवस्था नहीं की गयी थी ?"—महाराज बिम्बिसार ने कठोर स्वर में पूछा। महामात्य ने तुरंत उत्तर दिया :

"नियंत्रण की सुदृढ व्यवस्था थी। वहां हवा का प्रवेश पाना भी असंभव था।"

"पुष्पपाल के स्थान पर सालवती को किसके आदेश से बंदी बनाया गया ? यह तो नगर-वधू के पद का अपमान है।"—सम्राट् ने क्रुद्ध स्वर में कहा। महामात्य प्रस्तुत थे। बोले :

"सालवती ने स्वयं अपने को कारागार में डालकर पुष्पपाल को मुक्त कर दिया।"

"सालवती कारागार में गयी किस प्रकार ?"

"मेरे आदेश से। नगर-वधू की इस छोटी-सी इच्छा का दमन करना मैंने उचित नही समझा। सालवती कारागार में जाकर स्वयं वहां रह गयीं और पुष्पपाल इनके वस्त्र धारण कर बाहर निकल आया। अब आप लोग निर्णय करें कि उन्हें क्या दंड दिया जाय।"

"प्राण-दंड !"—कुछ लोगों ने ऊंचे स्वर में सुझाव दिया।

"अग-भंग !"—कुछ लोगों ने कहा।

"इसे आजन्म कारागार में डाले रक्खा जाय।"—ग्रामणियों ने प्रस्ताव किया।

सम्राट् को मौन देखकर महामात्य ने कहा :

"मेरा एक सुझाव है।"

"हां, हां, कहिए।"—कई स्वर गूंज उठे।"

"हां महामात्य, कहिए। आपका क्या विचार है?"—सम्राट् ने विनम्र स्वर मे आग्रह किया। लगता था, जैसे सम्राट् महामात्य से प्राण-भिक्षा मांग रहे हो। महामात्य ने गंभीर स्वर में घोषणा की :

"दंड इसलिए और इस प्रकार दिया जाता है कि अपराधी समाज के महत्व का अनुभव कर सके और वह पुनः समाज या देश के लिए घातक न बन सके। समाज के लिए जो घातक था, वह भाग निकला। सालवती ने वात्सल्य के मोह में पडकर समाज की उपेक्षा की। अब प्रश्न यह उठता है कि सालवती ने कैसा अपराध किया और उसे किस प्रकार का दंड दिया जाय।"

"हा, हां, सुझाव दीजिए।"—लोगों ने उतावलेपन से कहा।

महामात्य क्षण-भर मौन रहे। फिर बोले :

"सालवती ने जिस समय यह कार्य किया, उस समय इसके मन में देश के प्रति विद्रोह की भावना कदापि नही थी। यह मात्र मां थी और कोई भी मां सामान्य स्थिति में वही करती जो सालवती ने किया। इस सत्य के अतिरिक्त आप लोगों को यह तथ्य भी ध्यान में रखना है कि बीस वर्ष के वियोग के पश्चात् इसे पुत्र-दर्शन का सुख प्राप्त हुआ था। फिर भी साल-वती का यह कार्य समाज की दृष्टि में अपराध ही माना जायेगा। अतएव, इसे दंड मिलना ही चाहिए। किंतु किस प्रकार का दंड दिया जाय?··· मेरे विचार में सालवती का जीवन समाज की इच्छाओं एवं उमंगों का प्रतिबिम्ब मात्र है। जिस दिन समाज इससे विलग हो जायेगा, उसी दिन सालवती निष्प्राण हो जायेगी। अतएव, मेरे विचार में, सालवती को नगर-वधू के पद से मुक्त कर दिया जाय।"

"महामात्य का प्रस्ताव हमें मान्य है।"—सबने एक स्वर में घोषणा की। सम्राट् को भी वर्षकार का प्रस्ताव समुचित प्रतीत हुआ। उन्होंने गंभीर स्वर में घोषणा की :

"सालवती को आज से नगर-वधू के पद से च्युत किया जाता है। पुष्पपाल को जीवित या मृत बंदी बनानेवाले को दस सहस्र कार्पापण का पुरस्कार प्रदान किया जायेगा।"

सम्राट् की घोषणा होते ही सालवती मुक्त कर दी गयी। उस समय

उसकी दशा विचित्र हो गयी थी। वह निष्प्राण एवं यंत्रवत् हो गयी थी। उसके अखंड यौवन एवं अप्रतिम सौंदर्य की रश्मियां बुझ गयी थीं। म्लान मुखमंडल पर मृत्यु की छाया तैर रही थी। वह डगमगाती हुई बाह्या-स्थानमंडप से बाहर निकल गयी। उसकी दयनीय दशा देखकर कुछ लोग तो रो पड़े। जिसके लिए संपूर्ण गिरिव्रज नगर व्याकुल रहा करता था, जिसके स्पर्श की कल्पना में सहस्रों की सहस्र रात्रियां कट जाती थीं, जिसके सौंदर्य की एक झलक के लिए बड़े से बड़े नायक अपने प्राण उत्सर्ग करने को तत्पर रहते थे, जिसके संगीत की ध्वनि सुनकर उन्मत्त गजराज जैसे सेनापति भी अकर्मण्य हो, उसकी मुखशाला में पड़े रहते थे, और जिसका मादक स्पर्श परम पराक्रमी सम्राट् बिम्बिसार को भी भिक्षुओं की श्रेणी में ला खड़ा करता था, आज वही सौंदर्य निरावरण होकर, जन-दृष्टि से दूर होता चला जा रहा था। किसी ने नहीं कहा कि 'सालवती किंचित् रुक जाओ'।"

सालवती चली गयी। सभा में सन्नाटा छाया रहा। सब मौन थे। तभी महामात्य ने गंभीर स्वर में घोषणा की :

"कुछ दिन हुए, रात्रिकाल में गिरिव्रज के धवलगृह में जो भयानक दुर्घटना घटित हुई थी, उसकी सूचना आप सबको मिल चुकी है। निश्चय ही, इसमें राजपुरुषों का हाथ है।"

महामात्य की घोषणा सुनकर सब लोग चौंक पड़े। महामात्य ने हल्ल और बेहल्ल को पुनः तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। वे दोनों सहोदर भाई घबरा कर एक-दूसरे का मुख देखने लगे। बाह्यास्थानमंडप में उत्क्रोश होने लगा। तभी महामात्य ने कहा :

"आप में से बहुतों को यह मालूम नहीं होगा कि षड्यंत्रकारियों का उद्देश्य धवलगृह में प्रवेश कर सम्राट् की हत्या करना था। हमारे सौभाग्य से सम्राट् तो सकुशल रह गये, किंतु धवलगृह के पराक्रमी दौवारिक खेत रहे।"

"हैं यं यं…।" की ध्वनि बाह्यास्थानमंडप में दौड़ गयी। महामात्य ने कहा :

"अभी तक षड्यंत्रकारियों का पता नहीं चल सका है। मुझे विश्वास

है कि मैं शीघ्र ही आप लोगों को बता सकूंगा कि वे नये ग्रह किधर से उदित हुए हैं। मेरा अनुमान है कि ये ग्रह भी वैशाली के ही कृपापात्र हैं। किंतु इसमें चिंता का कोई कारण मुझे नहीं दीखता। हां, पाटलिग्राम में दुर्ग बनाने का मेरा विचार इस घटना से और प्रबल हो उठा है। राजगृह नगर का निर्माण तो प्रायः पूरा हो चुका। अब हमें पाटलिग्राम के दुर्ग की ओर ध्यान देना है। मैं महाराज से अनुरोध करूंगा कि वे देश की विषम स्थिति को देखते हुए अपनी दानवीरता पर नियंत्रण रक्खें।"

"महामात्य का आशय स्पष्ट नहीं हुआ।"—सम्राट् बिम्बिसार क्रुद्ध स्वर में बोले। महामात्य ने विनम्रतापूर्वक कहा :

"मेरा आशय स्पष्ट है, महाराज ! वज्जि गण-संघ मगध के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। मगध के राजपुरुष अपने स्वार्थवश उसकी सहायता कर रहे हैं। दुरभिसंधियों का दुष्परिणाम प्रजा को या राजसेवकों को भुगतना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में यदि आपका सहयोग मगध को नहीं मिला तो मगध धूल में मिल जायेगा।"

"यह आप कहते क्या हैं, महामात्य ! मगध की चिंता मुझसे अधिक और किसे हो सकती है ? मेरा जीवन मगध के लिए है।"

"मैं आपके कथन को अस्वीकार नहीं करता। मैं तो आपको अपने दायित्वों का स्मरण दिला रहा था। क्योंकि···"

"क्योंकि ?"—सम्राट् ने भृकुटी टेढ़ी करते हुए प्रश्न किया।

"क्योंकि मुझे लगा कि आपको अपने दायित्वों का स्मरण नहीं है।"

आपका यह आरोप निराधार है महामात्य ! मेरे विचार में आप अनावश्यक रूप से उत्साहित हो उठे हैं।"

"प्रमाण के अभाव में वर्षकार कुछ नहीं बोलता।"

"तो प्रमाण दीजिए।"

अभी उसका समय नहीं आया है।"

"तो मुझे लाचार होकर आप पर मिथ्याचरण का आरोप लगाना पड़ेगा।" सम्राट् ने दृढ़ स्वर में कहा।

सभा में खलबली मच गयी। वर्षकार ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया :

"मुझ पर आरोप लगाने के लिए कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है। आप तो

सम्राट् हैं। किंतु, एक अपराधी व्यक्ति महामात्य के पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। अतएव, मैं अपने पद का त्याग करता हूं।"

"नहीं आप ऐसा नहीं कर सकते !"—कई व्यक्ति एकसाथ बोल उठे।

"सम्राट् अपना आरोप वापिस लें।"—बहुत-से लोगों का स्वर सुनायी पड़ा।

"सम्राट् की क्या आज्ञा है ?"—वर्षकार ने पूर्ववत् स्वर में प्रश्न किया। सम्राट् हतप्रभ-से हो गये थे। वे बुझे हुए स्वर में बोले :

"जब तक हम दोनों के आरोप-प्रत्यारोप सिद्ध नहीं हो जाते, तब तक आप महामात्य के रूप में कार्य करते रहेंगे।" इतना कहकर सम्राट् एक पल के लिए भी वहां नहीं रुके। उनके जाते ही सभा भंग हो गयी।

महामात्य वर्षकार अपने मंत्रणा-गृह में सेनाध्यक्ष सुनीथ, सेनापति धनंजय तथा नन्दिसेन के साथ बैठे थे। मंत्रणा चल रही थी। बाहर सूर्यास्त हो चुका था। महामात्य निर्णय पर पहुंचने के स्वर में बोले :

"सेनाध्यक्ष सुनीथ !"

"आज्ञा, आचार्य !"

"अब निश्चयात्मक स्थिति आ पहुंची है। तुम्हारा क्या विचार है ?"

"आपका विचार ही मेरा आदर्श है, आचार्य ! वैसे तो मैं बहुत दिनों

से यही बात कहता आ रहा हूं।"

"तो तुम आज ही चम्पा के लिए प्रस्थान कर दो। वहां अजातशत्रु की अनुपस्थिति में तुम्हें ही मंडलेश्वर का कार्य-भार संभालना है। अजातशत्रु अपने सिंहपाद सैनिकों के साथ शीघ्रातिशीघ्र यहां आ पहुंचे।"

"आपकी जैसी आज्ञा !"

"वहां कापटिक भिक्षु देवदत्त भी चारिका का ढोंग रच रहा होगा। प्रयत्न करना कि वह भी अजातशत्रु के साथ यहीं आ जाय। अब मैं उसे अपनी दृष्टि के नीचे रखना चाहता हूं।"

"वह निश्चय ही राजा अजातशत्रु के साथ यहां आ जायेगा।"—सुनीथ ने विश्वासपूर्वक कहा। तभी प्रहरी ने आकर सूचना दी :

"महामात्य की जय हो। मुखशाला में देवी अनुला का दूत प्रतीक्षा कर रहा है। वह शीघ्रातिशीघ्र आपके दर्शन करना चाहता है।"

"महामात्य किसी अमंगल घटना के घटित होने की आशंका से हिल उठे। बोले :

"सुनीथ, तुम अपनी यात्रा पर जाओ। धनंजय तुम्हारे स्थान पर यहां का कार्य-भार संभाल लेगा। नन्दिसेन मेरे साथ रहेगा। आओ नन्दिसेन !"

मुखशाला में पहुंचते ही महामात्य ने देखा, दूत बहुत घबराया हुआ था।

"क्या बात है ?"

"अ···अनर्थ···हो···हो गया, प्रभो ! देवी ने विष निगल लिया।"

"किसने ? सालवती ने ?"

"हां प्रभो ! वे निष्प्राण हो पर्यंक पर पड़ी हैं।"

"जीवक को संवाद भेजा है ?"

"उनका कहीं पता नहीं है। वैसे कई वैद्य चिकित्सा में व्यस्त हैं। किंतु, किसी को आशा नहीं है।"

"मैं जानता था कि यह घटना घटेगी।···नन्दिसेन !"

"आज्ञा, आर्य ब्राह्मण !"

"गृध्रकूट पर्वत पर भगवान बुद्ध चारिका करते हैं। जीवक निश्चय ही वहीं गये होंगे। उन्हें लेकर सीधे सालवती के प्रासाद में पहुंचो। शीघ्रता

करो।" नन्दिसेन आदेश सुनते ही वहां से दौड़ पड़ा। वर्षकार भी उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर सालवती के प्रासाद की ओर चल पड़े।

सालवती अंतिम सांस गिन रही थी। दो-तीन वैद्य निराश भाव से चिकित्सा में लगे हुए थे। अनुला सिसक-सिसक कर रोती जा रही थी और अपनी मां की परिचर्या करती जा रही थी। प्रकोष्ठ में कई दीप जल रहे थे। वहां करुण शांति का साम्राज्य स्थापित था।

"यह तुमने क्या कर लिया सालवती ?"—वर्षकार ने उसके निकट पहुंच कर धीरे से पूछा। सालवती ने अपनी आंखें खोल दीं। वह महामात्य को पहचानती हुई-सी बोली :

"क···क···कौन ? महामात्य···व···व···वर्षकार ?"

"हां सालवती !"

"व्यर्थ···जी···जीवन से मृत्यु अच्छी।"

"जीवन की सार्थकता एक ही कार्य से सिद्ध नहीं होती, देवी ! तुमने यह अच्छा नहीं किया।"

"ठी···ठीक ही किया। सब···सब कुछ शेष हो गया। पुत्र का मुंह भी···नहीं···देख···सकूंगी तो···तो जीकर क्या करूंगी ?···जीवन··· भ···भर जिनकी बनी रही···वे ही अपने नहीं हुए।"

"जो तुम्हारे थे, वे अब भी तुम्हारे हैं।"

"भंते ! मैं···मैं बच्ची नहीं हूं। मैंने संसार···देखा है। कौन··· कौन है मेरा ? बीस···वर्ष···तक मेरा पुत्र मुझसे अलग···रक्खा गया। क्यों ?···किसके लिए···? मुझे···क्या···मिला ?···कौन है···मेरा··· कौन ?"

"क्या हुआ है महामात्य ?"—जीवक ने भीतर प्रवेश करते ही प्रश्न किया और सालवती की दशा देखते ही चौंककर कहा : "आपने विष-पान कर लिया ?"

"हां कौमार···भृत्य जीवक ! मेरी···मृत्यु···वहां···खड़ी है। अब ···अब आपकी ओषधि की मुझे आवश्यकता नहीं है।"

"इन्हें जीवित रखना है, कौमारभृत्य जीवक !"—वर्षकार ने आतुर स्वर में कहा। जीवक सालवती की परीक्षा करने लगा। उसके भाल पर

चिंता की रेखाएं खिच आयीं। तब तक वर्षकार ने अन्य वैद्यों एवं परिचारिकाओं को वहां से संकेत से हटा दिया था। सालवती करुण नेत्रों से जीवक की ओर देखती हुई बोली :

"मुझे जीवित···नहीं···रहना है।"

"तुम्हें जीवित रहना है, सालवती !"—महामात्य ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा।

"किस···किसके लिए ?"

"अपने पुत्र तथा पुत्री के लिए, समाज के लिए। जीवन ईश्वर का दिया हुआ है। इसे अपने हाथों से नष्ट करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।"

"हुंह्···पुत्र-पुत्री···के लिए !"

जीवक के मुखमंडल पर अचानक आशा खिल उठी। उसने ओषधि का प्रयोग किया। कुछ काल पश्चात् ही सालवती को उल्टी हुई। जीवक ने पुन: ओषधि का प्रयोग किया और वर्षकार से कहा :

"अब विष इनको कोई हानि नहीं पहुंचा सकेगा।"

जीवक का कथन सत्य सिद्ध हुआ। कुछ काल पश्चात् ही सालवती पर से विष का प्रभाव दूर हो गया। मात्र दुर्बलता शेष रही। किंतु, उसकी आंखों से अविरल अश्रुधार प्रवाहित होती रही। उसे जीवन से भय लगने लगा था। उसने क्षीण स्वर में कहा :

"आपने मुझे बहुत भयानक दंड दिया, महामात्य ! फिर भी मैं आप को श्रद्धेय मानती हूं।"

"सालवती ! मुझे देखो, मेरा अपना कोई नहीं है। फिर भी मैं जीवित हूं। संपूर्ण मगध, बल्कि संपूर्ण आर्यावर्त मेरा है। मेरे प्रत्येक कार्य का उद्देश्य मगध का उत्कर्ष होता है। किंतु, तुम्हारे तो सभी अपने हैं।"

"हां, पुत्री अनुला बच रही है। मैं इसे पुत्र पाने के क्षणिक आनंद में भूल गयी थी। पुत्र भी ऐसा निकला कि···"

"तुम्हारा पुत्र मगध का गौरव है, सालवती !"

"जी !"—सालवती चौंक उठी। अनुला क्रुद्ध दृष्टि से महामात्य को

देखने लगी। जीवक आश्चर्य से भर उठा। महामात्य ने कहा :

"सत्य ही कहता हूं, सालवती! पुष्पपाल तुम्हारा पुत्र नहीं है। जीवक उसे जानते हैं। क्यों ?"

"हां श्रीमन्।"—जीवक ने तत्क्षण उत्तर दिया।

"फिर आपने मेरा उपहास क्यों किया ?"—सालवती ने क्रुद्ध स्वर में प्रश्न किया। महामात्य ने शांत स्वर में उत्तर दिया :

"मुझे छोटे से मगध को विस्तार देकर संपूर्ण भारत को एक करना है। किंतु, हमारे सम्राट् जितने पराक्रमी हैं, उससे कहीं अधिक भावुक एवं मोहांध। उनके चलते मेरा कार्य कठिन हो गया है। उनकी दुर्बलता ने मगध के आर्यपट्ट के बहुत-से उत्तराधिकारी उत्पन्न कर दिये हैं। निदान मगध गृह-कलह के द्वार पर पहुंच चुका है। मैं आशंकित था कि तुम्हारा पुत्र भी सम्राट् का एक उत्तराधिकारी बन जायेगा। और वही हुआ भी। किंतु, सौभाग्य से तुम्हारा वास्तविक पुत्र इस मंथन में अमृत बनकर निकल पड़ा।"

"किंतु, मेरा पुत्र है कहां ?"

"तुम्हारे पास ही बैठे हुए हैं।"

"क् क् क्·· कौन ? कौमारभृत्य···।" अनुला चीख उठी।

"जीवक ?"—सालवती को विश्वास नहीं हुआ।

"मैं ?"—जीवक आश्चर्य एवं वेदना से कभी वर्षकार की ओर तो कभी सालवती की ओर देखने लगा। वर्षकार ने कहा :

"हां सालवती! जीवक ही तुम्हारे पुत्र हैं। उसके साक्षी हैं अभय कुमार और वह दासी, जो इन्हें कूड़े के ढेर पर फेंक आयी थी और बाद में मेरे आदेश से अभय कुमार के यहां जाकर जीवक का लालन-पालन करने लगी थी।"

सालवती में न जाने कहां से अपार शक्ति आ गयी। उसने जीवक को खींच कर हृदय से लगा लिया। जीवक आत्म-विभोर होकर मां के हृदय से लगा रहा। बोला कुछ नहीं। अनुला विस्फारित आंखों से वह दृश्य देखती रही।

"आप कहीं फिर तो मेरा उपहास नहीं कर रहे हैं ?"—सालवती ने

बच्चों की भांति रोते हुए पूछा। महामात्य ने स्नेहपूर्वक कहा—

"नहीं सालवती ! जीवक का उपहास करना सरल नहीं है। वर्षकार महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी ऐसा अधम कार्य नहीं कर सकता।"

"महामात्य ! सालवती ने ईश्वर के अतिरिक्त आज तक किसी पुरुष की पूजा नहीं की। किंतु, आज से आप मेरे पूज्य हुए। आपने मुझे जीवन ही नहीं, प्रतिष्ठा भी दी। आज मैं धन्य हो गयी।"

"अच्छा सालवती ! मुझे आज्ञा दो। मुझे बहुत-से कार्य संपादित करने हैं।"

वर्षकार वहां से चल पड़े। सालवती के हर्ष एवं उल्लास की सीमा नहीं रही। क्षण-भर पूर्व जो मृत्यु से जूझ रही थी, अब वह जीवन से परिपूर्ण होकर अपने प्रासाद में नाचने-फिरने लगी। परिचारक एवं परिचारिकाओं के आनंद की भी सीमा नहीं रही। सब दौड़-दौड़ कर घर का काम-काज करने लगे।

अनुला यंत्रवत् मूक बनी रही। चलने लगती, तो चलती ही रहती। बैठ जाती, तो बैठी ही रहती। उसके होठों पर विचित्र मुस्कराहट स्थिर हो गयी।

उस मुस्कराहट में संपन्नता, रहस्य-ज्ञान और असह्य वेदना की पराकाष्ठा प्रतिबिम्बित हो रही थी।

अपररात्र तक सालवती जीवक को अपने पास बिठाये रही। जीवक भी मंत्रमुग्ध-सा बैठा रहा और अपने गत जीवन की कहानी सुनाता रहा। सालवती विभोर होकर सुनती रही। जीवक सचमुच ही शिशु बन गया था था।

ब्राह्म मुहूर्त के पूर्व ही सालवती उठ गयी। घर के सब लोग उठ कर अपने-अपने काम में लग गये। कहीं जीवक न जग जाय, इस विचार से त्रस्त होकर सालवती स्वयं परिचारकों एवं परिचारिकाओं को घूम-घूम कर धीमे स्वर में आदेश देने लगी।

अनुला सूर्योदय के पूर्व ही उठ जाया करती थी, किंतु उस दिन सूर्योदय होने के बाद भी वह अपने प्रकोष्ठ से नहीं निकली। अनुला की इस-

नवीनता ने सबको आश्चर्य में डाल दिया। लोगों ने सोचा, 'गत रात अधिक देर तक जागती रही हैं।' जब पूर्वाह्न के पांच मुहूर्त व्यतीत हो गये, तब सालवती ने चिंतित होकर परिचारिका को उसके प्रकोष्ठ में भेजा। परिचारिका भागती हुई आकर बोली :

"वे तो अपने प्रकोष्ठ में नहीं हैं।"

"अपने प्रकोष्ठ में नहीं हैं ? कहती क्या हो ?"

"सत्य ही कहती हूं, आर्ये !"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं मां।"—जीवक ने शांत स्वर में कहा : "विधाता की रहस्यमय लीला से मेरी बहन घबरा गयी। बेचारी समझौता नहीं कर सकी।"

"तो क्या…?"—सालवती इसके आगे नही बोल सकी। जीवक उसका आशय समझ कर बोला :

"नहीं, उसे शांति की आवश्यकता थी। वह जानती थी कि शांति के अवतार भगवान बुद्ध राजगृह पधारे हुए हैं। वह अभी गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान होगी।"

"हे भगवान ! एक क्षण के लिए भी तुमसे मेरा सुख नहीं देखा जा सकता।"—सालवती फूट-फूट कर रोने लगी। जीवक ने शांत एवं संयमित स्वर में कहा :

"तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए मां ! अनुला के स्थान पर कोई अन्य तरुणी होती तो न जाने क्या कर लेती। उसने जो मार्ग चुना, उससे उत्तम मार्ग जीवित रहते नहीं प्राप्त हो सकता था। अनुला मुझे प्यार करती थी। उसने न जाने कितनी कल्पनाएं एवं इच्छाएं संजो रक्खी थीं। वह सब कल रात अचानक धूल में मिल गयीं। फिर वह क्या करती ? जिसे अपने हृदय में पति के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया उसे अब भाई मान कर कैसे पूजती ?"

"तो क्या तुम्हें मालूम था कि वह गृह-त्याग करने जा रही है ?"

"हां मां ! वह मुझसे मिल कर गयी है। मेरा आशीर्वाद उसे प्राप्त है। वह ऐसे व्यक्ति की शरण में चली गयी है, जहां रक्त-संबंध का महत्व

समाप्त हो जाता है।"

सालवती विस्फारित आंखों से अपने पुत्र जीवक का महान् व्यक्तित्व देखती रह गयी। जीवक के मन का ज्वार मन मे ही पछाड़ खाता रहा।

महामात्य वर्षकार अपनी मुखशाला मे विराजमान थे। वही सेनापति धनंजय भी उपस्थित था। वातावरण गंभीर बना हुआ था। महामात्य ने सेनापति धनंजय को एक मुद्रिका दिखाते हुए कहा :

"यह मुद्रिका कौमारभृत्य जीवक की है। चम्पा जाते समय उन्होने अपनी प्रेयसी सरमा को यह मुद्रिका स्मृति-स्वरूप भेंट कर दी थी। और यह मुद्रिका प्राप्त हुई है वैशाली के दूत के पास से।"

"यह क्या सभव है ?"—धनंजय ने आश्चर्य से पूछा। महामात्य ने गंभीर स्वर मे उत्तर दिया—

"सयोग प्रबल है। जीवक की प्रेयसी सरमा पुष्पपाल की बहन है। और पुष्पपाल की कृपा से ही यह मुद्रिका मुझे प्राप्त हुई, साथ ही मगध का भाग्य फूटने से भी बच गया।"

"यह कैसे ?"—धनंजय ने जिज्ञासा प्रकट की। महामात्य ने पुष्पपाल के दुस्साहस का विवरण सुना दिया। धनंजय चकित होकर सुनता रहा। क्षणिक मौन को भंग करते हुए महामात्य ने कहा :

"धनंजय !"

"आज्ञा श्रीमान् !"

"तुम्हें मद्य-विक्रेता से मालूम करना होगा कि यह मुद्रिका उसके पास कहां से आयी।"

"अभी पता लगाकर आता हूं, आचार्य !"

"नहीं, ऐसे नहीं। शक्ति का प्रयोग करने से बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा। उसके सामने वैशाली का दूत बन जाना ही श्रेयस्कर होगा। मुद्रिका का सूत्र मिलने पर सरमा का पता लगा सकना सरल हो जायेगा।"

"जी हां।"

"एक और दायित्व सौंपता हूं। कई दिन हुए, महागोविन्द की दासी महागोविन्द के ढाई वर्ष के पुत्र को लेकर भाग गयी। उसने महागोविन्द के प्रमुख भृत्य की भी हत्या कर दी। आश्चर्य की बात है कि संपूर्ण मगध में गुप्तचरों का जाल बिछा होने पर भी वह लड़की अदृश्य बनी हुई है। इससे हमारी दुर्बलता ही सिद्ध होती है। मेरे विचार में, व्यवस्था में आमूल परिवर्तन अनिवार्य हो गया है।"

"धृष्टता क्षमा करें, तो एक निवेदन करूं ?"—सेनापति धनंजय ने कहा। महामात्य ने स्नेहपूर्ण आश्चर्य से भृकुटी टेढ़ी करते हुए कहा :

"हां, हां, बोलो।"

"परम भट्टारक परम माहेश्वर श्रेणिय बिम्बिसार मगध के सम्राट् हैं, आदेश उनके ज्येष्ठ पुत्र राजा दर्शक का चलता है और शासन-सूत्र के वास्तविक संचालक आप हैं।"

"तुम्हारा तात्पर्य ?"

"स्पष्ट है, आचार्य ! वास्तव में मगध के तीन शासक हैं। ऐसी स्थिति में व्यवस्था का अनुशासनहीन होना अस्वाभाविक नहीं है।"

"तुम ठीक कहते हो धनंजय ! इसीलिए मैंने कहा कि व्यवस्था में आमूल परिवर्तन अनिवार्य है। सम्राट् बिम्बिसार ने समिति से परामर्श लिये बिना ही कुमार दर्शक को गिरिव्रज का शासक बना दिया, पुष्पपाल को नगराध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया, वैशाली को प्रसन्न करने के लिए चेटक की पुत्री का चेलना से विवाह किया और उनसे उत्पन्न हल्ल और बेहल्ल जैसे अकर्मण्य राजकुमारों को अमात्यमंडल में सम्मिलित कर लिया।

इतना ही नहीं, अब सम्राट् कभी कुमार अभय को युवराज पद देना चाहते हैं, तो कभी हल्ल-बेहल्ल को मगध का आधा राज्य सौंप देने की इच्छा से विह्वल हो जाते हैं। यदि यही स्थिति बनी रहने दी गयी तो शीघ्र ही मगध कई टुकड़ों में बंटकर छिन्न-भिन्न हो जायेगा।"

"हल्ल और बेहल्ल तो वैशाली के गुप्तचर का कार्य संपादित कर रहे हैं।"

"निस्संदेह।"

"मेरे विचार में हल्ल तथा बेहल्ल द्वारा दिये गये पत्र के साथ वैशाली के दूत को समिति के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाय।"

"नहीं, ऐसा करने से अभी अराजकता फैल जायेगी।"

"किंतु कभी न कभी तो आपको यह अशोभन कार्य करना ही होगा।"

"कभी न कभी क्यों ? मात्र अजातशत्रु की प्रतीक्षा है। अब तुम जाओ और मुद्रिका से संबद्ध संपूर्ण विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न करो। महा-गोविन्द के पुत्र की मनोयोगपूर्वक खोज की जानी चाहिए। बेचारा गृह-विशेषज्ञ पुत्र-वियोग में विक्षिप्त हो रहा है। फिर भी उसने राजगृह के निर्माण में अपूर्व कार्य किया और अब वह पाटलिग्राम के दुर्ग के निर्माण में लगा हुआ है।"

"आप निश्चिंत रहें, महामात्य ! सहस्रों सैनिकों को इस कार्य पर नियुक्त कर देता हूं।"

"महामात्य की जय हो !"—तभी प्रतिहारी ने आकर महामात्य वर्षकार की अभिवंदना की।"

"क्या है ?"

"सम्राट् का सदेशवाहक आपके दर्शन करना चाहता है।"

"उसे आने दो।"

प्रतिहारी चला गया। सेनापति धनंजय भी प्रस्थान करने को हुआ कि महामात्य ने उसे हाथ के सकेत से रुकने का आदेश दिया। सम्राट् के संदेश-वाहक ने आकर निवेदन किया :

"महामात्य की जय हो ! सम्राट् ने आपको स्मरण किया है ?"

"क्या तुम उनके अभिप्राय का आभास दे सकते हो ?"

"विस्तार में मैं कुछ नहीं जानता । वैशाली से आज प्रातः ही एक दूत आया था । कदाचित् आपको उसी संदर्भ में स्मरण किया गया है ।"

"मैं समझ गया, संदेशवाहक ! तुम चलो । मैं अभी आता हूं ।"—संदेशवाहक के चले जाने पर महामात्य ने धनंजय से कहा : "निश्चय ही हमारे सम्राट् पुनः लिच्छवियों को प्रसन्न करने की इच्छा से विह्वल हो उठे हैं । आजकल वैशाली में महामारी फैली हुई है । यही अवसर था कि हम लिच्छवियों का अहंकार धूल में मिला कर वज्जि गण-संघ को मगध में मिला लेते । अजातशत्रु को मैंने इसी विचार से यहां बुला रक्खा है । किंतु, लगता है, सम्राट् ने मेरी समस्त योजना पर पानी फेर दिया है ।"

"हो सकता है, सम्राट् के बारे में आपका अनुमान निराधार...।"

"नहीं धनंजय ! मेरा अनुमान निराधार नहीं है । वैशाली की प्रत्येक परिस्थिति एवं गतिविधि से मैं पूर्णतया अवगत रहता हूं ।"

"अभी-अभी मैंने जो दायित्व तुम पर सौंपे हैं, उनके अतिरिक्त तुम्हें आज ही एक कार्य और करना है—वह भी अति गोपनीय ढंग से ।"

"आदेश दीजिए ।"

"राजगृह के उत्तर स्थित वन-प्रदेश में पचास सहस्र सैनिकों को छुपा दो । मेरा सकेत मिलते ही वे यहां आ धमकें ।"

"जो आज्ञा !"

"अब तुम जा सकते हो ।"

महामात्य का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ । वैशाली का दूत संधि-प्रस्ताव लेकर आया हुआ था । सम्राट् ने उस प्रस्ताव को तो स्वीकार कर ही लिया, सद्भाव के नाते महामारी-पीड़ित वैशाली-वासियों की चिकित्सा के लिए कौमारभृत्य जीवक को वहां जाने का आदेश भी दे दिया ।

महामात्य वर्षकार सीधे भुक्तास्थानमंडप में पहुंचे । महाराज बिम्बिसार रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे । उन्हें देखते ही महामात्य ने अभिवादन करके आदेश की याचना की । महाराज ने कहा—

"आपको तो मालूम ही होगा कि वैशाली महामारी के प्रचंड प्रकोप से पीड़ित है ।"

मगध के महामात्य के नाते मैं अपने ही साम्राज्य में फैले हुए अकाल

की सूचना से पीड़ित हूं, सम्राट् !"

"किंतु, दूरदर्शी महामात्य को पड़ोसी राष्ट्र की स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए।"

"आप निश्चित रहें, सम्राट् ! पड़ोसी राष्ट्र वज्जि गण-संघ की दशा का मुझे पूर्ण ज्ञान है और मैंने उससे लाभ उठाने की भी योजना बना रक्खी है।" महामात्य ने अर्थपूर्ण दृष्टि से सम्राट् की ओर देखते हुए कहा। सम्राट् चौंक उठे :

"कैसा लाभ ?"

"लिच्छवियों का विनाश।"

"महामात्य !"—सम्राट् ऊंचे स्वर में बोल उठे।

वर्षकार ने सयत स्वर में उत्तर दिया : "सम्राट्।"

"मैंने वैशाली का संधि-प्रस्ताव स्वोकार कर लिया है। हमें अपने वचन पर स्थिर रहना है।"

"तो क्या वैशाली से ऐसा कोई प्रस्ताव आया है ?"

"हां, वैशाली का एक दूत आज ही प्रातःकाल प्रस्ताव लेकर मेरे पास आया। उन लोगों ने भगवान बुद्ध को वैशाली आने का आमंत्रण दिया है, और भगवान बुद्ध ने मेरे आग्रह से उनका आमंत्रण स्वीकार कर लिया है। साथ में जीवक भी जायेंगे।"

"सब कार्य तो संपन्न ही हो गया, महाराज ! फिर मुझे दर्शन देने का कारण ?"

"समस्या तो अब उठ खड़ी हुई है। भगवान को गगा-तट तक पहुंचाने के लिए मैं स्वयं जाऊंगा। सातवें दिन प्रातःकाल तथागत चारिका पर निकलेंगे। अतएव, गृध्रकूट पर्वत से गंगा-तट तक पथ का पुनर्निर्माण कराया जाय, पथ के दोनों ओर वंदनवार सजाये जायं, मेरी यात्रा की व्यवस्था की जाय और राह में तीन स्थानों पर रात्रि-शिविर का प्रबंध किया जाय।"

"यह कार्य तो आपके आदेश से पण्याध्यक्ष ही कर सकते हैं। उन्हे पण्यपथ, नदी आदि का पूर्ण ज्ञान है।"

"परंतु मेरी इच्छा है कि इस कार्य को संपादित करवाने का दायित्व

आप स्वयं लें।"

"यह मुझसे नहीं हो सकेगा।"

"आप मेरे आदेश का उल्लंघन करके राजद्रोह करने का अपराध कर रहे हैं।"

"और यदि मैं कहूं कि आप मंडल एवं समिति की उपेक्षा करके देश-द्रोह कर रहे हैं, तो कदाचित् आपको निरुत्तर हो जाना पड़ेगा।"

"महामात्य !"

"आज्ञा सम्राट् !"

"इधर कुछ वर्षों से मैं आपमें विचित्र परिवर्तन का अनुभव कर रहा हूं। आपकी सफलताओं ने आपमें अहंकार एवं निरंकुशता का भाव उत्पन्न कर दिया है।"

"स्वयं सम्राट् तो मेरे इन अवगुणों के साकार-सजीव प्रतीक बन गये हैं। वज्जि-संघ की लोकतंत्रात्मक प्रणाली से प्रेरणा लेकर सम्राट् ने ग्रामीणों की सभा संगठित की। आज सम्राट् अपने ही व्यवहार से उसकी अनुपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं। किसी भी सामान्य अथवा असामान्य संधि-प्रस्ताव पर निर्णय देने से पूर्व अमात्यमंडल का परामर्श ले लेना आवश्यक है। किंतु सम्राट् ने आज के आचरण से परंपरागत नियमों को भंग कर दिया। मेरे विचार में, सम्राट कर्तव्यच्युत हो चुके हैं।"

महामात्य वर्षकार के आरोप सुनकर सम्राट् बिम्बिसार क्रोध से तिल-मिला उठे। उन्होंने गर्जना की :

"वर्षकार ! आज से मैं आपको महामात्य के पद से च्युत करता हूं।"

"सम्राट् के इस आदेश से अकिंचन गौरवान्वित हुआ। आपकी दृष्टि में तो बहुत पहले ही महामात्य के पद से विलग हो चुका था। कुमार दर्शक को राजकर्त्री की अनुमति के बिना आपने जिस दिन मगध का राजा बना दिया, उसी दिन अमात्यमंडल, सभा, समिति आदि की परंपरा एवं प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी थी। पुष्पपाल को नगराध्यक्ष बनाकर भी आपने नियम-विरुद्ध कार्य ही किया था। शत सहस्र कार्षापण से अधिक मूल्य के काष्ठ भिक्षुओं में लुटा कर आपने सिद्ध कर दिया था कि प्रजा का हित आपकी

दृष्टि में गौण है और अपनी कीर्ति, यश एवं परलोक-सुख की भावना प्रमुख। ऐसे राजा का अमात्य बने रहना, अनाचार को प्रश्रय देना है। मैं जाता हूं और आपकी सेवा में अपनी मुद्रिका के अतिरिक्त एक वस्तु और दिये जाता हूं।" इतना कहकर महामात्य ने हल्ल और बेहल्ल का पत्र भी सम्राट् बिम्बिसार के हाथ में देकर भुक्तास्थानमंडप त्याग दिया। सम्राट् ने पत्र पढ़ा तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उनकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। कुछ काल तक वे अपना सिर पकड़े बैठे ही रह गये। चित्त स्थिर होने पर उन्होंने हल्ल-बेहल्ल को उपस्थित होने का आदेश दिया।

धवलगृह में हल्ल और बेहल्ल के गुप्तचरों की कमी नहीं थी। उन्हें घटना का विवरण महाराज के पास आने के पूर्व ही प्राप्त हो गया था। वे दोनों भाई अनजान एवं आश्वस्त भाव से सम्राट् के समक्ष उपस्थित हुए। सम्राट् ने उन्हें पत्र दिखा दिया।

"पढ़ लिया ?"—सम्राट् ने क्रुद्ध स्वर में पूछा।

"जी हां।"—दोनों भाइयों ने निश्छल भाव से कहा : "किंतु इस पत्र से हम लोगों का क्या संबंध ? मुझे तो लगता है कि वर्षकार आपको सभी पुत्रों से विलग कर अकेला बना देने का षड्यंत्र रच रहे हैं। निश्चय ही, यह पत्र आपको उन्हीं से प्राप्त हुआ होगा।"

"तो क्या यह पत्र तुम लोगों ने नहीं लिखा है ?"

"कदापि नहीं।" बेहल्ल ने दृढ़तापूर्वक कहा। महाराज ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहना आरंभ किया :

"देखो पुत्रो ! यह आर्यपट्ट तुच्छ है, यह साम्राज्य की लिप्सा अधम है। मुझमें अब इन वस्तुओं के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह गया है। तुम लोग चाहो तो मुझसे स्पष्ट कह दो। मैं सब-कुछ तुम्हें सौंप दूंगा। किंतु, इन तुच्छ वस्तुओं के लिए संघर्ष अथवा युद्ध की विभीषिकाओं को आमंत्रित मत करो, वैशाली से सहायता पाने के निरर्थक षड्यंत्र के दलदल में मत फंसो।"

"आप विश्वास करें पिताजी ! हम लोगों को इस पत्र के संबंध में कोई ज्ञान नहीं है। आप महामात्य वर्षकार को बुलाकर हमारे समक्ष सिद्ध करने को कहें कि यह पत्र···"

"अब उसकी आवश्यकता भी नहीं रही पुत्र ! वर्षकार को मैं महा-मात्य के पद से हटा चुका हूं।"

"यह तो आपने अच्छा नहीं किया भंते !"

"क्यों ?"

"वे बहुत ही भयंकर पुरुष हैं।"

"मुझे इसका भय नहीं।...हल्ल !"

"आज्ञा श्रीमन्।"

"सातवें दिन भगवान बुद्ध वैशाली के लिए प्रस्थान करेंगे। मैं स्वयं उन्हें गंगा-तट तक छोड़ने जाऊंगा। अतएव यहां से गंगा-तट तक...।"

"मैं समझ गया पिताश्री ! पाटलिग्राम के दुर्ग के निर्माण में सहस्रों श्रमिक कार्यरत हैं। आज्ञा हो तो उन सबको इस कार्य में नियुक्त कर दूं और उनका शुल्क दुगुना कर दूं, जिससे प्रेरित होकर वे लोग इस कार्य में उत्साहपूर्वक लग जायं।"

"हां, हां, जो तुम्हारे जी में आये, वही करो। अभयकुमार को सूचित कर दो कि उसे मैं आज से महामात्य के पद पर नियुक्त करता हूं।"

"जैसी आज्ञा !"

दोनों राजकुमार उत्साहित होकर वहां से चल पड़े। सहस्रों श्रमिक पथ निर्माण के कार्य में व्यस्त हो गये। दुर्ग-निर्माण के निमित्त एकत्र करके रक्खी गयी सामग्री भी पथ के निर्माण में लगा दी गयी। प्रजा अपनी अपार संपत्ति को विनष्ट होते देखती रही।

वर्षकार का कहीं चिह्न तक नहीं था। सेनाध्यक्ष सुनीथ चम्पा गये हुए थे। सम्राट् बिम्बिसार अध्यात्म-सुख में विभोर हो रहे थे।

चम्पा का बाह्यास्थानमंडप बहुत सुंदर रीति से सजाया गया था। बहुत दिनों के बाद अंग के ग्रामणी सभा मे आमंत्रित किये गये थे। यद्यपि अंग जनपद मगध में विलीन होकर अपना अस्तित्व समाप्त कर चुका था, तथापि जनपद के अधिकांश सामंतों की प्रतिष्ठा पुनः लौट आयी थी। निस्संदेह, जिन सामंतों ने अजातशत्रु के विरुद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न किया था उन सामंतों एवं उनके सहयोगियों को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया था। इसके फलस्वरूप, अजातशत्रु की कठोरता का आतंक संपूर्ण अंग पर छा गया था।

बाह्यास्थानमंडप में बहुत से सामन्त, अमात्यगण, मौल सेनाध्यक्ष वसुमित्र, सिंहपाद सैनिकों का सेनापति सिंहरथ एवं ग्रामणी मंचातिमंच विराजमान थे। सबकी दृष्टि पराक्रमी मंडलेश्वर हर्यंक कुलावतंस अजातशत्रु की ओर लगी हुई थी। अजातशत्रु सामंत सुमन से कुछ परामर्श कर रहा था। अचानक अजातशत्रु ने घोषणा की :

"सभ्यगण, सुनें ! अंग जनपद अब मगध साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बन कर अपने नाम को सार्थक कर चुका है। अतएव, इसका स्वतंत्र अस्तित्व विधिवत समाप्त किया जाता है। किंतु, मगध के इस प्रदेश की राजधानी चम्पा ही रहेगी और चम्पा-स्थित मगध के मंडलेश्वर अपने अमात्यमंडल के परामर्श से यहां के शासन-प्रबंध का दायित्व संभालेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं सुविख्यात श्रेष्ठी कुलाजिन को इस प्रदेश का

प्रमुख अमात्य नियुक्त करता हूं और सामन्त सुमन जैसे पराक्रमी पुरुष को सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित करता हूं।''

अजातशत्रु की घोषणा सुनकर बाह्यास्थानमंडप में हर्षोल्लास छा गया। कई पल तक वहां हर्ष की ध्वनि उठती रही। अजातशत्रु ने प्रमुख अमात्य कुलाजिन को तथा सेनापति सुमन को अपनी ओर से खड्ग प्रदान किये। दोनों ने मस्तक झुका कर खड्ग स्वीकार किये। बाह्यास्थानमडप में पुनः हर्षोल्लास की लहर दौड़ गयी। उसी बीच मगध साम्राज्य के सेनाध्यक्ष सुनीथ ने वहां प्रवेश किया। उन्हें देखते ही मंडप में शांति छा गयी। सेनाध्यक्ष सुनीथ ने आर्यपट्ट के पास पहुंच कर अजातशत्रु की अभिवंदना की और उसके हाथ में एक पत्र रख दिया।

अजातशत्रु ने पत्र पढ़कर सुनीथ की ओर जिज्ञासा से देखा। सुनीथ ने निवेदन किया :

''विस्तृत विवरण एकांत में ही दे सकता हूं।''

अजातशत्रु ने तत्क्षण घोषणा की—

''सभ्यगण, सुनें ! राजगृह में कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि मेरा वहां उपस्थित रहना अनिवार्य हो गया है। अतएव, मैं आज ही गिरिव्रज के लिए प्रस्थान कर दूंगा। मेरे स्थान पर मगध साम्राज्य के सेनाध्यक्ष सुनीथ मंडलेश्वर का कार्य-भार संभालेंगे।'' इस घोषणा के पश्चात् ही सभा भंग हो गयी।

जब तक अजातशत्रु बाह्यास्थानमंडप में रहा, तब तक उसने अपनी जिज्ञासा एव उतावलेपन पर संयम रक्खा। मुखशाला में पहुंचते ही अजातशत्रु उबल पड़ा :

''इतनी बड़ी-बड़ी घटनाएं वहां घट गयीं और आचार्य वर्षकार चुप बैठे देखते रहे ?''

''आपके आचार्य वर्षकार मगध के महामात्य भी हैं युवराज ! शासन सूत्र अपने हाथ में लेकर वे महामात्य के पद को कलंकित कर नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त महामात्य समयोचित धर्म में विश्वास रखते हैं। समय से पूर्व या पश्चात् कोई कार्य करना उन्हें सह्य नहीं है।''

''तो पिताश्री पूर्णतया बुद्ध के अनुयायी बन गये !

"उनके भगवान बुद्ध का अनुयायी बनने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किंतु, अब महाराज को धर्म के अतिरिक्त और कुछ दिखायी नहीं देता। राज्य अथवा प्रजा की उन्हें रंचमात्र भी चिंता नहीं है। अंग-अभियान ने मगध की आर्थिक स्थिति विषम बना दी। उस पर पुष्पपाल ने षड्यंत्र करके अमूल्य गिरिव्रज नगर को ध्वस्त कर दिया। फिर भी सम्राट् ने राजगृह नगर के निर्माण के लिए रक्खे हुए सहस्रों कार्षापण मूल्य का काष्ठ भिक्षुओं को दे दिया। आचार्य वर्षकार का अनुमान है कि यदि सम्राट् के हाथ प्रभुता बनी रही तो मगध या तो वज्जि गण-संघ की भेंट चढ़ जायेगा या भिक्षु-संघ का महाविहार बन कर रह जायेगा।"

"मुझे कब प्रस्थान करना चाहिए ?"

"आज ही, अभी।"—देवदत्त ने अचानक प्रवेश करके कहा। दोनों चौंक कर देवदत्त को देखने लगे। देवदत्त ने अपने कथन को स्पष्ट करते हुए कहा : "यदि तुमने विलंब किया तो बुद्ध के भिक्षु-संघ के अतिरिक्त तुम्हें कहीं और शरण नहीं मिलेगी।"

"किंतु, इतनी शीघ्र सिंहपाद सैनिकों के प्रयाण की व्यवस्था तो हो नहीं पायेगी।"

"तुम एक सहस्र सिंहपाद सैनिकों के साथ शीघ्रातिशीघ्र प्रस्थान कर दो। शेष सैनिकों को लेकर सिंहरथ कल किसी समय तक प्रस्थान कर देगा। इस कार्य में सोच-विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म-भ्रष्ट बिम्बिसार को समाप्त करने के लिए तुम अकेले भी पर्याप्त हो।"

"जी ?"—अजातशत्रु ने चौंक कर पूछा। देवदत्ता ने कहा :

"चौंकते क्या हो ? अंग को पराजित करने का श्रेय तुम्हें है। फिर भी मगध में तुम्हें कुमार कह कर पुकारा जाता है और यदि तुमने समय रहते उद्यम न किया तो तुम कुमार का कलंक लिये ही संसार से विदा हो जाओगे।"

"ऐसा श्राप मत दीजिए, शास्ता ! पिताश्री के पश्चात् मगध के आर्य-पट्ट पर अभिषिक्त होने का अधिकार मेरा है।"

"और दर्शक कहां जायेगा ? वह तो अभी से राजा बना बैठा है।

दर्शक के पश्चात् अभयकुमार अपना अधिकार मांगेगा। फिर हल्ल और बेहल्ल को वैशाली की शक्ति का भरोसा है। क्या तुम तब तक प्रतीक्षा करने के लिए जीवित रहोगे ? कुमार ! पहले मनुष्य दीर्घायु होते थे, अब वे अल्पायु होते हैं। हो सकता है कि कुमार कहलाते हुए ही तुम्हारी हो जाय। अतएव, कुमार, तुम अपने पिता को समाप्त कर समय रहते मगध के राजा बन जाओ।"

अजातशत्रु देवदत्त का अंधभक्त था। फिर भी उसकी आत्मा ने देवदत्त का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसने संकोचपूर्वक कहा :

"आपकी आज्ञानुसार मैं एक सहस्र सैनिकों के साथ आज ही प्रस्थान दूंगा। मुझे पूरा विश्वास है कि मगध का आर्यपट्ट प्राप्त करने में मुझे सफलता मिलेगी। किंतु शास्ता, पिताश्री की हत्या मैं नहीं कर सकूंगा।"

"क्यों ?

"वे मेरे जनक हैं। सृष्टिकर्ता को मिटा देना जघन्य अपराध है, कृतघ्नता है।"

"तो क्या तुम्हारा पिता ब्रह्मा है ? क्या वह कभी मरेगा ही नहीं ?"

"जिसने उन्हें बनाया है, वह अपनी इच्छानुसार उन्हें बुला लेगा।"

"अंग-अभियान में तुमने जितनों को मारा, क्या वे सभी तुम्हारी रचना थे ?"

"वे तो युद्ध में मारे गये, शास्ता !"

"युद्ध क्यों होता है ?"

"सत्ता के लिए।"

"तुम मगध किसलिए जा रहे हो ?"

"सत्ता प्राप्त करने।"

"तुम्हारे मगध-अभियान में क्या युद्ध का भाव अंतर्निहित नहीं है !"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"तुम तब तक अपने प्रस्थान का प्रबंध करो। मैं भिक्षुओं को राजगृह चलने का आदेश देकर आता हूं।"

देवदत्त के चले जाने के पश्चात् ही अजातशत्रु ने पुकारा :

"प्रतिहारी !"

"आज्ञा श्रीमन् ।"

"सिंहरथ को उपस्थित होने का निवेदन करो ।"

"जो आज्ञा ।"—कह कर प्रतिहारी त्वरित गति से बाहर की ओर भागा । अजातशत्रु व्यग्रतापूर्वक चक्कर काटने लगा । चलते-चलते अचानक वह रुक गया और बोला :

"शास्ता देवदत्त के मार्ग का ही अनुकरण करना होगा ।...सेनाध्यक्ष !"

"आज्ञा युवराज !"

"मगध के कितने सैनिक चम्पा में उपस्थित होंगे ?"

"चालीस सहस्र ।"

"और राजगृह के वन में ?"

"पचास सहस्र ।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"राजगृह के सैनिक तो सम्राट् का साथ देंगे ?"

"जिन पर महामात्य को विश्वास नही होगा, उन सैनिकों की कुछ-न-कुछ व्यवस्था उन्होंने कर दी होगी ।"

"यहां अंग पर नियंत्रण रखने के लिए चालीस सहस्र सैनिक पर्याप्त है ?"

"आप यहां की चिंता मत कीजिए । मै संभाल लूंगा ।"

"महाराज की जय हो ।"—सिंहरथ ने आकर अभिवंदना की । अजातशत्रु महाराज संबोधन सुनकर मन-ही-मन पुलकित हो उठा । बोला :

"तुम्हारी आशा साकार हो, सेनापति ! मैं अभी महाराज हूं नहीं, होने जा रहा हूं ।"

"सिंहपाद सैनिकों के महाराज तो आप ही हैं, प्रभो !"

"सिंहपाद सैनिक मेरे प्राण हैं, सिंहरथ ! उनके शौर्य-प्रदर्शन का अवसर आ गया है । संध्या से पूर्व ही मैं एक सहस्र सैनिकों के साथ राज-

गृह के लिए प्रस्थान कर दूंगा। शेष सैनिकों को लेकर तुम कल तक यहां से प्रस्थान कर दो।"

"जैसी आज्ञा।"

"एक सहस्र सैनिक यहीं धवलगृह के बाहर आकर एकत्र हों। शीघ्रता करो।"

सिंहरथ वहां से दौड़ चला। सेनाध्यक्ष सुनीथ को विदा देकर अजातशत्रु देवदत्ता को सूचित करने के लिए वासगृह की ओर अग्रसर हुआ। देवदत्ता पर्यक पर पड़ी छटपटा रही थी।

"तुम्हें क्या हो रहा है, प्रिये ?"

"कदाचित् प्रसव-पीड़ा हो रही है।"

"प्रसव-पीड़ा ?···कोई है ?"—अजातशत्रु ने ऊंचे स्वर में पुकारा। तत्क्षण तीन-चार परिचारिकाएं दौड़ आयीं।

"राजवैद्य को बुलाओ। शीघ्रता करो !"—अजातशत्रु के स्वर में हर्ष तथा विषाद समन्वित हो रहे थे : "तुम्हें यह क्या हो गया ? मुझे तो अपनी यात्रा में तुम्हारी पीड़ा का ही स्मरण आता रहेगा।"

"कैसी यात्रा ?"

"मैं आज ही राजगृह जा रहा हूं ! आचार्य वर्षकार का ऐसा आदेश है। अब तुम शीघ्र ही मगध-साम्राज्य की पट्टमहिषी के पद पर प्रतिष्ठित होगी।"

"कौन जानता है ?"

"क्यों ?"

"मेरा मन विचित्र अनुभव कर रहा है।"

"तुम्हें कुछ नहीं होगा। घबराओ नहीं। कहो तो मैं अपनी यात्रा स्थगित कर दूं।"

"नहीं, नहीं, ऐसा मत कीजिए। मैं आपकी सहधर्मिणी हूं, बाधक नहीं।"

"मैं तो सोचकर आया था कि तुम्हें भी साथ ले चलूंगा।"

"मैं बाद में आ जाऊंगी।"

"देवदत्ते !"

"स्वामी !"

"मेरे चले जाने पर तुम अन्यथा तो नहीं सोचोगी ?"

"ऐसा विचार मन में न लाइए, प्रभो ! जो पुरुष नारी के लिए अपने कर्म-क्षेत्र अथवा दायित्व का परित्याग कर देता है वह दया का पात्र है, और जो नारी इसकी प्रेरणा देती है वह नैतिक दृष्टि से व्यभिचारिणी ! मैं जन्म से श्रेष्ठि-पुत्री हूं और कर्म से योद्धा की पत्नी ! यही मेरा सौभाग्य है और मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व है।"

"मैं आश्वस्त हुआ, प्रिय ! स्वस्थ होते ही तुम राजगृह आ जाना। मैं इसकी व्यवस्था करके जाऊंगा।"

"अवश्य आ जाऊंगी। सुना है कि राजगृह में नगर-वधू की परंपरा को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।"—देवदत्ता ने पीड़ा से कराहते हुए भी हंसकर कहा। अजातशत्रु घृणा से मुंह विकृत करते हुए बोला :

"यह परंपरा पिताश्री पर नियंत्रण रखने के लिए आरंभ की गयी थी और उन्हीं के साथ इसकी इतिश्री हो जायेगी। तुम्हारे अजातशत्रु को नारी से प्रेम है, आसक्ति नहीं।"

"किंतु इस परंपरा से तो सौंदर्य की महत्ता सिद्ध होती है।"

"तुम तो सर्वथा विपरीत बात कह रही हो। सौंदर्य अमूल्य है। किंतु, इस प्रथा ने सौंदर्य का मूल्य निश्चित कर दिया। सौंदर्य के क्रय-विक्रय को सम्मानित पद देने से त्यागमयी गृहणियों का आदर्श कुंठित होकर रह गया है। दुष्ट लिच्छवियों को भी अपनी इस प्रथा पर गर्व है। मैं इस प्रथा का उच्छेद कर दूंगा।"—अजातशत्रु बोलते-बोलते भावावेश में आ गया। देवदत्ता अपनी वेदना छिपाती हुई मुस्करा कर बोली :

"नगर-वधू की समस्या ने आपको इतना उत्तेजित कर दिया कि आप अपनी यात्रा की व्यवस्था करना ही भूल गये।"

अजातशत्रु हंसने लगा। राजवैद्य पहुंच चुके थे। देवदत्ता की चिकित्सा एवं परिचर्या का समुचित आदेश देकर अजातशत्रु चिंतित मन से यात्रा के प्रबंध में लग गया।

अपराह्न का चौथा मुहूर्त व्यतीत हो रहा था। सूर्य क्षितिज को स्पर्श कर रहा था। क्षितिज के गात लाल हो रहे थे। तभी अजातशत्रु राजगृह के पूर्व स्थित वन्य प्रदेश के निकट पहुंच गया। उसके साथ एक सहस्र अश्वारोही सिंहपाद सैनिक थे। अजातशत्रु की दृष्टि दूर पश्चिम में क्षितिज के मोहक रंगो में उलझी हुई थी। उसका अश्व अपनी गति से चला जा रहा था कि पार्श्व मे चल रहे नायक ने वन की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया। वन्यप्रदेश से एक अश्वारोही भागा हुआ चला आ रहा था। अजातशत्रु ने अपने सैनिकों का रुक जाने का संकेत किया।

अश्वारोही ने निकट पहुंच कर अजातशत्रु की अभिवंदना की। अजातशत्रु उल्लसित होकर बोला :

"कहो धनंजय ! आचार्य स्वस्थ तो हैं ?"

"हां युवराज ! आपको यहां से दाहिनी ओर चलना है। आचार्य प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"क्यों ? नगर में नही जाना है ?"

"अभी नहीं। वहां युद्ध की आशंका है। अतएव, पूरी योजना बनाकर अग्रसर होना है।"

"युद्ध की आशंका ?"

"हां श्रीमन् ! सम्राट् ने आचार्य को महामात्य के पद से च्युत कर दिया है। आजकल अभय कुमार महामात्य के पद पर विराजमान हैं।"

"यह मैं क्या सुन रहा हूं ? आचार्य ने सम्राट् का आदेश स्वीकार कर लिया ?"

"जी हां ! प्रजा का प्रेम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था।"

"किंतु, यह सब हुआ कैसे ?"

"सम्राट् का आदेश हुआ कि दुर्ग-निर्माण का कार्य बंद करके भगवान् बुद्ध के निमित्त राजगृह से गंगातट तक के पथ का पुर्ननिर्माण किया जाय। आचार्य प्रजा के धन का इस प्रकार अपव्यय होते नहीं देख सके।"

"फिर ?"

"आचार्य ने सम्राट् के आदेश का पालन नही किया।"

अजातशत्रु के दांत कटकटा उठे। उसकी आंखों से चिनगारियां बरसने लगी। उसने क्रुद्ध स्वर में प्रश्न किया :

"सम्राट् कहां है ?"

"भगवान बुद्ध को राजकीय सम्मान के साथ पहुंचाने के लिए गंगा-तट तक गये है। कल मध्याह्न तक लौट आयेंगे।"

अजातशत्रु चुपचाप चलता रहा। क्रोधातिरेक से उसके दांत यदा-कदा कटकटा उठते थे। वन के भीतर पूर्ण स्कंधावार बना हुआ था। वर्ष-कार को देखते ही अजातशत्रु ने अश्व से उतरकर उनकी अभ्यर्थना की।

"कैसे हो युवराज ? यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"आपके आशीर्वाद से कुशल ही कुशल है। किंतु, यह मैं क्या सुन रहा हूं ?"

"क्या ?"

"सम्राट् ने आपको महामात्य के पद से···।"

"यह तो मेरी इच्छानुसार ही हुआ है युवराज !"

"जी ?"

"हां युवराज ! महामात्य के पद पर रहते हुए मैं अपनी कल्पना को तुममें साकार होते नही देख सकता था।"

"यह आपकी कृपा है, आचार्य !"

"दायित्व के संकट झेलने को प्रस्तुत हो ?"

"आपके आदेश की प्रतीक्षा है।"

"कल ही तुम्हें अपने प्राण संकट में डालने होंगे।"

"मैं प्रस्तुत हूं।"

"तो जाकर विश्राम करो। कल प्रात.काल विजय की योजना स्पष्ट कर दूगा।"

कल होकर सम्राट् बिम्बिसार गंगा-तट से लौट आये। वहां उन्हें भिक्षुओं ने सूचित किया कि अजातशत्रु बुद्ध-विरोधी देवदत्त की प्रेरणा से अंग में अत्याचार का साम्राज्य स्थापित किये हुए है। भिक्षु-सघ के सदस्यों ने देवदत्त की नीचता की बहुत-सी कहानियां बिम्बिसार को कह सुनायीं। बिम्बिसार को इन बातों से हार्दिक कष्ट पहुंचा। वे अजातशत्रु को सन्मार्ग पर लाने को कृत-निश्चय होकर राजगृह लौटे। धवलगृह में पहुंचते ही उन्होने अभय कुमार को आदेश दिया :

"तुम्हें आज ही चम्पा की यात्रा करनी है। अजातशत्रु वहां अनाचार एवं अत्याचार के निंदनीय मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। पापी देवदत्त उसका परामर्शदाता बना हुआ है।"

"मेरे विचार में, कुमार अजातशत्रु चम्पा में मेरी उपस्थिति से और भी भड़क उठेगा।"

"तुम मेरे आदेश से वहां जा रहे हो, अपनी इच्छा से नही। कुमार अजातशत्रु के भय से मैं अपने राज्य में अधम देवदत्त को विष-वमन करने की स्वतंत्रता नही दे सकता।"—सम्राट् ने क्रुद्ध स्वर मे कहा।

"मुझे क्या करना होगा ?"

"कुमार अजातशत्रु को मेरा आदेश सुना देना कि अंगवासियों के साथ न्याय का व्यवहार किया जाय, देवदत्त को राजाश्रय नहीं दिया जाय और अहितकर परामर्श देने वाले राजकर्मचारियों को कठोर दंड दिया जाय। यदि पूरी निष्ठा के साथ मेरे आदेश का पालन नही किया गया तो लाचार होकर मुझे स्वयं चम्पा आना पड़ेगा।"

"जैसी आज्ञा !"

"और सुनो ! आवश्यकता पड़ने पर देवदत्त को बंदी बनाने में संकोच मत करना।"

"किंतु, ऐसा कुछ तो मंडलेश्वर के आदेश पर ही किया जा सकता है।"

"सम्राट् का आदेश सर्वोपरि है।...साथ में कुछ सैनिक भी ले जाओ।"

"बहुत अच्छा, श्रीमन् !"

"वर्षकार का कुछ पता चला ?"

"नहीं सम्राट् ! सेनापति धनंजय भी कदाचित् पृथ्वी में समाहित हो गये।...यह कोई शुभ संकेत नहीं है।"

"मुझे इसकी कोई चिंता नहीं है।"

"वर्षकार बहुत ही भयानक व्यक्ति हैं, प्रभो !"

"भगवान बुद्ध के प्रवचन सुनकर मैं भय की भावना से परे हो चुका हूं। तुम शीघ्रतापूर्वक अपनी यात्रा की व्यवस्था करो।"

अभय कुमार मन ही मन भयभीत हो उठे। किंतु, उनके समक्ष सम्राट् की आज्ञा शिरोधार्य करने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं था। वे सम्राट् को प्रणाम करके वहां से चल पड़े।

मध्यरात्रि का समय था। राजगृह नगर की चहल-पहल शांत हो चुकी थी। धवलगृह का विराट् आकार गरुड़-सदृश अंधकारपूर्ण शून्य के चंगुल में अमृतघट-सा लटकता हुआ प्रतीत हो रहा था। राजद्वार के प्रहरीगण अचानक चौंक उठे। सामने से एक अश्वारोही अपना अश्व उड़ाये चला आ रहा था। प्रहरीगण अपने-अपने शल्य संभाल कर सन्नद्ध हो उठे। अश्वारोही राजद्वार पर आकर रुक गया और आदेशात्मक स्वर में बोला :

"द्वार खोल दो।"

अश्वारोही का मुखमंडल उल्काओं के प्रकाश में प्रदीप्त हो उठा। प्रहरियों के मुंह से अस्फुट ध्वनि निकल पड़ी :

"कुमार अजातशत्रु !" प्रहरियों के नायक ने कुमार का अभिवादन करके निवेदन किया :

"रात्रिकाल में बिना सम्राट् की अनुमति के धवलगृह में कोई नहीं जा सकता।"

"मेरे पास तुम्हारा प्रवचन सुनने का समय नहीं है। मार्ग प्रशस्त

करो।"—अजातशत्रु ने क्रुद्ध स्वर में कहा। नायक भयभीत होकर बोला :

"हमें द्वार खोलने की आज्ञा नहीं है, श्रीमन् !"

"किसने ऐसी आज्ञा दी कि राजमुद्रिका के रहते हुए भी कोई धवलगृह में प्रविष्ट नहीं हो सकता ?"

"कुमार हल्ल तथा बेहल्ल ने।"

"इस तरह की आज्ञा देने वाले वे कौन होते हैं ?"

"हस्ति-सेनाध्यक्ष, नगराध्यक्ष, दौवारिक प्रभृति पदों का कार्य-भार कुमार हल्ल तथा बेहल्ल ने ही संभाल रक्खा है।"

"मैं इन क्षुद्र प्राणियों की आज्ञा मानना अस्वीकार करता हूं।"

"हम लोगों पर दया कीजिए, प्रभो!"—नायक ने गिड़गिड़ा कर कहा।

अजातशत्रु मुस्कराता हुआ बोला :

"दया ही करूंगा।" इस वाक्य की समाप्ति के साथ ही अजातशत्रु का खड्ग नायक की ग्रीवा पर जा पड़ा। नायक की देह दो-तीन बार हवा में उछल कर शांत हो रही। शेष प्रहरी भय से थर-थर कांपने लगे। उसी समय, न जाने किधर से, बहुत से सिंहपाद सैनिक वहां आ एकत्र हुए। धवलगृह के प्रहरी राजद्वार के बाहर निकाल दिये गये और उनके स्थान पर सिंहपाद सैनिक सन्नद्ध हो गये। अजातशत्रु अकेला ही धवलगृह में प्रविष्ट हो गया। भीतर कई स्थानों पर एकाकी प्रहरी सन्नद्ध थे, जिनमें से कुछ तो अजातशत्रु का रौद्र रूप देखते ही भाग खड़े हुए और कुछ काल के ग्रास बन गये। ऊपर के चतुःशाल में बहुत से प्रहरी उपस्थित थे। अजातशत्रु के हाथ में रक्त-रंजित खड्ग देखते ही वे सब प्रहरी अर्धमूर्च्छित से हो गये। अजातशत्रु ने कड़क कर पूछा :

"महाराज किधर हैं ?"

"तुम ? अजातशत्रु ?"—अजातशत्रु का स्वर सुनकर महाराज स्वयं बाहर निकल आये थे। अजातशत्रु ने प्रतिसंबोधन तक का शिष्टाचार भी प्रदर्शित नहीं किया। वह अपने पिता को क्रुद्ध दृष्टि से देखता हुआ बोला :

"क्यों ? मुझे यहां देख कर आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ?"

"आश्चर्य तुम्हें देखकर नहीं, तुम्हारे रक्त-रंजित खड्ग को देखकर हो रहा है। अंग के मंडलेश्वर की बहुत चर्चा सुनी थी। आज उसके साक्षात

स्वरूप के भी दर्शन हो रहे हैं।"

"क्या चर्चा सुनी थी ?"

"तुम्हारे खड्ग के चमत्कार की ! अंग की निःशस्त्र प्रजा का दारुण चीत्कार आर्यावर्त में गूंज रहा है।"

"वह अंग की निःशस्त्र प्रजा का चीत्कार नहीं है, श्रीमन् ! वह तो आपके साम्राज्य की अव्यवस्था से उत्पन्न उत्क्रोश है।"

"अव्यवस्था उतनी घातक नही है जितना दमन।"

"फिर आपने अंग को अधीनस्थ क्यों किया ?"

"शत्रु को परास्त करने के लिए, पिता का प्रतिशोध लेने के लिए।"

"उसमें क्या दमन का भाव निहित नहीं था ? और अब जो वहां शत्रु बच रहे थे, जो प्रजा एवं शासन की शांति मे बाधक बने हुए थे, उन्हें परास्त करना वहां के शासक का कर्तव्य नही था ?"

"अब वे शत्रु भी अपने हो गये थे, पुत्र ! उन्हें प्यार से मार्ग पर लाना चाहिए था।"

"आपने आचार्य वर्षकार को माग पर लाने के लिए क्या इसी सिद्धांत का अवलंब लिया ?"

"वर्षकार मुझे उचित परामर्श नहीं देते थे।"

"आपने कुमार दर्शक, पुष्पपाल, कुमार अभय, हल्ल तथा बेहल्ल को किस के परामर्श से उनके पदों पर नियुक्त किया ? राजगृह के निर्माण के निमित्त एकत्र काष्ठ भिक्षुओं में वितरित कर देने का अधिकार आपको कहां से प्राप्त हो गया ? गिरिव्रज नगर के ध्वस तथा अंग-विजय के कारण मगध की प्रजा अर्थ-संकट के दलदल में फंसी हुई है। फिर भी आपने अपने निजी आनंद के लिए यह सब कुछ किया। इतना ही नहीं, भगवान बुद्ध को गंगा-तट तक पहुंचाने के लिए सहस्रों कार्षापण व्यय कर दिये। यह सब प्रजा को प्यार से सुधारने का मार्ग है या उन्हें क्षुधा-पीड़ित कर धीरे-धीरे समाप्त कर देने का ?"

"मैं सम्राट् हूं, कुमार ! मुझे अपने ढंग से शासन चलाने का अधिकार प्राप्त है।"

"ठीक यही भावना बार्हद्रथवंशी राजा रिपुंजय और पुलिकसेन के

पुत्र कुमारसेन मे व्याप गयी थी, जिस कारण उनका विनाश हुआ।"

"तो क्या तुम भी मेरा विनाश करना चाहते हो ?"

"इसी मे मगध का कल्याण है।"

"कुमार !"

'हा भते ! आपने प्रजा के हित का परित्याग कर दिया है, अतएव प्रजा आपका परित्याग करेगी।"

"तो क्या तुम मेरी हत्या करोगे ? पितृहता बनोगे !"

"यदि आवश्यकता हुई तो उसके लिए भी प्रस्तुत हूं। मेरे सिंहपाद सैनिकों ने धवल-गृह को चारों ओर से घेर रक्खा है। मगध के कल्याण के लिए मुझे लाचार होकर अपने पितामह भट्टिय हेमजित के मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा।"

"उन्होने तो त्याग और तपस्या का मार्ग अपनाया था।"

"उनके समस्त कार्यो मे मगध के कल्याण की भावना निहित थी और इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होने पुलिकसेन का विनाश किया।"

"सम्राट् किसी एक व्यक्ति का पिता नही होता, वह समस्त प्रजा का अभिभावक होता है। किंतु, अभिभावक के धर्म से विचलित होते ही राजा सर्प की श्रेणी मे जा गिरता है। सर्वप्रथम मै मागध हूं, फिर आपका पुत्र।"

सम्राट् बिम्बिसार निरुत्तर हो गये। तब तक मृत्यु की छाया-सी बहुत-सी सजीव मूर्तियां चतु शाल में एकत्र हो चुकी थीं। सम्राट् बिम्बिसार मौन होकर उन मूर्तियों को देखते रह गये। वे छाया-मूर्तियां, अजातशत्रु का संकेत पाकर, सम्राट् बिम्बिसार के चारों ओर सिमट आयीं। सम्राट् अपनी स्थिति भांप गये।

सूर्योदय होते ही संपूर्ण राजगृह में आश्चर्य एवं आतंक की लहर दौड़ गयी। नगर में अपरिचित हृष्ट-पुष्ट, प्रचंड सिंहपाद सैनिकों को चक्कर लगाते देखकर नगरनिवासी कौतूहल से भर गये। यद्यपि नगर का सामान्य कार्य-क्रम विधिवत् चल रहा था, तथापि नागरिकों के किंकर्तव्यविमूढ़ होने का भाव सर्वत्र परिलक्षित हो रहा था। सिंहपाद सैनिकों की उपस्थिति से वातावरण अत्यधिक गंभीर एवं रहस्यमय हो उठा था। प्रत्येक व्यक्ति खुल कर बोलने में संकोच करता-सा जान पड़ता था, प्रत्येक व्यक्ति की आंखों में आश्चर्य, भय एवं उत्साह के भाव समन्वित हो उठे थे, और प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का विचार जानने को उत्सुक था।

धवलगृह पर सिंहपाद सैनिकों का कठोर नियंत्रण था। भुक्तास्थान-मंडप में अजातशत्रु व्यग्र भाव से चक्कर काट रहा था। कुमार दर्शक, कुमार शीलवन्त और कुमार विमल भयभीत दृष्टि से अजातशत्रु को देखते हुए खड़े थे। सेनापति धनंजय एवं सिंहरथ स्थिर-चित्त एवं आज्ञानुवर्ती हो अजातशत्रु के पास खड़े थे। अचानक अजातशत्रु अपने भ्राताओं की ओर उन्मुख होकर पूछ बैठा :

"अब आपकी क्या इच्छा है, बंधु दर्शक ?"

कुमार दर्शक ने दीन स्वर में कहा :

"यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मैं भगवान बुद्ध की शरण में जाना चाहूंगा।"

"अवश्य जाइए। मुझे आपके इस निर्णय से प्रसन्नता हुई।...और आप लोग ?"—अजातशत्रु ने शीलवन्त तथा विमल से पूछा। उन दोनों कुमारों ने भी भगवान बुद्ध की शरण मे जाने की इच्छा प्रकट की। अजातशत्रु ने धनंजय से कहा :

"इन लोगों की यात्रा की व्यवस्था कर दी जाय। कहीं ऐसा न हो कि ये लोग पुन: मेरी शरण में आ जायं। मैं भ्राताओं के रक्त से अपने हाथ दूषित करना नही चाहता।"

तत्क्षण ही धनजय ने पास में खड़े गौल्मिक को संकेत किया। वह गौल्मिक उन कुमारों को लेकर भुक्तास्थानमडप के बाहर चला गया। अजातशत्रु अचानक उत्तेजित होकर बोला :

"मुझे आश्चर्य है कि कठोर नियंत्रण रहते हुए भी हल्ल और बेहल्ल भाग निकले।"—धनंजय ने गंभीर स्वर में विनम्रतापूर्वक कहा—

"मुझे लगता है कि वज्जि-संघ के गुप्तचरों ने चम्पा में भी अपना जाल बिछा रक्खा है। तभी हल्ल तथा बेहल्ल को आपके आगमन का सूचना मिल गयी और वे दो दिन पूर्व ही यहां से अंतर्धान हो गये।"

"मुझे उनके अंतर्धान होने की चिता नही है। मुझे तो सेचनक हाथी तथा मौक्तिक माल चाहिए। ये दोनों ही अमूल्य वस्तुएं मगध की गौरव हैं।"

"हल्ल तथा बेहल्ल वज्जि-संघ की ओर जाते देखे गये हैं, श्रीमन्।"—एक सैनिक ने आकर सूचना दी।

अजातशत्रु ने क्रुद्ध स्वर में प्रश्न किया : "किसने देखा ?"

"सुदूर ग्राम के नागरिकों ने। दोनों कुमार सेचनक हाथी पर बैठे भागे जा रहे थे।"

"सेनापति धनंजय !"—अजातशत्रु गरज उठा।

"आज्ञा, भंते !"

"हम उनका पीछा करेंगे।"

"वे तो अब बहुत दूर निकल गये होंगे; कदाचित् वज्जि-संघ की सीमा में भी पहुंच चुके हों।"

"कोई चिंता नहीं। लगे हाथ हम वज्जि-संघ की शक्ति भी तौल

लेंगे।"

"तो क्या आप वज्जि-संघ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करेंगे ?"

"निस्संदेह।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"—अचानक महामात्य का स्वर गूंज उठा।

सब लोग चौंक उठे। महामात्य वर्षकार अति गंभीर मुद्रा धारण किये मंथर गति से चले आ रहे थे। दूर से ही उन्होंने अजातशत्रु की घोषणा का खंडन कर दिया था। अजातशत्रु क्षण-भर मौन रहा। वर्षकार के निकट आते ही अजातशत्रु उतावलेपन में आकर बोला :

"क्यों नहीं हो सकता ?" वर्षकार ने अजातशत्रु को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कठोर स्वर में कहा :

"युवराज ! तुम्हारा उतावलापन एक दिन तुम्हें रसातल में पहुंचा देगा। अभी तुम विधिवत् मगध के सम्राट् भी नहीं बने और वज्जि-संघ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने लगे। वज्जि-संघ की शक्ति को तौलने से पूर्व अपनी शक्ति को तौल लेना अधिक श्रेयस्कर होगा।"

"तो क्या हम निष्क्रिय होकर बैठ जायं ?"—अजातशत्रु हतप्रभ होकर बोला। वर्षकार प्रोत्साहन देने के स्वर में बोले :

"कौन कहता है ? अभी तो तुम्हें बहुत-से कार्य संपादित करने हैं। राजगृह का निर्माण-कार्य अभी चल ही रहा है, पाटलिग्राम का दुर्ग अभी अधूरा पड़ा है, संत्रस्त प्रजा को अभय एवं उत्साह प्रदान करना है, मगध की सैन्य-शक्ति पुनर्गठित करनी है और सबसे प्रमुख बात यह कि तुम्हें बारहों रत्नियों[१] को हवि प्रदान करके, उनके प्रति निष्ठा का भाव रखते हुए, आर्यपट्ट पर अभिषिक्त होना है। सम्राट् बिम्बिसार को तो तुमने बंदी बना कर कारागार में डाल दिया, किंतु अभी तक तुम राजकोष नहीं प्राप्त कर सके हो। युवराज, अब तुम मात्र पराक्रमी योद्धा नहीं रहे, अब तुम किशोर या तरुण भी नहीं हो। विस्तृत मगध-साम्राज्य का महान दायित्व तुम्हारे कंधों पर है। अतएव, जो भी निर्णय करो, सोच-समझकर करो।"

---

१. सेनानी, पुरोहित, राजन्य, राजमहिषी, सूत, ग्रामणी, क्षत्ता, संग्रहीता, भागदुघ, अक्षवापा, गोविकर्ता और पालागल।

"मुझे अपनी विवेकहीनता के लिए दुःख है, आचार्य !"—अजातशत्रु ने बुझे स्वर में निवेदन किया। वर्षकार ने सिंहरथ की ओर उन्मुख होकर कहा :

"सिंहरथ !"

"आज्ञा, आर्य ब्राह्मण !"

"मुखशाला मे अंग के प्रधान अमात्य श्रेष्ठी कुलाजिन विराजमान है। उनके साथ कुमार अजातशत्रु का नवजात शिशु उदायीभद्र भी है। शीघ्र जाकर उस शिशु के लालन-पालन की व्यवस्था करो।"

वर्षकार की बातें सुनकर अजातशत्रु आशंकित हो उठा। उसने सहमते हुए पूछा :

'और···और देवदत्ता कहां है ?"

"वासुदेव कृष्ण की सेवा में। प्रसव-पीडा के समय चम्पा के वैद्य उसे नही बचा सके।"

"आचार्य !"

"हां आयुष्मान्! ईश्वर तुम्हारे धैर्य की परीक्षा ले रहा है। अब तुम्हारा जीवन किसी एक का न रह कर असंख्य का बन गया है। तुम्हे ईश्वर का यह निर्णय स्वीकार करना चाहिए। जाओ, अपने श्वसुर से मिल लो और अपने पुत्र को भी देख लो। देवदत्ता का उपहार प्राप्त कर तुम्हें हर्ष एवं उत्साह से भर जाना चाहिए।"

अजातशत्रु वहां से चुपचाप मुखशाला की ओर क्षिप्र गति से चल पड़ा। वर्षकार ने धनंजय से कहा :

"आवुस धनंजय !"

"आज्ञा आचार्य !"

"अब शीघ्रातिशीघ्र राज्याभिषेक की व्यवस्था होनी चाहिए।"

"मै भी यही सोच रहा था, आचार्य !"

"तो सभी संबद्ध व्यक्तियों को आमंत्रण भेजने का प्रबंध करो। सेनाध्यक्ष सुनीथ को गुप्त सूचना प्रेषित करो कि युद्ध-यंत्र का अन्वेषण-कार्य चम्पा में शिथिल न पड़ने पाये। वैशाली-अभियान के लिए उसी की प्रतीक्षा है।"

"जो आज्ञा, श्रीमन् !"

"वैशाली से पुष्पपाल ने कोई सूचना भेजी है ?"

"जी हां। पुष्पपाल वैशाली के नगराध्यक्ष बन गये हैं। उन्होंने संदेश भेजा है कि महामारी का प्रकोप कम होने के साथ-साथ वैशाली का प्रचंड रूप पुनः प्रकट होने लगा है। हल्ल और वेहल्ल के साथ वैशाली का निरंतर संपर्क स्थापित है। इस सपर्क को विच्छिन्न कर देना आवश्यक है। महागोन्विद का पुत्र पुण्यवर्द्धन वैशाली में आर्य पुष्पपाल के साथ है।"

"वह वहा कैसे पहुंच गया ? क्या वह दासी...।"

"वह दासी देवी सरमा ही थीं। महागोविन्द के भृत्य ने उन से बलात्कार करने का प्रयत्न किया, जिससे कुपित होकर...।"

"मैं समझ गया धनंजय ! सरमा निश्चय ही जीवक के योग्य है... पुष्पपाल को मगध की क्रांति की सूचना शीघ्रातिशीघ्र मिलनी चाहिए और कौमारभृत्य जीवक को भी।"

"जो आज्ञा !"—धनंजय विनम्र स्वर में आदेश स्वीकार करके वहां से चल पड़ा।

अजातशत्रु के राज्याभिषेक की घोषणा कर दी गयी। आक्रमण-प्रत्याक्रमण से मगध की प्रजा दुखी हो गयी थी। पराक्रमी प्रचंड योद्धा के रूप में अजातशत्रु की ख्याति संपूर्ण मगध में परिव्याप्त थी। अतएव, अजातशत्रु के अभिषेक की घोषणा का कहीं से विरोध नहीं हुआ। प्रत्युत, प्रजा ने संतोष की

सांस ली और घोषणा का उत्साहपूर्वक स्वागत किया।

एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो इस घोषणा को सुनकर अत्यधिक असंतुष्ट हो उठा। वह था देवदत्त। वह न तो भगवान बुद्ध की ख्याति को सहन कर सकता था, न ही बुद्ध के प्रबल समर्थको के जीवन को।

बिम्बिसार कारागार में पड़े हुए अपने जीवन के अंतिम दिन तथागत के चिंतन से व्यतीत कर रहे थे। देवदत्त के लिए यह स्थिति असह्य थी। नगर में भी बहुत-से व्यक्ति बुद्ध के शिष्य थे। किंतु, वहां वह वर्षकार के भय से हस्तक्षेप करने का साहस नहीं कर पा रहा था। देवदत्त को भय था कि बुद्ध पुनः चारिका करते हुए नगर में आ सकते थे और प्रजा को अपने प्रभाव से प्रेरित कर बिम्बिसार को आर्यपट्ट पर प्रतिष्ठित कर सकते थे। ऐसी स्थिति मे स्वयं देवदत्त का चिह्न तक मिट जाता। वह जानता था कि बिम्बिसार की उसके प्रति कैसी धारणा है। यह सब सोचकर वह अजातशत्रु के पास पहुंचा। अजातशत्रु उस समय अपने अस्वस्थ पुत्र उदायीभद्र के निकट उद्विग्न भाव से चक्कर काट रहा था। देवदत्त का सदेश मिलते ही वह मुखशाला मे पहुचा। देवदत्त ने मुस्कराकर कहा :

"मगध के भावी सम्राट् कुछ व्यग्र दीखते हैं।"

"उदायीभद्र गंभीर रूप से अस्वस्थ है, शास्ता !"

"उसकी चिंता करने की आवश्यकता नही है। मैं ऋद्धि-प्रतिहार्य के बल से जानता हूं कि उदायीभद्र दीर्घजीवी है। वह मगध का प्रतापी सम्राट् बनेगा।"

अजातशत्रु को देवदत्त में पूर्ण विश्वास था। देवदत्त के कथन में उसे सत्य के साक्षात्कार का-सा अनुभव हुआ। वह विनम्रतापूर्वक गद्गद स्वर में बोला :

"किस हेतु शास्ता ने कष्ट किया ?"

"नगर में घोषणा हुई है कि तुम्हारा राज्याभिषेक होने वाला है।"

"सत्य ही सुना है, भंते !"

"किंतु, तुम राजा बन कैसे सकते हो ?"

"क्यों ?"

"बिना राजकोष के कहीं कोई राजा होता है ?"

"आपका तात्पर्य ?"

"स्पष्ट है। अपने पिता सम्राट् बिम्बिसार को तुमने कारागार में तो डाल दिया है, किंतु राजकोष का पता तुम्हें नहीं मालूम। तुम्हारा वृद्ध पिता राजकोष का रहस्य अपने ही साथ लिये संसार से विदा हो जायेगा।"

"आपका आशय मैं समझ गया शास्ता ! पर क्या करूं ? बहुत उद्यम किये; पिताश्री को मात्र कारागार में ही न डाला, उनका भोजन भी प्रायः बंद-सा कर दिया। मेरी माता कोशला देवी के अतिरिक्त कोई उनसे मिल भी नहीं सकता। इस प्रकार की यंत्रणाएं मैं उन्हें इसी उद्देश्य से दे रहा हूं कि कष्ट असह्य होने पर वे राजकोष का रहस्य बता दें।"

"कोशला देवी को भी मिलने से रोक दो। कारागार के पूर्व में गृध्र-कूट पर्वत है। तथाकथित बुद्ध कल से उसी पर्वत पर बैठा हुआ है। बिम्बि-सार वातायन से बुद्ध को देखता है और प्रेरणा ग्रहण करता है। उम वाता-यन को भी बंद करवा दो।"

"तो क्या जीवक भी आ गया है ?"

"नहीं। अभी वह वैशाली में है। क्यों ?"

"कुमार उदायी की चिकित्सा वही कर सकता है।"

"पहले मैंने जो कुछ कहा है, उसे संपन्न करो।"

"आपका आदेश सर्वोपरि है, शास्ता !"

"तुम बिम्बिसार से राजकोष प्राप्त करने का प्रयत्न करो। तब तक मैं इस ढोंगी बुद्ध को समाप्त करने की व्यवस्था करता हूं।"

"क्या आप तथागत के प्राण लेने की सोच रहे हैं ?"—अजातशत्रु ने चौंककर पूछा। देवदत्त घृणा के स्वर में बोला :

"और नहीं तो क्या उसकी पूजा करूंगा ?"

"यह उचित नहीं होगा। मेरे शासन को कलंक···।"

देवदत्त अट्टहास कर उठा। अजातशत्रु अवाक् होकर देवदत्त को देखने लगा। देवदत्त अचानक अपना अट्टहास रोककर व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ बोला :

"बस ! साम्राज्य मिलते ही तुम्हें उचित-अनुचित का ज्ञान होने लगा ?"

"शास्ता !"

"शास्ता शब्द को अपमानित मत करो, अजातशत्रु! तुम भी घोर स्वार्थी निकले। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए तुमने न जाने कितने कुकर्म किये, अपने पिता तक को कारागार ने डाल दिया, भाइयों को निष्कासन-दंड दिया और अब मुझे तुम उचित-अनुचित का भेद समझाने बैठे हो।"

"भूल हुई, शास्ता ! आप जो आदेश देंगे, वही होगा।"

"तो मुझे कुछ सैनिक दो, जिन्हें मैं बुद्ध का बध करने के लिए नियुक्त करूंगा।"

"अपने सैनिकों को अनुमति देता हूं, शास्ता ! आप जो उनसे करने को कहेंगे वे करेंगे।"

एक गौल्मिक को ऐसा ही आदेश देकर अजातशत्रु कारागार की ओर चल पड़ा। देवदत्त का प्रभाव उसके मस्तिष्क को विकृत कर चुका था। साम्राज्य के विस्तार की महत्वाकांक्षा ने उसे उद्धत बना दिया था। कारागार मे पहुचकर उसने देखा कि बिम्बिसार आनंदमग्न हो वातायन के पास खड़े है और गृध्रकूट पर्वत की ओर अपलक दृष्टि से देख रहे हैं। अजातशत्रु की पद-चाप से भी उनका ध्यान भग नहीं हुआ। अजातशत्रु को उनकी स्थितप्रज्ञता स्फुलिग-सी प्रतीत हुई। वह पास में खड़े सैनिक पर भड़क उठा :

"उस वातायन को क्यों खोल रक्खा है ? उसे बंद करो।"

पुत्र का स्वर सुनकर बिम्बिसार का ध्यान टूट गया। वे अपने पुत्र की ओर उन्मुख होकर बोले :

"तुम्हारा क्रोध तुम्हारी ही पराजय को सूचित करता है, वत्स ! राज्य तुम्हें मिल गया। अब क्यों असंतुष्ट हो ?"

"आप कारागार में पड़े हुए हैं, भगवान बुद्ध के ध्यान में तल्लीन हैं, फिर भी आप में लोभ विद्यमान है। मैं तो महत्वाकांक्षी हू ही। मेरा असतोष स्वाभाविक है।"

"मुझमें और लोभ ? मुझमें यदि लोभ होता, तो दर्शक को राजा नही बनाता, तुम्हें अग के मंडलेश्वर के पद पर प्रतिष्ठित नहीं करता और वर्षकार को प्रसन्न रखकर जीवन-पर्यंत मगध पर शासन करता। मुझमें

अब लौकिक वस्तुओं के लिए रंचमात्र भी लोभ नहीं रह गया है आवुस ! मैं तो स्वयं अनुभव करने लगा था कि मेरे जैसे विरक्त मनुष्य को आर्यपट्ट त्याग देना चाहिए।"

"इस प्रकार के विचार रखते हुए भी राजकोष का मोह आप नहीं त्याग सके है।"

"राजकोष का मुझे कोई मोह नहीं है। तुम्हें राज्य मिल गया, सैनिक शक्ति प्राप्त हो गयी, कुशल अमात्यो का सहयोग उपलब्ध हो गया और यदि अब तुम्हें राजकोष भी मिल जाय तो तुम निश्चय ही पथभ्रष्ट हो जाओगे, तुम्हारी महत्वाकांक्षा उन्माद में बदल जायेगी। सरलता से प्राप्त सत्ता निर्मूल वृक्ष की भाति होती है, जो पवन का मंद झोंका भी नही सभाल सकती।"

"तो क्या राजकोप आप अपने साथ ही ढो ले जाना चाहते है ?"

"नहीं, मैं तुम्हे दे जाऊंगा। अभी भी दे सकता हूं, यदि तुम मुझे दो वचन दे दो।"

"कैसे वचन ?"

"तुम देवदत्त का साथ छोड़ दोगे और हल्ल तथा बेहल्ल को क्षमा कर दोगे।"

"यह नही हो सकता।"—अजातशत्रु गरज उठा।

"अवश्य होगा।"—वर्षकार ने तत्क्षण वहां प्रवेश करते हुए कहा। पिता-पुत्र ने आश्चर्यचकित होकर वर्षकार को देखा। वर्षकार ने बिम्बिसार की अभिवंदना की और कहा : "मै वचन देता हूं, सम्राट् !"

"आप मुझे अब भी सम्राट् कहते हैं।"

"हां ! अभी अजातशत्रु का अभिषेक नही हुआ है।"

"अब तो आप सतुष्ट होंगे, महामात्य वर्षकार ? आपकी मनोकामना पूर्ण हो गयी।"

"कौन-सी मनोकामना ?"

"मुझे पदच्युत करने की।"

"मेरी ऐसी कोई मनोकामना नहीं थी। मै तो पूरे आर्यावर्त को एकछत्र के अधीन विकसित होते देखना चाहता हूं। जो इस मार्ग में बाधक

सिद्ध होगा, वही मेरा शत्रु होगा। यदि कुमार अजातशत्रु भी मेरे उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक होंगे, तो मैं इन्हें त्याग कर अपने मार्ग पर अकेला चल पड़ूंगा। मैंने सम्राट् को पदच्युत करने में योग दिया है, बिम्बिसार तो अब भी मेरे पूज्य हैं।"

"आप अपने वचन का निर्वाह कर सकेंगे ?"

"आपको मुझ पर विश्वास नहीं है ?"

"अवश्य है।"

"फिर क्यों पूछते हैं ?"

"अजातशत्रु को देख कर।"

"आप निश्चित रहिए। सिद्धांत एवं साध्य की प्राप्ति के निमित्त मैं किसी भी प्रकार के बंधन को तोड़ फेंकने में समर्थ हूं।"

"मैं आश्वस्त हुआ, वर्षकार ! यह रही कीलक। वासगृह के पूर्वी कोने में ध्यान से देखने पर गुप्त द्वार का आभास मिल जायेगा।"

"मैं आपका यह अनुग्रह भूल नहीं सकूंगा, सम्राट् ! अब मुझे आज्ञा दीजिए। पिता-पुत्र के वार्तालाप मे विघ्न डालने के लिए क्षमा चाहता हू।"

वर्षकार कीलक लेकर चले गये। उनके जाते ही अजातशत्रु दांत पीसता हुआ बोला :

"कान खोल कर सुन लीजिए। न तो मैं देवदत्त का साथ छोड़ूंगा और न हल्ल-बेहल्ल को क्षमा ही करूगा। आपने मेरे हाथ में कीलक न देकर मुझमें प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित कर दी है। अब मैं आपको भी क्षमा नहीं कर सकता।...प्रहरी !"

"आज्ञा श्रीमन्।"

"नापित से कहो कि इनके तलवे काट कर उनमें नमक छिड़क दे। इन्हें न तो एक बूंद जल दिया जाय और न एक दाना भोजन।" यह आदेश देकर अजातशत्रु पांव पटकता हुआ वहां से चल पड़ा।"

बद्धबिम्बिसार कुछ काल तक द्वार की ओर देखते रहे। उनकी आंखों में अश्रु भर आये। उन्होंने वातायन की ओर देखा, किंतु वह बंद था। निराश हो उसी ओर देखते हुए वे अवरुद्ध स्वर मे बोल उठे :

"हे करुणानिधान !"

"महाराज !"

"कौन ?"—बिम्बिसार बिना मुड़े ही बोले।

"मैं हूं, वर्षकार।"

"अब क्या लेने आये ?"

"मैं गया ही कब था ? मैं तो कुमार की प्रतिक्रिया देखने के लिए द्वार पर ही छिप गया था महाराज !"

"क्या है ?"

"मैंने जो कुछ किया है, देश के हित को दृष्टि में रख कर ही किया है। मेरा इसमें कोई निजी स्वार्थ नहीं है।"

"मैं जानता हूं। मुझे इसका दुःख भी नहीं है। मुझे तो एक बात की चिंता है।"

"वह क्या ?"

"अजातशत्रु को लोग पितृ-हंता कहेंगे। यह मैं नहीं चाहता।"

"अजातशत्रु जो कुछ आदेश दे गया है, उसका पालन नहीं किया जायेगा, महाराज ! मैंने कारागार के प्रहरियों में परिवर्तन कर देने का आदेश दे दिया है।"

"इससे क्या होगा ? अजातशत्रु पुनः लौट आयगा। वह बहुत उद्दंड है फिर भी मैं उसे प्यार करता हूं। उसे अपयश देना नहीं चाहता। क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता।"

वर्षकार मौन ही रहे। बिम्बिसार कभी वातायन की ओर तो कभी वर्षकार की ओर देखने लगते थे और अपने-आप विलाप करने लगते थे।

इधर अजातशत्रु क्रोधावेशित होकर मुखशाला में पहुंचा। कुलाजिन भी वहीं उपस्थित थे। अजातशत्रु ने धनंजय को बुला कर आदेश दिया :

"वज्जि-संघ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करो। वहां किसी दूत के हाथ संदेश भेजो कि मौक्तिक माल तथा सेचनक हाथी लौटा दिये जायं, अन्यथा वज्जियों का उच्छेद कर दूंगा।"

"धृष्टता क्षमा करें तो एक अनुरोध करूं।"—धनंजय ने विनम्र किंतु सुदृढ़ स्वर में कहा। अजातशत्रु ने धनंजय को ध्यानपूर्वक देखते हुए

अनुमति दी :

"हां, हां, कहो।"

"इस प्रकार का निर्णय लेने से पूर्व आचार्य वर्षकार का परामर्श ले लेना अनिवार्य है।"

"क्यों ? क्या मेरा आदेश पर्याप्त नहीं है ?"

"नहीं।"

"धनंजय !"

"श्रीमन् !"

"मैं तुम्हारा भविष्य नष्ट कर सकता हूं।"

"वह तो मात्र ईश्वराधीन है। किंतु, आपने यदि आचार्य की उपेक्षा की तो निश्चय ही आपका भविष्य अंधकारमय है।"

तभी एक प्रहरी ने आकर सूचना दी :

"प्रभो, कुमार उदायीभद्र बहुत व्यग्र हैं। लगता है, रोते-रोते प्राण दे देंगे।"

अजातशत्रु घबरा कर अपने पुत्र के पास दौड़ चला। सचमुच ही उदायीभद्र अविराम गति से रोता चला जा रहा था। अजातशत्रु ने लपक कर पुत्र को अपनी गोद में ले लिया और दासी से पूछा :

"इतना क्यों रो रहा है ?"

"इनकी अंगुली के घाव में पीव भर गया है। जब तक उसमें मुंह नहीं बनेगा तब तक कुमार का कष्ट दूर नहीं होगा।"

अजातशत्रु अपने पुत्र की व्यथा देख कर द्रवित हो उठा। भावावेश में आ कर उसने घाव वाली अंगुली अपने मुंह में रख ली। घाव फूट गया। पीव बाहर निकल आया। उदायीभद्र का रुदन बंद हो गया।

उस समय अजातशत्रु की माता कोशला देवी वहीं उपस्थित थीं। पुत्र के व्यवहार ने उनके हृदय पर भीषण प्रहार किया था। वे अवरुद्ध स्वर में बोलीं :

"पुत्र ! ठीक इसी प्रकार तुम भी अस्वस्थ हो गये थे। विचित्र संयोग देखो कि तुम्हारी अंगुली में भी घाव हो गया था। तुम्हारे पिता ने उसे चूस कर दूषित रक्त-पीव निकाल लिया था। आज तुम उसी पिता को कारा-

गार में डाल कर मृत्यु-दंड दे रहे हो। कहीं तुम्हारा पुत्र उदायीभद्र भी बड़ा होकर तुम्हारे साथ···"

"मां !"—अजातशत्रु गरज उठा।

"ठीक ही कह रही हूं, पुत्र ! कर्मफल इसी जन्म में मिल जाता है। सयोग और समय इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।"

"मां, मैं पातकी हूं।"—अजातशत्रु चीत्कार कर उठा। उसके मस्तिष्क में उदायीभद्र का भविष्य साकार होकर नृत्य करने लगा। वह उन्मादी की भांति चीखता हुआ बोला : "कोई है ? अरे दौड़ो और मेरे पिता को जीवित ले आओ। जो ऐसा करेगा उसे मैं संपूर्ण राज्य दान में दे दूंगा।"

अजातशत्रु का चीत्कार सुनकर बहुत-से लोग कारागार की ओर दौड़ पड़े। मार्ग में जो सुनता, वही भीड़ में सम्मिलित हो जाता। कारागार तक पहुंचते-पहुंचते बिम्बिसार को बचाने वालों की संख्या असंख्य हो गयी। अजातशत्रु भी धैर्य खोकर कारागार की ओर दौड़ पड़ा।

सम्राट् बिम्बिसार के कानों में बाहर के भयावह कोलाहल की ध्वनि सुनायी पड़ी। जिसकी उन्हें आशंका थी, वही होता देखकर वे मूर्च्छित-से होने लगे। वर्षकार वहीं थे। बिम्बिसार का मस्तिष्क घूमने लगा। वर्षकार जब तक दौड़ कर संभालें-सभालें तब तक बिम्बिसार धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े और अस्फुट स्वर में बोले :

"अब मैं जा रहा हूं, वर्षकार ! अजातशत्रु की रक्षा करना। वह मेरी हत्या करने आ रहा है। किंतु, मैं उसे पितृ-हत्या का कलंक नहीं लगने दूंगा।"

"मेरे पिता !"—अजातशत्रु कारागार का दृश्य देखकर चीत्कार कर उठा। बिम्बिसार के मुखमंडल पर असीम, अनिर्वचनीय शांति का अखंड साम्राज्य स्थापित हो गया।

देवदत्त ने बहुत-से सैनिकों को भगवान बुद्ध की हत्या करने के लिए भेजा। किंतु, वे सभी सैनिक भगवान के समक्ष पहुंचकर अपने शस्त्र-बल भूल गये। भगवान की करुणामय दृष्टि ने उन सैनिको का हिंस्र-भाव हर

लिया। वे सभी बुद्ध की शरण में रह गये।

देवदत्त को जब इस तथ्य की सूचना मिली, वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा। उसने स्वयं भगवान की हत्या करने का निश्चय किया। भगवान बुद्ध चले जा रहे थे कि देवदत्त ने उन पर शिला-खंड फेंक कर प्रहार किया। शिला-खंड ऊपर ही दो पत्थरों के बीच अटक गया। शिला-खंड की पपड़ी उछल कर भगवान के पांव में जा लगी। उस चोट से उनके पांव से रुधिर बहने लगा।

देवदत्त अपनी विफलता से अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। उसकी आंखों से अग्नि बरसने लगी। उसका विवेक नष्ट हो गया। वह पागल की भांति भागता हुआ हथसार में पहुंचा। वहां नालागिरि नामक मनुष्य-घातक चंड हाथी था। उस हाथी को देवदत्त ने उस पथ पर छुड़वा दिया, जिस पथ से भगवान बुद्ध पूर्वाह्न मे भिक्षुओं के साथ राजगृह में पिंडचार के लिए प्रविष्ट हुए।

भगवान बुद्ध को नालागिरि हाथी ने दूर से आते देखा। वह सूंड को खड़ा कर, प्रहृष्ट हो, अपने कान हिलाते हुए भगवान की ओर दौड़ा। उस भयावह हिंस्र पशु को आते देखकर भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को मार्ग से हटा ले जाना चाहा, किंतु भगवान स्थिर-चित्त हो, शांत भाव से आगे बढ़ते रहे। उनकी आंखों से करुणा बरसती रही।

नगर में कोलाहल मच गया। सब लोग त्राहि-त्राहि करते हुए अपने-अपने प्रासादों पर चढ़ गये।

किंतु, अचानक ही चमत्कार हुआ। ज्यों-ज्यों भगवान बुद्ध निकट आते गये, हाथी की गति मंद पड़ती गयी और भगवान के समक्ष पहुंच कर तो वह नितांत दीन बन गया। उसने सूंड़ को नीचे करके भगवान की चरण-धूलि ली। भगवान ने नालागिरि का स्पर्श किया और नालागिरि निस्पृह होकर हथसार में लौट गया।

लोग आनंद से विभोर हो उठे। देवदत्त राजगृह त्यागकर भाग खड़ा हुआ।

वैशाली में पुष्पपाल का अपूर्व स्वागत-सत्कार देखकर सरमा चकित रह गयी। उल्काचेल[1] पहुंचते ही सीमांत-सेना के नायक ने पुष्पपाल का अभिनंदन किया। नायक का नाम था रोहण। यद्यपि सरमा अत्यधिक अस्वस्थ थी और विभिन्न तथ्यों पर दृष्टिपात करने में असमर्थ थी, तथापि उससे यह बात छिपी नहीं रह सकी कि उल्काचेल के अधिकारी पुष्पपाल से सुपरिचित थे। उल्काचेल में एक दिन विश्राम करके पुष्पपाल अपनी बहन सरमा के साथ वैशाली के लिए चल पड़ा। पुष्पपाल को सम्मान देने के लिए साथ में थोड़े-से लिच्छवि सैनिक भी चल रहे थे।

वैशाली पहुंचते-पहुंचते सरमा की जिज्ञासा आशंका में परिवर्तित हो गयी। वैशाली पहुंचने के आठ-दस दिन बाद ही पुष्पपाल नगराध्यक्ष बना दिया गया। सरमा अपने भाई के पतन पर ग्लानि से भर गयी। वैशाली के बड़े-बड़े वैद्य उसकी चिकित्सा कर रहे थे। फिर भी उसके घाव में विशेष सुधार दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। पुष्पपाल के नगराध्यक्ष बनते ही सरमा मानसिक दृष्टि से भी अस्वस्थ हो गयी। दिन-प्रतिदिन उसकी दशा बिगड़ने लगी। पुष्पपाल चिंतित हो उठा। वह दिन-भर में कई बार अपनी बहन को देखने आता और उदास मन लौट जाता था।

उस दिन वैद्यराज सरमा की परीक्षा ले रहे थे। तभी पुष्पपाल भी वहां आ पहुंचा। उसने वैद्य से आतुर स्वर में पूछा :

---

१. आज का हाजीपुर।

"मेरी बहन कब तक स्वस्थ हो जायेगी भंते, अगदंकार ?"

"अभी समय लगेगा आर्य ! इसके घाव में विष व्याप गया है। और···"—वैद्यराज और कहकर रुक गये। पुष्पपाल ने घबराकर पूछा—"और क्या ?"

"और इधर कुछ दिनों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें संज्वर[1] हो आया है।"

"हे ईश्वर !"—पुष्पपाल धीमे स्वर में चीख उठा।

"किंतु, चिंता की बात नहीं है। यदि मैं इन्हे स्वस्थ नही कर सका तो कौमारभृत्य जीवक निश्चय ही निरोग कर देंगे।"

जीवक का नाम सुनते ही सरमा चौंक उठी। उसमें जीवन की आशा पुन: बलवती हो उठी। पुष्पपाल मौन ही बना रहा। वैद्य के चले जाने के पश्चात् उसने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा :

"वैद्य ने सत्य ही कहा है बहन ! निश्चय ही जीवक की ओषधि में अमृत की-सी शक्ति है। वे वैद्य नहीं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ दिन और देख लो। यदि प्रगति नहीं हुई तो तुम्हें राजगृह भेजने की व्यवस्था कर दूंगा।"

"भगवान बुद्ध कब पधारने वाले हैं ?"—सरमा ने क्षीण स्वर में पूछा।

"आज ही आने वाले है।"

"एक बात पूछूं ?"

"हां, हां।"

"मैं भगवान बुद्ध की शरण में चली जाऊं तो आपको दु:ख तो नहीं होगा ?"

"दु:ख तो अवश्य होगा, किंतु व्यवधान भी नहीं बनूंगा।"

"अब मुझे ओषधि की आवश्यकता नहीं रही।"

"क्यों ?"

"मुझमें जीने की इच्छा नहीं है। अनजाने ही जो भूल हो गयी है, उसे जान लेने के परचात् प्रायश्चित्त कर लेना अनिवार्य हो गया है।"

"कैसी भूल ? कैसा प्रायश्चित ? यह सब क्या बोल रही हो ?"

---

१. क्षय रोग

"आप यह सब क्या कर रहे हैं, भ्राता ? वैशाली मगध की शत्रु है। फिर भी आप यहां देवता की भांति पूजित हैं।"

"ओह···अब समझा ! तुम अपने लिए नहीं, मेरे लिए प्रायश्चित्त करना चाहती हो ?"

"नहीं, अपने पाप के लिए। यदि मैं आपके साथ न होती तो कदाचित् आप मगध के शत्रु नहीं बनते।"

"यह तुम्हारा भ्रम है, सरमा ! तुम तो मुझे मार्ग में मिल गयी। तुम न मिलतीं तो मै वही करता, जो आज कर रहा हूं।"—पुष्पपाल ने हसकर कहा। किंतु, उसकी हंसी में असीम वेदना थी, जिसे सरमा अनुभव नहीं कर सकी।

"आप ऐसे तो थे नहीं।"

"समय का रंग विचित्र होता है; किसी को रंगकर सुंदर एवं सजीव बना देता है और किसी पर धब्बा लगा देता है।"

"ठीक है भैया ! आप अपने मार्ग एवं समय का अनुसरण कीजिए। मुझे अपने मार्ग पर जाने दीजिए।"

"तुम्हें कहीं नही जाना है।"—पुष्पपाल ने स्नेहपूर्वक डांटते हुए कहा : "मैं क्या कर रहा हूं, उसका निर्णय समय ही करेगा। तुम्हें मेरे लिए प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं है।"

"अब मैं यहां···"

"सरमा।"—पुष्पपाल सात्विक क्रोध से चीख उठा : "मैं तुम्हारा अग्रज हूं, यह मत भूलो।"

"यह संबंध नहीं भूल पाती हूं, तभी तो क्लेश होता है। मेरा भाई अपनी मातृभूमि मगध का शत्रु···"

"सरमा !"—पुष्पपाल पुन: चीख उठा। पता नहीं, क्रोध से या दुःख से, उसकी आंखें भर गयीं और वह दीन स्वर में बोल उठा : "सरमा, मुझ पर दया करो। इस तरह की बातें मुझसे मत करो, अन्यथा सत्य कहने पर मैं लाचार हो जाऊंगा, जिससे मगध का ही अहित होगा। मैं··· तुमको कैसे समझाऊं ? कैसे···।" इसके आगे पुष्पपाल नहीं बोल सका और वहां से शीघ्रतापूर्वक चला गया। सरमा अवाक् होकर देखती रह

गयी; किंतु, कुछ समझ नहीं सकी। तभी बाहर कोलाहल एवं जयकार का दबा हुआ स्वर उभरने लगा।

"सरमा पर्यंक से उठकर गवाक्ष की ओर जाने लगी कि तभी दासी दौड़ती हुई आकर बोली :

"यह आप क्या कर रही हैं ?"

"अम्म !"

"आज्ञा देवि !"

"मुझे गवाक्ष तक पहुंचा दे। भगवान इस मार्ग से जा रहे हैं। उनके दर्शन कर जीवन सार्थक कर लूं। शीघ्रता कर भामा।

भामा दासी ने सहारा देकर सरमा को गवाक्ष तक पहुंचा दिया। सरमा ने देखा, भगवान बुद्ध सैकड़ों भिक्षुओं के साथ मंद गति से चले जा रहे हैं। सरमा धन्य हो गयी। भगवान बुद्ध के मुखमंडल से शाश्वत शांति की अजस्र रश्मियां प्रस्फुटित होती-सी जान पड़ती थीं। लगता था, मानो द्वादशादित्य की ज्योति सिमटकर भगवान के शिरोभाग में वर्तुलाकार हो उठी हो। उनके दर्शन मात्र से सरमा के मन-प्राणों में असीम स्फूर्ति भर गयी। उसकी इच्छा हुई कि वह दौड़कर भगवान के चरणों में लोट जाय। वह सुध-बुध खोये, तन्मय बनी रही और भगवान आंखों से ओझल हो गये। कोलाहल का स्वर भी मंद से मंदतर होता गया। भामा ने कहा :

"पर्यंक पर चलकर विश्राम कीजिए। भगवान चले गये।"

सरमा यंत्रवत् चलकर पर्यंक पर लेट रही। भामा परिचर्या में लग गयी। कुछ काल पश्चात् सरमा ने अत्यधिक मंद स्वर में पुकारा :

"भामा !"

"आज्ञा स्वामिन्।"

"आज्ञा नहीं, एक अनुरोध है।"

"ऐसा मत कहिए देवि ! आपकी आज्ञा ही मेरे लिए वरदान है।"

"मेरी सहायता कर सकेगी ?"

"आप जैसी स्वामिनी के लिए अपने प्राण तक उत्सर्ग कर सकती हूं।"

"वचन देती है ?"

"वचन देती हूं।"

"मुझे यहां से अपने यहां ले चल।"

"यह आप क्या कहती है ?"

"तू वचन दे चुकी है। मै यहां एक पल भी नहीं रह सकती।"

"किंतु···"

"किंतु-परंतु कुछ नहीं। आज मध्य रात्रि में प्रासाद के पिछले द्वार पर शकट की व्यवस्था कर रखना।"

"आपकी जैसी इच्छा।"—भामा ने बुझे स्वर में कहा।

दोनों मौन हो रहे।

भामा ने अपना वचन पूरा कर दिखाया। अपररात्र का दूसरा मुहूर्त व्यतीत होते-होते सरमा भामा की कुटिया में जा पहुंची। नगर के एक किनारे पर भामा की कुटिया स्थिति थी। वह वहां अपने मद्यप पति के साथ रहती थी। भामा ने कुटिया को भली भांति स्वच्छ करके सरमा के योग्य बना रक्खा था, फिर भी वहां मद्यप पति का प्रभाव स्पष्ट था। मद्यप अभी लौटा नही था।

यात्रा के श्रम ने अस्वस्थ सरमा को निश्चेतन बना दिया था। वहां पहुंचते ही सरमा खट्वा पर लेट गयी। भामा ने धीरे से पुकारा :

"स्वामिन् !"

"कहो भामा !"

"अब क्या होगा ? यहां आपकी चिकित्सा कौन करेगा ?"

"कृष्ण वासुदेव ! अब मेरा रोग निश्चय ही दूर हो जायेगा।··· तुम्हारा पति कहां है ?"

"किसी मद्य की दूकान में पड़ा होगा। एक विपत्ति वह भी है।"

"क्यों ?"

"जब तक उसके मस्तिष्क में मद्य चढ़ा रहता है, तब तक वह अपने आपको महोत्तरक[1] समझता है। आपको यहां देखकर वह निश्चय ही उत्पात करेगा।"

"हे ईश्वर !"

"चिंता न करें स्वामिन् ! मैंने उसकी व्यवस्था कर रक्खी है।"

---

१. वज्जि-सघ की शासन-सभा का सभापति।

"क्या ?"

"यह आपके जानने योग्य बात नही है। आप विश्राम करें।"

सरमा क्षण-भर मौन रहकर बोली :

"भगवान् कहां ठहरे है ?"

"सारन्दद चैत्य मे। क्यों ?"

"एक बार उनकी चरण-धूलि मिल जाती तो ये प्राण सुगमता से निकल जाते।"

"ऐसा क्यों सोचती हैं, आर्ये ! अभी आपके समक्ष जीवन का असीम आनंद-क्षेत्र पड़ा हुआ है।"

"हा अम्म ! मैं देख रही हूं वह असीम आनंद-क्षेत्र।"

"आप अपने रोग के कारण अत्यधिक निराश···" अभी भामा ने वाक्य पूरा भी नही किया था कि बाहर से लटपटे स्वर में गीत की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। भामा वहां से लपककर बाहर पहुंची। सामने अंधकार में डोलती-लड़खड़ाती छाया-सी आकृति आती दिखायी पड़ी। भामा को द्वार पर खडी देखकर आकृति बोल उठो :

"क् क् कौन ?···भ भ भामा।"

"हां प्रियतम।"

"ऐ···हुक्···म···मैं और पि···प्रियतम ?···आज···तु तु तुमने मद्य पिया है, य···या मैंने ? ऐं ?"

"आज तुम्हें देखकर मेरा मन व्याकुल हो उठा है। जी चाहता है कि आज मैं तुम्हें प्यार करूं।"

"अ···अ अ···और कल जो मद्य···पीकर आया था···त त तब तुमने क् क्···क्यों मुझसे···ल ल···लड़ाई की थी ? ऐं ? तभी तो मैंने तु तु तुम्हें पीटा था।"

"आज मैंने तुम्हारे लिए एक कुंभ मद्य की चोरी की।"

"कहां···क् क् कहां है ?"—मद्यप उल्लसित होकर घर के भीतर दौड़ा। भामा ने उसकी बांह पकड़ ली और उसे मद्य के कुंभ के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया।"

भामा घृणा से देखती रही और उसका पति कुम्भ रिक्त करने में

व्यस्त हो गया। कुछ काल पश्चात् वह अचेत होकर सो गया। भामा चुपचाप सरमा के निकट जा बैठी। सरमा जगी हुई थी।

"क्या तुम्हारा पति प्रत्येक दिन मद्य पीकर इतनी रात गये घर लौटता है ?"

"इतना ही नही, घर लौटकर मुझे अच्छी तरह पीटता भी है।"

"क्यो ?"

"घर मे मद्य नही मिलता इसीलिए।"

"किंतु, आज तो तुमने···।"

"इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नही था।"

"यह तो तुम नरक का जीवन व्यतीत करती हो। प्रतिरोध क्यो नही करती ?"

"कोई लाभ नही।"

सरमा मूक हो गयी।

प्रात.काल होते ही पुष्पपाल को सरमा के अतर्धान होने की सूचना मिली। वह क्षणभर किंकर्तव्यविमूढ बना रह गया। दुख से उसका हृदय फट गया। रुग्ण बहन की स्थिति की कल्पना करके वह वेदना से तडप उठा। उसने सभी दास-दासियो से पूछ-ताछ की, किंतु, व्यर्थ। चारो दिशाओ मे सैनिक दौडाये गये। सध्या होते-होते सभी सैनिक निराश लौट आये। पुष्पपाल अपने कक्ष मे बद होकर बच्चो-सा फूट-फूट कर रोने लगा।

बहुत काल पश्चात् वह उठ खड़ा हुआ। उसका मस्तिष्क सुन्न हो चुका था, उसकी वेदना सीमा पर पहुच चुकी थी और उसके आंसू समाप्त हो चुके थे। वह चुपचाप सारन्दद चैत्य की ओर चल पड़ा। नगर में महामारी फैली हुई थी। चारों ओर भयावह दृश्य था।

भगवान बुद्ध के वैशाली में पधारने से उत्साह, जीवन एवं आशा की लहर दौड़ गयी थी। फिर भी, थोड़ी-थोड़ी दूर पर शव-यात्रा का दृश्य दिखायी पड़ ही जाता था।

पुष्पपाल इस सत्य से अनजान बना हुआ सारन्दद चैत्य की ओर चलता चला जा रहा था। ज्यों-ज्यों वह चैत्य के निकट पहुचता गया, त्यों-त्यों आने-जाने वालों की भीड़ बढ़ती गयी। उस भीड़ में भी वह अपने को एकाकी अनुभव करता हुआ चलता रहा। रोते-रोते उसकी आखें सूजकर लाल हो गयी थीं; वह अब भी मन-ही-मन रो रहा था। राजा, कुमार, श्रेष्ठी, दास आदि विभिन्न श्रेणियों के लोग आ-जा रहे थे। पुष्पपाल सब कुछ अनदेखी करता हुआ सारन्दद चैत्य के मुख्य द्वार पर आ ही पहुचा था कि किसी ने उसके कंधे पर धीरे से हाथ रख दिया। पुष्पपाल ने चौंककर देखा तो उसे लगा, मानो वह कोई स्वप्न देख रहा हो। सामने मुस्कराता हुआ जीवक खड़ा था।

"अ...आप ?"—पुष्पपाल अपनी आंखों पर अविश्वास करता हुआ-सा बोला।

"हां बंधु ! भगवान बुद्ध को वैशाली बहुत प्रिय है। महामारी की सूचना मिलते ही उन्होंने मुझसे भी वैशाली आने को कहा।...आप सकुशल तो हैं ?" जीवक का अंतिम प्रश्न सुनकर पुष्पपाल की वेदना पुनः उभर आयी। किंतु वह संयमित स्वर में बोला :

"कुशल ही कुशल है, आर्य !...अनुला कैसी है ?"

"अनुला भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गयी बंधु !"

"ऐं !"—पुष्पपाल चौंक उठा।

"हां, इसके अतिरिक्त उसके समक्ष अन्य मार्ग नहीं था।"

"किंतु क्यों ?"

"लंबी कहानी है। कभी निश्चित होकर मिलिए तो बताऊंगा।"

"आप कब तक यहां ठहरेंगे ?"

"अभी तो हूं। आर्य महानाम के उद्यान में ठहरा हूं। कभी आइए।"

"आऊंगा। अवश्य आऊंगा, भंते !"

"मुझे महामात्य का संदेश भी देना है।"—जीवक ने कान के पास मुंह ले जाकर धीमे स्वर में कहा। पुष्पपाल स्वप्नवत् बोलता रहा :

"अवश्य आऊंगा।" जीवक को आश्चर्य हुआ। उसने पुष्पपाल को ध्यानपूर्वक देखते हुए पूछा :

"क्या बात है ? आप अत्यधिक चिंतित दीखते हैं।"

"अपना-अपना भाग्य है, भंते जीवक !"

"आपको अतीत कष्ट दे रहा है।"

"मेरा संपूर्ण जीवन ही कष्टमय है।"

"आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए। आज आप अकेले मगध का जितना बड़ा उपकार कर रहे हैं, उतना शत सहस्र सैनिक मिलकर भी नहीं कर पायेंगे।"—जीवक ने अंतिम वाक्य बहुत धीमे स्वर में कहा। पुष्पपाल की असीम वेदना उसकी मुस्कराहट में कौंध गयी। वह उसी प्रकार मुस्कराता हुआ बोला :

"अतीत का कलंक यश के उत्क्रोश से ही आच्छादित हो सकता है। एकांत-सेवा तो स्वर-मात्र की विरोधिनी है।"

"आत्म-तोष भी तो कोई वस्तु है। बंधु !"

"आत्म-तोष लेकर मैं करूंगा ही क्या ? मेरी मरणासन्न बहन मेरा घर त्याग कर चली गयी, क्योंकि उसकी दृष्टि में मैं मगध का शत्रु हूं।"

"आपकी बहन ? सरमा ?"—जीवक अचानक चौंक उठा। पुष्पपाल पूर्ववत् स्वर में बोलता रहा :

"वह पर्यंक से भी नहीं उठ सकती थी, सो न जाने आज कहां उसका शव पड़ा होगा…किंतु"—अचानक पुष्पपाल जीवक की बात स्मरण करके चौंककर पूछ बैठा : "किंतु आपको उसका नाम कैसे मालूम हुआ ? क्या आप उसे जानते हैं ?"

"पहले यह बताइए कि उसे क्या हुआ था और वह कब से अंतर्धान है ?"

"जब मैं राजगृह से वैशाली आ रहा था, वह मगध के सीमांत पर मृत-

वत् पड़ी थी। शृगाल घात में बैठे थे, कुछ तो उसके पांव का मांस भी नोच कर ले भागे। भाग्य से मैं समय पर पहुंच गया। येन-केन-प्रकारेन उसे वैशाली ले आया। यहां के वैद्यों ने कहा कि उसके घाव में विष व्याप गया है। एक वैद्य को संज्वर की भी शंका हुई।...किंतु आप उसे..."

"यह मत पूछिए, बंधु ! इतना जान लीजिए कि उसका मोह भी मुझे वैशाली खीच लाया है।...आप एक काम कीजिए। आप तो नगराध्यक्ष हैं?"

"जी हां।"

"नगर में घोषणा करवा दीजिए कि कौमारभृत्य जीवक किसी भी रोगी या रोगिणी की किसी भी समय निःशुल्क चिकित्सा करने को प्रस्तुत हैं। जो रोगी उनके निवासस्थान—महानाम के एकशालिक में आने में असमर्थ हो, वह उन्हें सूचित कर दे। कौमारभृत्य जीवक स्वयं उस रोगी के घर पहुच जायेंगे।"

पुष्पपाल उल्लसित हो उठा। उसने सोत्साह यह कार्य संपन्न करवाया। महानाम के एकशालिक में सहस्रों की भीड लगी रहने लगी। बहुत-से अशक्य रोगियों एवं रोगिणियों के यहां से जीवक के लिए निवेदन आने लगा। जीवक दिन-रात चिकित्सा में संलग्न रहने लगा। सहस्रों रोगी आये, सैकड़ो के घर स्वयं जीवक दौड़ा हुआ गया। किंतु, सरमा नहीं मिली। जीवक फिर आशान्वित होकर अपने कार्य में व्यस्त रहा।

अपररात्र का तीसरा मुहूर्त व्यतीत हो रहा था। जीवक दिन-रात के अनवरत श्रम से अति क्लांत होकर अभी पर्यंक पर लेटने ही जा रहा था कि नया स्वर सुन कर चौंक उठा। वह अपने पर्यंक पर से उछल कर इस प्रकार नीचे कूद पड़ा, मानो बिच्छू ने डंक मार दिया हो। बाहर से एक ही वाक्य बारबार सुनायी पड़ रहा था :

"कौमारभृत्य जीवक की जय हो !"

जीवक भागता हुआ बाहर पहुंचा। अलिंद के नीचे एक नारी-मूर्ति खड़ी थी। उल्का का धुंधला प्रकाश उस नारी के मुख-मंडल पर पड़ा रहा था। जीवक अत्यधिक हतोत्साहित होकर बोला :

"तुम तो स्वस्थ दीखती हो; दिन के समय भी आ सकती थी।"

"मैं अपने लिए नहीं आयी हूं, भंते !"

"फिर किसके लिए ?"

"अपनी स्वामिनी के लिए।"

"ओ ! क्या हुआ है उन्हें ?"

"वे आज संध्या से संज्ञाहीन पड़ी हैं। लगता है, उनमें अब प्राण नहीं रहे।"

"तब मेरे पास क्या लेने आयी हो ? तुम्हें समय पर आना चाहिए था।"

"तब तक मैंने आपकी घोषणा नहीं सुनी थी, भंते ! और आपके योग्य शुल्क देने की मुझमें क्षमता थी नहीं कि आरंभ में आपसे ओषधि लेने आती।"

"क्या तुम्हारी स्वामिनी के पास भी शुल्क नहीं था ?"

"नहीं।"

"तो अब क्या हो सकता है ? जाओ, अपनी स्वामिनी को, वैशाली की आंशिक प्रथा के अनुसार, जीव-जंतुओं एवं पक्षियों के सुपुर्द कर दो।"

"एक बार आप उन्हें देख लेते, प्रभो ! मैं मूर्ख भला क्या जानूं कि मेरी स्वामिनी जीवित है या मृत। आपने बहुतों का उद्धार किया है। मुझ पर भी दया कीजिए। मैं जीवनपर्यंत आपकी दासी बनी रहूंगी।"

"मेरा जाना व्यर्थ है। जाकर अपनी स्वामिनी का अंतिम संस्कार संपन्न करो।"—जीवक ने झुंझलाहट से भरकर कहा और अपने प्रकोष्ठ में आकर द्वार बंद कर लिये।

वह पर्यंक पर लेट रहा। उसकी आंखों के समक्ष भांति-भांति के चित्र उभरने लगे; किंतु सभी चित्रों को दासी की विचित्र छाया आच्छादित कर लेती। जीवक ने घोषणा के पश्चात् किसी भी व्यक्ति को निराश नहीं किया था। आज उसने एक असहाय अबला को निराश कर दिया। यह सत्य जीवक की चेतना से चिपक गया। जीवक की आंखों पर उतरी हुई नींद उड़ गयी। अचानक उसे आभास मिला कि सरमा का शव उसे पुकार रहा है।···

जीवक दौड़ता हुआ बाहर निकल आया। दासी निराश होकर चली

जा रही थी। जीवक ने ऊंचे स्वर में पुकारा :

"ठहरो, मै ओषधियां ले लू।"

जीवक जब नगर के किनारे स्थित दासी की कुटिया में पहुंचा तब ब्राह्ममूहूर्त आरंभ हो गया था। कुटिया के भीतर पांव रखते ही उसने देखा, एक पुरुष अर्धनग्न स्थिति में सज्ञाहीन पड़ा था।

"यह कौन है ?"

"मेरा पति ! मद्यप है।"—दासी ने ग्लानियुक्त स्वर में कहा।

"तुम्हारी स्वामिनी किधर है ?"

"भीतर चले।"

"यह घर तुम्हारा है या तुम्हारी…"

"मेरा है प्रभो !"

भीतर पहुंचकर जीवक ने देखा, सचमुच ही एक शव स्वच्छ आच्छादनक से ढका हुआ खट्वा पर पड़ा था।

"दीपक की लौ बढ़ाओ।"—जीवक ने आदेश दिया और मृतवत् नारी का हाथ आच्छादनक से बाहर निकालकर उसकी परीक्षा की। कई पल तक वह गभीर भाव से परीक्षा करता रहा। अचानक उसकी आंखों में मुस्कराहट खिल उठी। उसने दासी से कहा :

"आच्छादक को कटिप्रदेश तक हटा दो।" दासी ने ज्यों ही आच्छादक को हटाया कि जीवक चौक पड़ा—

"सरमा !"

"हे ईश्वर !"—दासी भयभीत हो चीत्कार-सी कर उठी। सरमा संज्ञाहीन पड़ी रही। जीवक विह्वल होकर सरमा के मुख, हाथ, पांव प्रभृति को टटोलने लगा। उसकी आखें भर आयी। वह किंचित् उपालंभ के स्वर में बोला :

"यह तुमने क्या कर लिया प्रिये ?"

दासी आश्चर्य एव भय से कभी जीवक को तो कभी सरमा को देख रही थी। जीवक ने साहस एवं संयम के साथ चिकित्सा आरंभ की। कदाचित् सरमा के स्थान पर कोई अन्य होता तो चिकित्सा सरल एवं सुनिश्चित होती। फिर भी मनोयोगपूर्वक ओषधि का प्रयोग करता गया।

सूर्योदय हुआ। मध्याह्न बीता। चिकित्सा चलती रही। अंततोगत्वा जीवक को सफलता मिली। संध्या के आगमन के साथ ही सरमा की चेतना लौट आयी। आंखें खुलते ही उसकी दृष्टि जीवक पर पड़ी। उसे लगा, मानो वह स्वप्न देख रही हो। भ्रम-निवारण के हेतु उसने कुटिया में चारों ओर दृष्टिपात किया। देखा, भामा आनंदातिरेक से हंस रही थी और उसकी आंखों से अश्रुधार बरस रही थी; जीवक उल्लसित होकर पुकारता जा रहा था :

"सरमा !···मेरी बावली सरमा !···तुम मेरे ही लिए जीवित हो उठी।"

"मेरे प्रभो !"—सरमा के मुंह से अस्फुट ध्वनि निकली। भामा नाचती, उछलती, हंसती हुई कुटिया के बाहर भाग गयी।

जीवक ने झुक कर सरमा के पीत अधरों को धीरे से चूम लिया।

वैशाली से महामारी का प्रकोप दूर हो गया। भगवान् बुद्ध चारिका करते हुए पुनः राजगृह में जा पहुंचे। मगध की राज्य-क्रांति ने वैशाली में उत्ते-जना की लहर उत्पन्न कर दी। अजातशत्रु की महत्वाकांक्षा से प्रत्येक लिच्छवि परिचित था। वज्जि गण-संघ के नायक गण जानते थे कि अजात-शत्रु चंड है। अतएव, वज्जि-संघ की सैन्य-शक्ति का पुनर्गठन अनिवार्य हो गया।

इस विषय पर विचार करने के लिए जिस दिन गण-संस्था का समा-

गम होने वाला था, उसी दिन कौमारभृत्य जीवक सरमा के साथ राजगृह की यात्रा के लिए प्रस्तुत हो रहा था। अजातशत्रु के सम्राट् बनने की सूचना पाकर जीवक राजगृह लौटने के लिए व्यग्र हो उठा था। जीवक ने वैशाली की अपूर्व सेवा की थी। लिच्छवि उपकार का महत्त्व जानते थे। वे कृतघ्नता को सबसे बड़ा पाप मानते थे। यही कारण था कि जीवक को संमान एवं उपायन[१] देने के लिए गण-संस्था के समागम के अवसर पर उसे सथागार में आमंत्रित किया गया था। स्वयं गणपति चेटक निमंत्रण देने आये थे।

संथागार में गण-सदस्यों के अतिरिक्त दर्शकों की भीड़ भी उमड़ पड़ी थी। विचित्र संयोग था। संथागार में जहां एक ओर मगध के विश्व-विख्यात अगदंकार कौमारभृत्य जीवक को सम्मान एवं उपायन दिया जाना था, वहीं मगध के विनाश की योजना भी बनायी जानी थी।

गणपति राजा चेटक ने संस्था का कार्य आरंभ करते हुए कहा :

"भंतेगण ! सुनें। भगवान बुद्ध के आशीर्वाद एव विख्यात अगदंकार कौमारभृत्य जीवक के अथक परिश्रम से वैशाली महामारी के चंगुल से बच निकली। कौमारभृत्य जीवक जैसे पुरुष, भगवान बुद्ध की ही भांति, किसी देश विशेष की सीमा में आबद्ध नही होते। वैशालीवासियों के प्रति इनका स्नेह ही इस सत्य का प्रमाण है। वास्तव में, इन्होंने वैशाली को नया जीवन प्रदान किया है। अतएव, वैशाली की गण संस्था इनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है और इसके संकेत स्वरूप उपायन में कुछ वस्तुएं भेंट करती है। मेरा विश्वास है कि गण-संस्था के सम्मानित सदस्य अपनी सहमति प्रकट करेगे।"

चारों ओर से 'हां' की ध्वनि गूंज उठी। "किसी को कोई आपत्ति भी है ?"—गणपति ने ऊचे स्वर में प्रश्न किया। कहीं से कोई ध्वनि नहीं उठी। गणपति ने कहा :

"सब गण चुप है। इससे मेरी धारणा है कि कौमारभृत्य जीवक के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन में सब गण मेरे साथ सहमत हैं।"

जीवक को सम्मान देने के पश्चात् सम्राट अजातशत्रु की चेतावनी

---

१. भेंट

पर विचार-विमर्श आरंभ हुआ। गणपति ने घोषणा की :

"भंतेगण ! सुनें। आप जानते ही हैं कि मेरी पुत्री चेल्लना का विवाह स्वर्गीय सम्राट बिम्बिसार से हुआ था। अजातशत्रु जैसे चंड ने अपने पिता की हत्या कर दी। चेल्लना के दोनों पुत्र और मेरे दौहित्र हल्ल और बेहल्ल को पूर्व से ही अजातशत्रु की योजना का आभास मिल गया था। अतएव, वे दोनों भाई अवसर देखकर सेचनक हाथी पर चढ़कर वैशाली भाग आये। साथ में मगध की विख्यात मौक्तिकमाल भी लेते आये। अब अजातशत्रु ने वैशाली को विधिवत धमकी दी है कि हल्ल-बेहल्ल के अतिरिक्त सेचनक हाथी तथा मौक्तिकमाल मगध को लौटा दिये जायं अन्यथा···"

"अन्यथा ?"—गण सभा में उपस्थित बहुत-से गण क्रुद्ध स्वर में एक-साथ बोल उठे। गणपति ने कहा :

"अन्यथा परिणाम घातक होगा।···अब आप निर्णय करें कि शरण में आये हुए हल्ल तथा बेहल्ल को उनकी संपत्ति के साथ चंड अजातशत्रु के हाथ में सौप दिया जाय या···"

"कदापि नहीं।"—सब गण एक स्वर में बोल उठे।

"आप सब गण का यही निर्णय है ?"

"हां।"

"कोई गण इस निर्णय के विरुद्ध भी हैं ?"

"······।"

गणपति ने तीन बार यह प्रश्न पूछा और जब विरोध में एक व्यक्ति भी नहीं बोला तब उन्होंने कहा :

"संघ इस निर्णय को स्वीकार करता है। तभी वह चुप है, ऐसा मैं धारण करता हूं।"

इसके पश्चात् सभा में हर्षध्वनि छा गयी। लिच्छवि तरुण उत्साह में आकर ऊंचे स्वर में बोलने लगे। जीवक मौन होकर उन हृष्ट-पुष्ट तेजस्वी लिच्छवियों का उत्साह देखता रहा। उसके मस्तिष्क में भगवान बुद्ध का स्वर गूंज रहा था—'देखो भिक्षुओ ! लिच्छवियों की परिषद को देखो। भिक्षुओ ! इस लिच्छवि-परिषद् को त्रायस्त्रिंश[1] की परिषद् समझो।"

1. देवताओं।

गणपति ने हाथ का संकेत किया। संथागार का कोलाहल शांत हो गया। गणपति ने कहा :

"भंतेगण ! सुनें। मगधपति चंड अजातशत्रु का आग्रह अस्वीकार कर देना निश्चय ही भयावह परिणाम उपस्थित कर देगा। आपने देखा कि अजातशत्रु ने अंग को विच्छिन्न कर दिया। अब वह वैशाली पर आघात करेगा। हम लोगों को चाहिए कि अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लें और किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रस्तुत रहें। किंतु, इस अधिकरण[1] पर विचार करते समय अनर्गल बातें होने की आशंका है। गोपनीयता का निर्वाह भी आवश्यक है। यदि संघ उचित समझे तो इस बात के उद्‌वाहिका[2] द्वारा निर्णय के लिए सेनापति महालि, उपसेनापति सिंह और सेनानी कपिल को चुन ले। जिन गणों को मेरा प्रस्ताव उचित लगे, वे चुप रहें, जिन्हें अनुचित लगे, वे बोलें।"

इस प्रस्ताव के स्वीकृत किये जाने के पश्चात् महालि ने बोलने की अनुमति मांगी। अनुमति मिलने पर महालि ने कहा :

"भंतेगण ! सुनें। मगध के विरुद्ध वैशाली का पिछला युद्ध आपको स्मरण होगा। आप सिंह का पराक्रम एवं युद्ध-कौशल भी नहीं भूले होंगे।"

"हमें स्मरण है।"—कई गण एकसाथ बोल उठे। महालि बोलते रहे : "मैं वृद्ध हो गया। अब मैं अपने तरुणों को युद्ध-विद्या की शिक्षा तो दे सकता हूं, किंतु युद्ध का कुशल निरीक्षण स्फूर्तिपूर्वक नहीं कर सकता। मेरा प्रस्ताव है कि गण-संस्था आज से सिंह सेनापति को वज्जि-संघ का सेनाध्यक्ष नियुक्त करे।"

संथागार में पुनः कोलाहल मच गया। जो जहां बैठा था, वहीं से कुछ न कुछ विचार प्रकट करने लगा। तभी गणपति ने हाथ का संकेत किया। सभा में शांति व्याप गयी। कुछ गण इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे। अतएव सम्मति के लिए छंद[3] लेने का निर्णय किया गया। गणपति ने कहा :

---

१. विवाद-विषय

२. प्रवर-समिति

३. वोट

"भंतेगण ! सुने। प्रस्ताव पर मतभेद है। अतएव छंद-शलाका[1] उठवाने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नही है। आयुष्मान् गण-गणक बतायें कि आज के सन्निपात मे कितने सदस्य उपस्थित हैं।"

गण-गणक ने तत्क्षण उठकर कहा : "आठ सौ बयासी।"

शलाका ग्रहायक[2] दो अलग-अलग डालियों में दो रंगों की आठ सौ बयासी शलाकाएं लेकर सदस्यो के मध्य घूम गये। सिंह के पक्ष में सात सौ पचास छंद पड़े और विरोध में एक सौ पचास। सात सदस्यों ने किसी ओर मत नहीं दिया।

सिंह सेनापति वज्जि-सघ के सेनाध्यक्ष घोषित कर दिये गये। सभा में उत्साह एवं उल्लास छा गया।

जीवक उसी दिन उल्काचेल के लिए प्रस्थान कर गया। सरमा पूर्णतया स्वस्थ हो गयी थी। अतएव उसने भी अश्व से ही यात्रा करने का निश्चय किया। पांच सौ लिच्छवि सैनिक उन दोनों को सम्मानपूर्वक विदा करने के लिए उल्काचेल तक आये। जीवक लिच्छवियो के शौर्य, त्याग, आतिथ्य-सत्कार एव कठोर जीवन का अनुभव कर आश्चर्यचकित रह गया। वह समझ गया कि इन्हें परास्त करना सरल नही है।

मध्याह्न का समय था। भुक्तास्थानमंडप में सम्राट् अजातशत्रु क्षिप्र गति से चक्कर काट रहे थे। उनके मुखमंडल पर प्रतिशोध की भावना प्रज्वलित

१. वोट का काट
२. बोट की शलाका वितरण करने वाले।

हो रही थी, उनकी आंखों से चिनगारियां फूट रही थीं। रह-रहकर उनके दात कटकटा उठते थे।

सेनाध्यक्ष सुनीथ, अश्व-सेनापति धनंजय, सिंहरथ और नायक नन्दि-सेन चुपचाप खड़े थे। अजातशत्रु यदा-कदा द्वार की ओर देखने लग जाता थे और खीझकर पुनः चक्कर काटने लगता था। अंत में ऊबकर अजात-शत्रु ने कुछ कहना चाहा कि महामात्य वर्षकार आ पहुचे।

"सम्राट् ने मुझे स्मरण किया है ?"

"आपने सुना नही कि कोशलराज प्रसेनजित ने हमारा काशी राज्य अपने प्रदेश के अधीन कर लिया है ?"

"ऐसा तो होना ही था सम्राट् ! काशी राज्य आपकी माता कोशला देवी को विवाह के अवसर पर 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप में प्राप्त हुआ था। अब आपकी माता इस लोक में रही नही। और निश्चय ही उनकी मृत्यु का कारण आप ही हैं। स्पष्ट ही कोशलराज प्रसेनजित ने प्रतिशोध की भावना से काशी को अधीनस्थ किया है।"

"मेरे लिए यह असह्य स्थिति है महामात्य ! शीघ्रातिशीघ्र कोशल पर आक्रमण करने की योजना बनायी जाय।"

"कोशल पर नहीं सम्राट्, काशी पर।"

"हां, हां, काशी पर। युद्ध की घोषणा करवाइए। मैं कोशलराज की शक्ति को धूल मे मिला दूगा।"

"आपकी महत्वाकांक्षा अभिनंदनीय है महाराज ! हमें निश्चय ही संपर्ण काशी महाजनपद को अधीनस्थ कर लेना चाहिए। किंतु, जिस प्रकार मगध संपूर्ण आर्यावर्त्त में एकछत्र शासन स्थापित करना चाहता है, उसी प्रकार कोशल भी स्वप्न देख रहा है। उसकी शक्ति भी अपार है। कहीं ऐसा न हो कि पराजय का कलंक लेकर हमें लौटना पड़े।"

"मुझे कलंक की चिंता नहीं है आचार्य ! मैं स्वयं शक्ति-पुंज हूं। जिसे विनष्ट होना है, वही मुझसे टकराने की धृष्टता करता है। आप युद्ध की घोषणा कीजिए।···सेनाध्यक्ष सुनीथ !"

"आज्ञा सम्राट् !"

"आपको अपने यंत्रों के अन्वेषण में सफलता मिल गयी ?"

"हां श्रीमन् !"

"किंतु, इन यंत्रों का प्रयोग काशी-अभियान में नहीं होगा।"—वर्षकार ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"क्यों ?"—अजातशत्रु उत्तेजित हो उठे।

"मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता। इसके अतिरिक्त इन यंत्रों को बनाने में अभी समय लगेगा। तब तक प्रतीक्षा करना घातक हो सकता है।"

"अच्छी बात है। हम सामान्य सैन्य-बल से ही कोशलराज को पराजित करेंगे। मगध की सुरक्षा का दायित्व किस पर होगा ?"

महामात्य बोले :

"मैं स्वयं यहां रहूंगा। नन्दिसेन और धनंजय के नेतृत्व में तीस सहस्र सैनिक मगध की रक्षा करने में समर्थ होंगे क्यों धनंजय ?"

"निस्संदेह आचार्य !"

"हमें अपने शाश्वत शत्रु वज्जि-संघ को नहीं भूलना चाहिए।"—अजातशत्रु ने शंका प्रकट की। महामात्य ने तत्क्षण उत्तर दिया :

"वज्जि गण-संघ अभी इधर दृष्टि उठाने का साहस नहीं करेगा। महामारी ने वैशाली की शक्ति विच्छिन्न कर दी है। वह अभी अपनी सैन्य-शक्ति संगठित कर रहा है।"

"पुष्पपाल अपने दायित्व का निर्वाह कर रहा है ?"—अजातशत्रु ने किंचित् शंका के स्वर में पूछा। वर्षकार ने प्रशंसा के स्वर में कहा :

"उसने तो अपनी निष्ठा एवं विवेक से मुझे चमत्कृत कर दिया है। उसका कथन है कि सिंह सेनापति को समस्त वज्जि गण-संघ की सेना का विश्वास प्राप्त करने में अभी कम से कम एक वर्ष का समय लग जायेगा।"

"सुंदर !"

"कल संध्याकाल जीवक भी वैशाली से आ पहुंचे।"

"वे मुझसे मिले नहीं ? उन्हें मेरे साथ काशी-अभियान पर चलना चाहिए।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"—महामात्य ने कहा।

राजगृह ही नहीं, संपूर्ण मगध में उत्साह का ज्वार उठने लगा। सहस्रों तरुण स्वेच्छा से सेना में सम्मिलित होने लगे। समृद्ध गृहपतियों, सार्थवाहों एवं श्रेष्ठियों ने प्रसन्नतापूर्वक राजकोष भर दिया। मगध-गौरव की गरिमा ने नागरिकों में शौर्य की शिखाएं प्रदीप्त कर दी।

प्रबल पराक्रमी सम्राट् अजातशत्रु के नेतृत्व में जब मगध की विशाल सेना काशी की ओर अग्रसर हुई, तब सचमुच ही दिशाएं कांपने लगीं, धूल से आकाश ढंक गया, अश्व की हिनहिनाहट एव हस्तिसेना की चिंघाड़ से वायुमंडल भयावह हो उठा। तूर्य-निनाद से नागरिकों के भी अंग फड़कने लगे। रथ की घरघराहट और पदाति की पदचाप से पृथ्वी हिलने लगी।

महाराज प्रसेनजित ने कल्पना भी नहीं की थी कि मगधपति अजातशत्रु इतनी शीघ्र आक्रमण करने आ पहुंचेगा। वे कौशाम्बी से सेना लेकर पहुंचे-पहुंचे, तब तक अजातशत्रु ने काशी को घेर लिया था। दिन-भर के घमासान युद्ध ने ही प्रसेनजित को पराजय का आभास दे दिया। उनकी आधी से अधिक सेना काल का ग्रास बन गयी। अचानक स्वयं उनके प्राणों पर भी संकट आ पड़ा। अपने अंगरक्षकों सहित वे तीन ओर से घिर गये। शत्रु-पक्ष में असंख्य सैनिक थे। दूर-दूर तक शत्रु-सेना के सैनिक ही दीख रहे थे। शत्रु-सेना शनैः-शनैः प्रसेनजित की ओर सिमटती आ रही थी। अंगरक्षकों ने प्रसेनजित को भागने का परामर्श दिया। अन्य मार्ग भी नहीं था। प्रसेनजित बीस सैनिकों के साथ युद्ध-क्षेत्र से भाग निकले।

इधर काशी पर अजातशत्रु का आधिपत्य स्थापित हो गया और उधर प्रसेनजित खिन्न, क्लांत, श्रांत एवं निष्प्राण होकर अपनी राजधानी श्रावस्ती की ओर चले जा रहे थे। प्रसेनजित घोर वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे। अतएव युद्ध एवं सुदीर्घ कष्टमय यात्रा के कारण वे अत्यधिक कातर हो गये थे।

ब्राह्म मुहूर्त में वे श्रावस्ती नगर के निकट पहुंच गये। वे अश्व पर चढ़े चले जा रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि उद्यान में जा पड़ी। एक षोडशी पुष्प तोड़ने का प्रयत्न कर रही थी। जिस डाल में पुष्प था, वहडाल षोडशी की पहुंच से परे थी। षोडशी उछल-उछल कर प्रयत्न करती जा रही थी किंतु डाल उसकी पकड़ में नहीं आ पा रही थी। महाराज प्रसेनजित मुग्ध

होकर वह दृश्य देखते रहे। अचानक उन्हें कुछ विचार आया। उन्होंने अपने अंग-रक्षकों को धवलगृह चले जाने का आदेश दिया और वे स्वयं चुपके से उद्यान में प्रविष्ट हो गये। उस दृश्य ने उनकी समस्त क्लांति हर ली।

युवती प्रसेनजित के आगमन से अनजान अपने प्रयत्न में व्याप्त रही। प्रसेनजित उस युवती को देखते रहे और बेसुध होते रहे। युवती के अंग-प्रत्यंग से लावण्य छिटक रहा था। जब वह पुष्प तोड़ने के लिए ऊपर उछलती तब प्रसेनजित का वृद्ध मन भी उद्वेलित हो उठता। षोडशी उन्मत्त सौंदर्य की साक्षात्, सजीव प्रतिमा-सी लग रही थी। ऊपर उछलते समय सुगढ़ नितंब की रेखाएं प्रसेनजित के हृदय को विदीर्ण कर देतीं। प्रसेनजित अधिक काल तक अपने पर नियंत्रण नहीं रख सके। उन्होंने आगे बढ़कर अपने धनुष से डाली को नीचे झुका दिया और पुष्प तोड़कर उसे षोडशी के जूड़े में लगा दिया। षोडशी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देखती रह गयी। सुध लौटने पर उसे प्रसेनजित की धृष्टता अप्रियकर लगी, किंतु प्रसेनजित की वेश-भूषा देखकर वह भय से कुछ प्रतिवाद नहीं कर सकी। प्रसेनजित ने मुस्कराकर पूछा :

"तुम्हारा नाम ?"

"मल्लिका।···किंतु···अ···आ···आप···कौन···हैं ? आपने··· ऐसी अभद्रता···"

"बहुत सुंदर ! अद्भुत ! जैसा तुम्हारा रूप है, वैसा ही नाम और वैसी ही वाणी है। मेरी संपूर्ण क्लांति एवं निराशा विलीन हो गयी।" —प्रसेनजित ने मल्लिका के मदिरायत नयन में देखते हुए कहा। उनका स्वर कांप रहा था।

मल्लिका भागने लगी तो प्रसेनजित ने उसकी बांह पकड़ ली। मल्लिका भय से पीली पड़ गयी। प्रसेनजित ने मदनातुर स्वर में कहा :

"अब तुम मुझसे भाग नहीं सकतीं। मेरे साथ चलो।"

"क···क···कहां ?"

"धवलगृह में।"

"एं ?"—मल्लिका अर्धमूर्च्छित-सी हो गयी। प्रसेनजित ने उसे अश्व पर लाद लिया। अश्व धवलगृह की ओर उड़ चला।

श्रावस्ती में दोनों समाचार एकसाथ फैल गये—महाराज प्रसेनजित की पराजय एवं उनके द्वारा श्रावस्ती नगर के मालाकार श्रेणी के मुखिया की पुत्री मल्लिका का अपहरण। थू-थू, छी-छी की ध्वनि से श्रावस्ती नगर हिल उठा। मालाकार श्रेणी का मुखिया क्रोध से आग बन गया। तत्क्षण ही वह कोशल के महामात्य दीर्घकारायण के प्रासाद में जा पहुंचा :

"यह अन्याय है महामात्य ! राजा ही यदि इस तरह के अनाचार में प्रवृत्त होगा तो आचार एवं धर्म की रक्षा कौन करेगा ?"

"अब तो जो होना था सो हो चुका।"—दीर्घकारायण ने शांत स्वर में कहा। मालाकार गरज उठा :

"किंतु अभी अनाचारी को दंड नहीं मिला है। आप इस देश के महामात्य हैं। राजा को दड देने की व्यवस्था कीजिए; अन्यथा मैं देश की समस्त श्रेणियों का आह्वान करूंगा।"

"तुम्हारा क्रोध स्वाभाविक है, बंधु मालाकार ! किंतु यह भी सोचा है कि यदि महाराज प्रसेनजित को यथोचित दड दिया जाय तो तुम्हारी पुत्री का क्या होगा ?"

"क्या होगा ?"

"वह जीवन-भर उपेक्षिता, पतिता एवं निस्सहाय बनकर भटकती रहेगी।"

"तो क्या मैं अपनी प्रतिष्ठा धूल में मिलते देखकर भी चुप बैठा रहूं ?"

"तुम्हारी प्रतिष्ठा धूल में नहीं मिलेगी बंधु ! इसका मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं।"

"किंतु किस प्रकार ?"

"कोशल महाजनपद का महामात्य घोषणा करता है कि आज से तुम महाराज प्रसेनजित के श्वसुर हुए।"

'आर्य महामात्य !"

'हां बंधु ! मल्लिका कोशल की पट्ट महिषी बनेगी—प्रसेनजित की वासना-तृप्ति का मात्र साधन नहीं। अब तो प्रसन्न हो ?"

"यह आपकी सदाशयता है महामात्य ! आपने धूल को स्वर्ण में परि-

र्वतित कर दिया। आपकी जय हो !"

"अब तुम जा सकते हो। इस संबंध की विधिवत घोषणा आज-कल में कर दी जायेगी।"

"आपकी जय हो महामात्य !"

"घर लौटते समय मार्ग में युवराज विरुद्धक का प्रासाद पड़ेगा। उनके समक्ष भी अपना रोष प्रकट करते जाना। किंतु सावधान, मेरी योजना उन पर प्रकट मत करना। किसी को यह बात मालूम भी न हो कि तुम मेरे पास आये थे।"

"आपके आदेश का सहर्ष पालन करूंगा आर्य !"

वहां से मालाकार सीधे युवराज विरुद्धक के पास पहुंचा। विरुद्धक क्रोध में भरा बैठा था। मालाकार ने ज्यों ही न्याय की मांग की कि विरुद्धक गरज उठा :

"संपूर्ण कोशल महाजनपद की प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी और तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा की चिंता पड़ी है !"

"राज्य की प्रतिष्ठा बनती-बिगड़ती रहती है, युवराज ! किंतु, कन्या का सतीत्व नष्ट होने पर उसे मृत्यु भी नहीं बना पाती। मैं पिता हूं। आप मेरी वेदना की कल्पना नहीं कर सकते।"

मालाकार की बात सुनकर विरुद्धक क्रोध से उन्मत्त हो उठा। वह आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और अपनी बलिष्ठ भुजा हवा में उछालता हुआ बोला :

"मैं तुम्हें और अपने पिता महाराज प्रसेनजित, दोनों को ही काल का ग्रास बना दूंगा। मेरे सामने से दूर हो, अन्यथा इसी खड्ग से तुम्हारा शिरोच्छेद कर दूंगा।" उसी क्षण एक गंभीर वाणी गूंज उठी :

"बहुत सुंदर !" मालाकार और युवराज ने चकित होकर देखा, महामात्य दीर्घकारायण चले आ रहे थे। उन्होंने निकट आकर कहा : "बहुत सुंदर, युवराज ! क्या ही अद्भुत संयोग है ! कोशल के वर्तमान महाराज ने मालाकार की प्रतिष्ठा का हरण कर लिया और कोशल के भावी सम्राट् इस बेचारे दुर्बल एवं सत्वहीन का शिरोच्छेदन करने जा रहे हैं। अहा ! कैसा अपूर्व, अनुपम न्याय का साम्राज्य कोशल में स्थापित है !"

"किंतु आप यह क्यों नहीं देखते महामात्य कि कोशल पर कितना बड़ा संकट आ पड़ा है !"

"उस संकट को इस मालाकार ने आमंत्रित नहीं किया है। और यह सब देखने-सुनने के लिए मुझे युवराज के निर्देश की अपेक्षा नहीं है। प्रत्युत मैं युवराज को परामर्श देने आया हूं कि स्नेह एवं सहानुभूति का व्यवहार ही शासक को लोकप्रिय बनाता है। युवराज को चाहिए कि वे लोकप्रिय बनने का प्रयत्न करें।...मालाकार !"

"आज्ञा आर्य !"

"तुम्हारी पुत्री का नाम ?"

"मल्लिका।"

"मल्लिका कोशल की पट्ट महिषी बनेगी।"

"महामात्य !"—विरुद्धक प्रायः चीख-सा उठा। महामात्य ने शांत स्वर में कहा :

"हां युवराज ! और मेरी इस घोषणा को प्रजा एवं राजा के समक्ष कार्य रूप देने का दायित्व आपका हुआ। तुम जा सकते हो मालाकार !"

मालाकार चला गया। युवराज ने आश्चर्यचकित होकर महामात्य से पूछा :

"यह आपने क्या किया ?"

"आपका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसी मार्ग पर चलकर आपकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हो सकती है।"

युवराज विरुद्धक दीर्घकारायण के रहस्य से अनभिज्ञ होता हुआ भी प्रसन्न हो उठा। प्रसेनजित कामांध हो रहे थे। युवराज के प्रस्ताव को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मल्लिका कोशल की पट्ट महिषी घोषित कर दी गयी। संपूर्ण कोशल महाजनपद मे युवराज विरुद्धक की न्यायप्रियता की चर्चा होने लगी।

किंतु, विरुद्धक मन-ही-मन जलता-उबलता रहा। मल्लिका को पट्ट-महिषी के पद पर प्रतिष्ठित करने की तिथि घोषित कर दी गयी। ज्यों-ज्यों समारोह की तिथि निकट आती गयी, विरुद्धक उद्विग्न होता गया। अजात-शत्रु की विजय ने विरुद्धक के मन में विद्वेष एवं प्रतिहिंसा की भावना

उत्पन्न कर दी थी। विचित्रता यह थी कि उसका विद्वेष एवं प्रतिहिंसा का भाव प्रसेनजित के प्रति था, अजातशत्रु के प्रति नहीं। मल्लिका-कांड ने विरुद्धक का रहा-सहा धैर्य भी समाप्त कर दिया। वह विक्षुब्ध मन से अपनी माता वासवखत्तिया के पास पहुंचा। राजमाता वासव चन्द्रशालिका में उदास मन बैठी थीं। विरुद्धक आते ही फट पड़ा :

"मां, अब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूंगा।"

"क्या नहीं सुनेगा पुत्र !"

"जब कभी मैं नाना के दर्शन करने कपिलवस्तु जाना चाहता हूं, तुम रोक देती हो।"

"कुछ कारणवश ही तो रोक देती हूं वत्स ! तुम्हारे नाना अब शाक्य गणसंघ के महोत्तरक नहीं रहे। तुम्हारा स्वागत-सत्कार वे कर नहीं पायेंगे।"

"नहीं मां ! अब तो मैंने वहां जाने का निश्चय कर लिया है। मेरा संदेश लेकर दूत प्रस्थान भी कर चुका है। कल प्रातःकाल मैं यात्रा करूंगा।"

"यह तुमने क्या किया ?"

"मां, आजकल मेरा मन यहां लगता नहीं है। यदि तुम मेरी यात्रा में विघ्न उपस्थित करोगी तो यहां रहकर मैं विक्षिप्त हो जाऊंगा।"

"सम्राट् काशी-अभियान पर पुनः प्रस्थान करने वाले हैं। ऐसी स्थिति में राजधानी छोड़कर तुम्हारा…"

"सम्राट् शीघ्र ही पराजित होकर लौट आयेंगे मां ! तुम चिंता मत करो।"

"विरुद्धक !"—वासवखत्तिया गरज उठी। विरुद्धक मुस्कराकर राजमाता की ओर देखता हुआ बोला :

"क्या है मां ? मुझ पर क्रुद्ध क्यों होती हो ?"

"सम्राट् तुम्हारे पिता भी हैं। इसके अतिरिक्त तुम युवराज हो और युवराज का दायित्व राजा से कम नहीं होता है।"

"किंतु आदेश तो राजा का ही चलता है मां ! मुझे प्रभुत्वहीन पद नहीं चाहिए।"

"फिर भी तुम्हें ऐसे अवसर पर यहां उपस्थित रहना चाहिए।"

"किसलिए ? क्या मालाकार की पुत्री को पट्ट महिषी के पद पर प्रतिष्ठित होते देखने के लिए ? क्या पराजित वृद्ध सम्राट् का षोडशी के साथ प्रणय-प्रलाप सुनने के लिए ?…नही मां, अब तुम मुझे नही रोक सकती। मैं सकल्प कर चुका हूं। मुझसे यह धिक्कृत समारोह नही देखा जायेगा।"

वासवखत्तिया मौन हो गयी। भविष्य की आशंकाओं से पीड़ित होकर वह मन-ही-मन चीत्कार कर उठी। प्रातःकाल होते ही विरुद्धक अपने अग-रक्षकों एव परामर्शदाता अम्बरीश के साथ शाक्य गण-संघ की राजधानी कपिलवस्तु की ओर चल पड़ा।

मध्याह्न के समय विरुद्धक कपिलवस्तु पहुंचा। नगर-द्वार पर नगराध्यक्ष ने उसका विधिवत स्वागत किया। राजकीय अतिथि-गृह मे उसके ठहरने की व्यवस्था कर दी गयी। संध्याकाल तक बहुत-से लोग उससे मिलने आये। विरुद्धक ने मिलने वालों के मुख पर एक विचित्र उपेक्षा का भाव परि-लक्षित किया। जो भी उससे मिलने आता, उसे वह विनम्रतापूर्वक नमस्कार करता था। किंतु, एक व्यक्ति ने भी विरुद्धक को प्रणाम नही किया। विरुद्धक इस व्यवहार से क्षुब्ध हो उठा। वह स्वयं अहंकार की शिखा था। अंत मे उसने एक शाक्य अधिकारी से पूछ ही दिया :

"क्यों भते ! मै तो सबको प्रणाम करता हूं, किंतु मुझे कोई भी प्रणाम

नहीं करता। ऐसा क्यों ?"

"क्योंकि आप दौहित्र के नाते यहां आये हैं, कोशल महाजनपद के युवराज के नाते नहीं। अतएव, आपको अपने पूज्य जनों को प्रणाम करना ही चाहिए।"

"क्या मैं यहां किसी से श्रेष्ठ नहीं हूं ?"

"हैं।"

"फिर मुझे तो किसी ने भी प्रणाम नहीं किया ?"

"जो आपसे छोटे हैं, वे सब अभी बाहर गये हुए हैं।"

"जब मैं दौहित्र के नाते यहां आया हूं तब मुझे राजकीय अतिथि-गृह में क्यों ठहराया गया है ? मुझे तो अपने नाना के गृह में ठहरना चाहिए था।"

"आप इस राज्य के दौहित्र होने के अतिरिक्त कोशल के युवराज भी हैं। अतएव, आपकी सुख-सुविधाओं का ध्यान तो रखना ही था।"

इस विचित्र तर्क से विरुद्धक की जिज्ञासा शांत नहीं हुई, प्रत्युत और बलवती हो उठी। उसने अपने नाना के व्यवहार में भी शिष्टाचार की गंध का अनुभव किया। तब उसे रह-रहकर अपनी मां का स्मरण हो आने लगा : 'मेरी मां मुझे यहां आने से क्यों रोकती थी ? क्या वह इन लोगों के रुक्ष व्यवहार से परिचित थी, इसीलिए ? या कोई और रहस्य है ?'— विरुद्धक के मन में रात-भर भांति-भांति के प्रश्न उठते रहे। कपिलवस्तु से भी उसका मन उखड़ गया। पल पहाड़ बन गया। प्रातःकाल होते ही उसने अपने अंगरक्षकों को प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

विरुद्धक अन्यमनस्क-सा वहां से चल पड़ा। प्रायः आधा योजन जाने पर उसे मालूम हुआ कि वह अपना खड्ग कपिलवस्तु के अतिथि-गृह में ही भूल आया है। तत्क्षण ही उसने अम्बरीश को खड्ग ले आने का आदेश दिया। अम्बरीश अपना अश्व दौड़ाता हुआ पुनः अतिथि-गृह जा पहुंचा। वहां का दृश्य विचित्र था। विरुद्धक का खड्ग बाहर अलिंद में फेंका हुआ था। बहुत-सी दासियां अतिथि-गृह को दूध से धो रही थीं। अम्बरीश इस अपमान से तिलमिला उठा। किंतु, उसने संयम से काम लिया। वहां उस क्षण कोई राजकर्मचारी नहीं था। उसने अतिथि-गृह के भीतर प्रविष्ट

होकर एक दासी से पूछा :

"क्या राजकीय अतिथि-गृह यही है ?"

"हा, यही है।"—दासी ने झल्लाकर उत्तर दिया।

अम्बरीश ने अनजान बनने का अभिनय करते हुए कहा—

"मुझे यहा दो-तीन दिन ठहरना था।"

"पहले दासी-पुत्र का कलक तो धोने दीजिए।"

"तुम्हारा तात्पर्य ?"

"अभी इसमे कोशल का युवराज ठहरा हुआ था। इसलिए पूरी अट्टालिका को दूध से धोने का राज्यादेश प्राप्त हुआ है। कम-से-कम दिन-भर तो इसे धोने मे लग ही जायेगा।"

"किंतु क्यों ? कोशल के युवराज तो निश्चय ही इक्ष्वाकु वंश के..."

दासी बीच मे ही खिलखिला कर हसने लगी। अम्बरीश विस्फारित आखो से उसे देखता रहा। दासी हसती हुई बोली :

"नही भते ! वह तो दासी-पुत्र है।"

"ऐं! कोशल का युवराज और दासी-पुत्र ? यह तुम क्या कहती हो ?"

"सत्य ही कहती हू आर्य ! कोशल-राज प्रसेनजित को शाक्य कुमारी से विवाह करने की इच्छा हुई। उनका सदेश पाकर शाक्य गण-सघ के राजा एव अमात्यगण अत्यधिक चितित हो उठे, क्योकि शाक्य लोग अपने से निम्न कुल मे सबध स्थापित नही करते है। किंतु कोशल-राज का शाक्य गण-सघ पर भी आधिपत्य है, अतएव कोशल-राज के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का अर्थ होता शाक्य गण-सघ का विनाश !"

"फिर क्या हुआ ?"

"होता क्या ?"—दासी हसती हुई बोली : "एक दासी-पुत्री थी—वासवखत्तिया। बहुत ही सुदर थी। उसी से प्रसेनजित का विवाह कर दिया गया। और यह विरुद्धक उसी दासी-पुत्री वासवखत्तिया का पुत्र है।"

अम्बरीश ने पूरी कथा विरुद्धक को जा सुनायी। विरुद्धक की आखो के समक्ष पड़ा रहस्य का आच्छादनक हट गया। रक्त के स्थान पर उसकी शिराओ मे अग्नि तरल होकर बहने लगी। स्वभाव से ही वह उद्दड था। इस घटना ने उसे प्रतिशोध का प्रज्वलित पुंज बना दिया। वह तत्क्षण ही

कपिलवस्तु जा पहुंचा।

उसे पुनः आया हुआ देखकर शाक्यगण घबरा गये। विरुद्धक अश्व उछालता हुआ अतिथि-गृह के प्रांगण में जा पहुंचा। उसने अपनी आखों से अतिथि-गृह को दूध से धोये जाते देखा। उसकी आंखों से चिनगारियां बरसने लगी। वह गरज उठा :

"कपिलवस्तु के नागरिको ! कान खोलकर मेरा सकल्प सुन लो। जिस स्थान को आज तुम अपवित्र मानकर दूध से धुलवा रहे हो, उस स्थान को मै तुम्हारे ही रक्त से धुलवाऊंगा।"

इसके पश्चात् वह वहा एक क्षण के लिए भी नही रुका। शाक्यगण भयभीत स्थिति मे खड़े ही रह गये और विरुद्धक वहा से हवा हो गया।
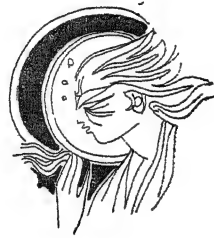
महाराज प्रसेनजित दूसरी बार भी अजातशत्रु से पराजित हो गये। उनकी आशा पर पानी फिर गया। कोशल की सेना छिन्न-भिन्न होकर भाग खड़ी हुई। प्रसेनचित भी अपने प्राण लेकर भागे। इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग भी नही था।

इधर श्रावस्ती मे महाराज प्रसेनजित के आगमन के पूर्व ही उनकी पराजय का समाचार फैल गया था। परम वीर महाराज महाकोशल ने अपने पराक्रम से कोशल महाजनपद की जिस प्रतिष्ठा एवं प्रभुत्व को ख्याति एवं विस्तार के शिखर पर पहुंचा दिया था, वह प्रसेनजित के हाथ पड़कर मिट्टी में मिल गया था। श्रावस्ती के नागरिकों के दुःख की सीमा नही थी।

युवराज विरुद्धक को स्वर्ण अवसर हाथ लग गया। शाक्यों का रक्त प्रवाहित करने के लिए वह व्यग्र था। प्रसेनजित के सब अमात्य विरुद्धक के प्रासाद में एकत्र थे। विरुद्धक उनसे कह रहा था :

"महाराज अभी लौटे नहीं हैं। उनकी अनुपस्थिति में ही उन्हें पदच्युत कर देना हितकर होगा।"

"यदि उनके आगमन पर प्रजा उनके पक्ष में हो जाय तो ?"—प्रसेनजित के एक अमात्य मृगधर ने शंका प्रकट की। प्रसेनजित के अमात्य-मंडल में दीर्घकारायण के बाद श्रीवृद्ध तथा मृगधर दो शक्तिशाली अमात्य थे। श्रीवृद्ध ने मृगधर की शंका का निवारण करते हुए कहा :

"मैं भली भांति जानता हूं, बंधु मृगधर, प्रजा को प्रसेनजित से वितृष्णा हो गयी है। हां, महामात्य दीर्घकारायण का भय अवश्य है। जब तक वे हम लोगों का साथ नहीं देते, तब तक महाराज प्रसेनजित को पदच्युत करना असंभव ही प्रतीत होता है।"

"उन्हें तो मैं समझ ही नहीं पाता।"—विरुद्धक ने आश्चर्य के स्वर में कहा : "कभी तो लगता है कि वे मेरे पक्ष में हैं और कभी महाराज के अनन्य भक्त बन जाते हैं। फिर मुझमें इतना साहस नहीं है कि उन्हें अपने विचार से अवगत करा सकूं। विचित्र व्यक्ति हैं !"

"किंतु, अब तो साहस करना ही होगा युवराज ! समय नष्ट करने का अर्थ अपनी योजना को तिलांजलि देना होगा।"—श्रीवृद्ध ने विनम्र स्वर में कहा।

"यदि उन्होंने सहयोग देना अस्वीकार कर दिया तो !"—मृगधर ने पुनः शंका प्रकट की। विरुद्धक उबलकर बोला :

"तो क्या होगा ! शेष सब अमात्य मेरी ओर हैं, प्रजा मेरा साथ देगी और आवश्यकता पड़ने पर मैं मगधपति अजातशत्रु से संधि कर लूंगा।"

"फिर भी हम सफल नहीं होंगे युवराज !"—श्रीवृद्ध ने दृढ़ स्वर में कहा : "महामात्य दीर्घकारायण को अकेला समझकर उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मैं उन्हें भली भांति जानता हूं। उनके बुद्धि-बल के समक्ष हमारी समस्त योजनाएं धरी-की-धरी रह जायेंगी।"

"तो क्या करना चाहिए ?"—विरुद्धक ने खीझकर पूछा। श्रीवृद्ध ने

तत्क्षण उत्तर दिया :

"आपको महामात्य से निवेदन करना चाहिए।"

"मुझे ?"

"हां, आप युवराज हैं। अधिक-से-अधिक आपका निवेदन अस्वीकार कर देंगे। वे आपका कोई अहित नहीं कर सकते। किंतु, क्रांति के पूर्व ही यदि हम लोगों का नाम प्रकट हो गया तो अनर्थ हो सकता है।"

विरुद्धक लाचार होकर महामात्य के प्रासाद में पहुंचा। महामात्य दीर्घकारायण ने उसे देखते ही कहा :

"पधारिए युवराज ! निर्णय के पश्चात् महामात्य का परामर्श कदाचित् निरर्थक ही होगा।"

युवराज विरुद्धक निष्प्रभ हो गया। वह किसी विध अपने भावों पर संयम रखता हुआ बोला :

"मैंने तो कोई निर्णय नहीं लिया है महामात्य !"

"मेरे लिए राज्य का कोई भेद रहस्य में समावृत नहीं है। मैं तो वियूथ अमात्य हूं। फिर भी अपने अनुभवी सहयोगियों को परामर्श दूंगा कि राजद्रोह की योजना नगर से बाहर बनती है और नगर में कार्यरूप ग्रहण करती है।"

"जब आप सब कुछ जानते ही हैं, तब तो मेरा कुछ कहना भी व्यर्थ है।"

"आपके मुख से कुछ भी सुनकर मुझे संतोष ही प्राप्त होगा युवराज !"

"मैं आपसे आपका सहयोग प्राप्त करने आया हूं।"

"आपके साथ मैंने असहयोग ही कब किया ?"

"कदाचित् आप मेरा आशय नहीं समझे।"

"आपका आशय ही नही, उद्देश्य भी समझ रहा हूं युवराज ! आपको विनाश के मार्ग पर अग्रसर होने में प्रोत्साहन देकर सहयोगियों की पंक्ति में खड़ा होने की अपेक्षा उस मार्ग पर चट्टान बनकर स्थित हो जाना मैं अधिक उत्तम सहयोग मानता हूं।"

"इस प्रकार तो मैं जहां-का-तहां पड़ा रह जाऊंगा।"

"ऐसी आशंका नही है। अभी मध्यरात्रि व्यतीत हो चुकी है। चारों

ओर अंधकार है। बस, ब्राह्म मुहूर्त होते ही आप चल पड़िए। मैं क्या, समय स्वयं आपका मार्ग आलोकित कर देगा।"

"तो आपका यही परामर्श है?"

"निस्सदेह ! प्रत्युत आपके उपयुक्त मात्र यही मार्ग है।"

"अच्छी बात है महामात्य ! मैं ब्राह्म मुहूर्त की प्रतीक्षा करूंगा। तब तक हम लोगों का यह वार्तालाप अंधकार में ही भटकता रहे।"

"आप निश्चित रहिए।"

युवराज विरुद्धक निराश होकर अपने सहयोगियों के बीच चला गया। महामात्य दीर्घकारायण के परामर्श से उसे विश्वास तो मिला, किंतु धैर्य जाता रहा।

महाराज प्रसेनजित एकाकी ही श्रावस्ती पहुंचे। उनकी आशा, विश्वास, यहां तक कि जीने की इच्छा भी समाप्त हो गयी। उन दिनों श्रावस्ती के जेतवन में भगवान बुद्ध चारिका करते थे। प्रसेनजित को एकाकी आते हुए देखकर भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद को दया आयी। आनद भिक्षाटन करके लौट रहे थे। प्रसेनजित कुछ दूर पर ही अश्व से उतर पड़े और आनंद के पास पैदल पहुंचे। आनंद ने करुण स्वर में कहा :

"मालूम हुआ कि तुम पराजित हो गये।"

"हां भंते ! मेरा दुर्भाग्य कोशल का विनाश लाकर रहेगा।"

"ऐसा नही है राजन् ! भगवान ने सत्य ही तुम्हारी प्रशसा की है।"

"क्या कहा है भगवान ने ?"—प्रसेनजित ने उल्लसित होकर पूछा।

आनंद शांत स्वर मे बोले :

"भगवान ने तुम्हारी पराजय का समाचार सुनकर कहा कि राजा मागध अजातशत्रु पाप-मित्र है और राजा प्रसेनजित कल्याण-मित्र। प्रसेनजित अपनी पराजय से दुःखी है।"

"अच्छा ? भगवान मेरा इतना ध्यान रखते हैं ? मेरा अहोभाग्य !"

आनंद क्षण-भर मौन रहकर बोले :

"राजन् !"

"आज्ञा भते !"

"एक काम करो। अजातशत्रु चंड है, पराक्रमी है, किंतु विवेकहीन है। उसे छल से पराजित करो।"

"कूटनीतिज्ञ वर्षकार तो सदा ही उसके पीछे छाया की भांति लगा रहता है। उसके समक्ष तो छल..."

"तब तुम्हें मालूम नहीं है। वर्षकार इन दिनों मगध में है।"

"अच्छा ?"

"हां ! तुम सार्थवाह का रूप ग्रहण करो। साथ में कुछ सहस्र शकट ले लो और उन पर सैनिकों को छिपा दो। इस प्रकार नगर में प्रविष्ट होने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी और रात्रिकाल में अचानक ही अजातशत्रु को बंदी बनाकर श्रावस्ती ले आओ।"

"अद्भुत भंते ! आश्चर्य !! आपका सुभाषित मुझे निश्चय ही सफलता प्रदान करेगा।"

प्रसेनजित उत्साहित एवं उल्लसित होकर अपने धवलगृह में पहुंचे। दीर्घकारायण को बुलाकर उन्होंने मंत्रणा की। योजनानुसार सैनिकों का संगठन-कार्य आरंभ हो गया। सहस्रों शकटों की व्यवस्था की जाने लगी। श्रावस्ती के नागरिक जिज्ञासा में पड़े रहे, किंतु सब कार्य गोपनीय ढंग से संपादित किये जाते रहे।

निश्चित तिथि को सहस्रों शकट काशी की ओर चल पड़े। प्रत्येक शकट पर चार-पांच योद्धा बैठ गये। वे सबके-सब व्यापारी या दास का वेश धारण किये हुए थे। शकटों पर छिपाकर युद्ध-सामग्री लाद ली गयी। सहस्रों कम्बोजी अश्व साथ कर लिये गये। उन अश्वों पर पर्याण, चक्रक, लवणकलायी आदि नहीं सजाया गया, जिससे कि लोग उन अश्वों को विक्रय के योग्य समझें।

काशी नगर के महाद्वार पर प्रसेनजित के कर्मचारियों ने शुल्काध्यक्ष को शुल्क दे दिया। व्यापारी के वेश में प्रसेनजित शुल्क शाला के समीप स्थित ध्वजस्तंभ के पास पहुंचे और उन्होने व्यापार के लिए लायी गयी सभी वस्तुओं की घोषणा कर दी। किसी को कोई शंका नहीं हुई। नगर में बात फैल गयी कि मद्र का एक बहुत धनी व्यापारी काशी आया हुआ है।

दो-तीन दिन तक प्रसेनजित कुछ अश्व आदि का विक्रय करते रहे।

चौथे दिन रात्रि में उन्होंने अचानक धवलगृह में प्रवेश कर अजातशत्रु को बंदी बना लिया। महाद्वार के प्रहरियों को पहले से ही वश में कर लिया गया था। प्रसेनजित चुपचाप अजातशत्रु के साथ श्रावस्ती की ओर चल पड़े। जितने कम्बोजी अश्व विक्रय के लिए आये थे वे सब अश्व-सेना के अंग बन गये।

दूसरी बार भी प्रसेनजित को परास्त करके सम्राट् अजातशत्रु निश्चित हो गये। प्रसेनजित के अधिकाश सैनिक खेत रहे। अजातशत्रु की प्रसन्नता एवं उत्साह की सीमा नहीं रही। उन्होंने पंद्रह दिवस तक राजकीय स्तर पर विजयोत्सव मनाने का आदेश दे दिया।

सैनिकों ने संतोष की सांस ली। अनुशासन के बंधन से उन्मुक्त होकर वे मदिरालयों की ओर दौड़ पड़े। सहस्रों वत्सतरी, मयूर एव अन्य पशु-पक्षी सैनिकों एवं राजपुरुषों के उदर में समाहित हो गये। सहस्रों आढक सुरा समाप्त हो गयी। और भोजन-पान का यह क्रम पंद्रह दिवस तक अनवरत चलता रहा। शत्रु की ओर आश्वस्त होकर अजातशत्रु ने सेनाध्यक्ष सुनीथ को अधिकाश सैनिकों के साथ राजगृह भेज दिया।

अजातशत्रु भी काशी में मंडलेश्वर नियुक्त करके दो-तीन दिन पश्चात् ही राजगृह की यात्रा करने वाले थे कि उस रात प्रसेनजित ने अचानक उन्हें बंदी बना लिया। काशी से श्रावस्ती तक उनके हाथ-पांव रज्जु में बंधे रहे। सैकड़ों सैनिक नग्न खड्ग लिये उन्हें चारों ओर से घेर कर चलते रहे।

श्रावस्ती में विजयोत्सव मनाया जाने लगा। नागरिकगण आनंदातिरेक से अभिभूत होकर राजपथ, पण्यपथ एवं वीथियों में उन्मत्त होकर नृत्य-गीत-वादित्र की धारा में धमाचौकड़ी भरने लगे। मध्यरात्रि का समय हो गया। किंतु, विजयोत्सव के उन्माद में रंचमात्र भी कमी नहीं आयी।

सम्राट् अजातशत्रु, बंदी व्याघ्र की भांति, कारागार के गर्भ-गृह में मध्यरात्रि के समय भी चक्कर काट रहे थे। रह-रह कर उनके दांत कटकटा उठते, उनकी मुट्ठियां बध जातीं और उनकी आंखों से स्फुलिंग प्रक्षेपित होने लगते, वे प्रातःकाल से ही इसी भांति चक्कर काट रहे थे। फिर न तो उनके अंगों में क्लांति आयी थी, न आंखों में नींद। कारागार के प्रहरियों का नायक स्वयं भोजन ले आया। वह ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। जल के अतिरिक्त उन्होंने कंठ के नीचे कुछ भी नहीं जाने दिया।

अपररात्र का द्वितीय मुहूर्त व्यतीत हो रहा था कि तभी लौह-द्वार खुलने की ध्वनि सुनकर अजातशत्रु चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से देखा, स्वप्न-से झिलमिल धवल वस्त्र में एक अति सुंदर षोडशी खड़ी थी, और एक प्रहरी द्वार से कुछ दूर हट कर खड़ा था। अजातशत्रु क्षण-भर के लिए आत्म-विस्मृत होकर वह अपूर्व, अनिर्वचनीय छवि देखते रह गये। बड़े-बड़े स्वच्छ, सरल नयन, गौरवर्ण, पारदर्शक मुखमंडल पर प्रभावोत्पादक कांति, संवेदनशील रक्तिम अधरों पर आमंत्रण-भरी मुस्कराहट और ग्रीवा से चरण तक की उन्मादक सुगढ़ता देखकर अजातशत्रु को लगा, मानो वे स्वप्न देख रहे हों।

"कौन हो तुम ?"—अपनी स्थिति का ज्ञान होते ही अजातशत्रु ने शंका एवं क्रोध मिश्रित स्वर में पूछा। षोडशी कदाचित् आशय भांप गयी। बोली :

"निश्चिंत रहिए बंदी सम्राट् ! मैं विषकन्या नहीं हूं।"

"तुम्हारा नाम ?"

"वज्जिरा !"

"वज्जिरा ?···होगा। यहां किसलिए आयी हो ?"

"परम प्रतापी सम्राट् चंड अजातशत्रु के दर्शन करने। बचपन से

जिसकी महत्वाकांक्षा, शौर्य, साहस एवं पराक्रम की चर्चा सुनती आयी थी, उसके अपने कारागार में बंदी के रूप में उपस्थित होने का समाचार सुन-कर आश्चर्य हुआ। अतएव, चली आयी।"

"तुम्हारा कारागार ?"

"हां, मैं हूं कोशलराज प्रसेनजित की एकमात्र कन्या—वज्जिरा।"

"ओह···तो आप राजकुमारी है ?"

"हां, बदी सम्राट् !"

"सम्राट् कभी बंदी नही होता राजकुमारी।"

"फिर आप क्या हैं ?"

"आपके पिता का काल।"

"आपको विदित्त हो कि पिताश्री के इंगित-मात्र पर आपका शिरोच्छेद हो सकता है।"

"उसके पश्चात् क्या होगा ?"

"कुछ नही ! आपका अंतिम संस्कार !"

अजातशत्रु अट्टहास कर उठे। वज्जिरा आश्चर्य-चकित होकर सम्राट् का मुख देखने लगी। अजातशत्रु की निर्भीकता, आत्मविश्वास एवं शौर्य देखकर वह मन ही मन श्रद्धा से भर उठी। अजातशत्रु हसते हुए बोले :

"आप बहुत भोली है, राजकुमारी ! आपके पिता मेरा स्पर्श भी नहीं सकते। वे मेरी शक्ति जानते है। तभी वे मुझे छल से बंदी बनाकर ले आये। उन्हें मालूम है कि मगध की असंख्य सेना जब महासागर की भांति उमड़ती-उफनती हुई आयेगी तब कोशल का एक-एक कण उसमें प्रवाहित हो जायेगा।"

"यह आपका भ्रम है। यदि वे ऐसा सोचते तो आपको बंदी बनाकर नहीं लाते।"

"यही तो उन्होने मूर्खता की है।"

"अजातशत्रु !"—वज्जिरा क्रोध से गरज उठी।

अजातशत्रु हंसते हुए बोले :

"क्षमा कीजिएगा राजकुमारी ! मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। निश्चय ही आप राजकुमारी वज्जिरा हैं।"

"परीक्षा लेने का आपका ढंग नितांत अभद्रतापूर्ण है।"

"मैं स्वीकार करता हूं। किंतु, स्मरण रखिए कि प्रसेनजित आपके पिता हैं और मैं उनका शत्रु। अतएव हम दोनों के दृष्टिकोण में निश्चय ही अंतर होगा।"

वज्जिरा सोच रही थी : "जैसा सुनती थी, वैसा ही पा रही हूं। कितना स्वाभिमान और उत्साह भरा है इस महावीर में ? कैसा दिव्य रूप है, कैसी वाणी है—मेघ गर्जन-सी।"

"क्या सोच रही हैं ?"

"ऐं···कुछ नहीं।"

"कुछ तो सोच ही रही थीं।"

"किंतु आपको क्या ? आप तो मेरे पिता के शत्रु हैं ?"

वज्जिरा के स्वर में उपालम्भ का आभास था। अजातशत्रु कुछ स्मरण करके अचानक क्रुद्ध हो उठे। बोले :

"हां, मैं उनका शत्रु हूं, किंतु वे मेरे मातुल हैं। काशी का प्रदेश मुझसे छीन कर उन्होंने मेरे सत्त्व पर प्रहार किया। वे भूल गये कि सत्त्व संबंध से श्रेष्ठ होता है। सत्त्व ही सांसारिक संबंधों का आधार है।"

"सत्त्व की भी सीमा होती है सम्राट् !"

"व्यक्ति के नाते मैं आपके सिद्धांत को स्वीकार करता हूं।"

"तात्पर्य ?"

"सम्राट् के सत्त्व की सीमा नहीं होती। वह तो शक्ति, शौर्य एवं महत्त्वाकांक्षा का पुंज होता है।"

"फिर आप मेरे पिता को दोषी क्यों ठहराते हैं ?"

"क्योंकि उनमें मात्र महत्त्वाकांक्षा है, शक्ति एवं शौर्य नही। पंगु महत्त्वाकांक्षा का उपासक आत्महत्या करने का अपराधी होता है।"

"शक्ति, शौर्य एवं महत्त्वाकांक्षा मनुष्यता के श्रृंगार होते हैं, उद्देश्य नहीं। करुणा, क्षमा एवं संतोष···।"

"ये भी मनुष्यता के श्रृंगार ही हैं, उद्देश्य नहीं, और उद्देश्य तो

वस्तुत: एक नहीं अनेक हुआ करते हैं, जो क्रम से प्राप्त होते रहते हैं।"

"फिर तो आपने उद्देश्य को भी महत्त्वाकांक्षा का ही पर्याप बना दिया। इस प्रकार तो जीवन का आदर्श ही समाप्त हो जाता है।"

"मैं नहीं मानती कि आदर्श कोई शाश्वत सत्य होता है। वह भी पात्र एवं समय के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। मेरे जीवन का आदर्श है—चक्रवर्ती पद। किंतु उसे प्राप्त करने के पश्चात् भी मेरा आदर्श अप्राप्य ही बना रहेगा।"

"स्मरण रखिए कि आयु की सीमा अभेद्य होती है।"

"मालूम है। किंतु मैं मगध का प्रतीक हूं सुमुखि ! और स्वयं मगध तथा उसकी भावनाएं, उमंग एवं उत्साह असीम हैं।"

"आप सचमुच अजेय हैं।"—वज्जिरा मुस्कराती हुई बोली। उसके स्वर में श्रद्धा का भाव स्पष्ट था। अजातशत्रु उसे अपलक निहारते रहे। दोनों की दृष्टि एकाकार होते ही वज्जिरा लज्जा से आरक्त हो गयी। अजातशत्रु ने वज्जिरा के निकट आते हुए किंचित् लाक्षणिक स्वर में पूछा :

"सच ?"

"हां।"

"यह धारणा कोशलराज प्रसेनजित की कन्या की है ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"मात्र वज्जिरा की।" अजातशत्रु उसके और निकट जा पहुंचे। वज्जिरा अचानक बोल उठी :

"पुनः आऊंगी।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, वहां से क्षिप्र गति से चल पड़ी। अजातशत्रु विस्मय से देखते ही रह गये। वह धीरे-धीरे दूर जाती हुई उनके हृदय में उतरती गयी। अजातशत्रु वज्जिरा के रहस्य-पूर्ण सौंदर्य-जाल में आबद्ध हो गये थे।

अजातशत्रु अभी वज्जिरा के प्रभाव से पूर्णतया स्वस्थ भी नहीं हुए थे कि पुनः एक राजपुरुष को समक्ष खड़े देखकर किंचित् चमत्कृत हो उठे। राज-पुरुष तरुण था और बलिष्ठ दीखता था। अजातशत्रु उस तरुण की भंगि-माओं का अध्ययन करते हुए बोले :

"आप… !"

"विरुद्धक।"

"कौन विरुद्धक ? कोशल के युवराज ?"

"हां, मैं आपको मुक्त कर सकता हूं।"—विरुद्धक कुछ रुक कर बोला। अजातशत्रु ने तत्क्षण कहा :

"ऐसी अप्रत्याशित कृपा के लिए मगध-सम्राट् आपका अनुग्रह स्मरण रक्खेंगे।"

"आपके अनुग्रह के अतिरिक्त मुझे कुछ चाहिए भी नहीं।"

"ऐसी अपार सदाशयता का हेतु जानने की इच्छा बलवती हो उठी है, युवराज !"

"मैं आपके चरण-चिह्नों पर चलने की इच्छा रखता हूं।"

"सुंदर ! ये वृद्ध, विवेकहीन, अदूरदर्शी राजा इसी व्यवहार के पात्र हैं।"

"किंतु, आप जैसा सौभाग्यशाली मैं नहीं हूं। मुझे महामात्य दीर्घ-कारायण का सहयोग प्राप्त नहीं है।"

"कोई चिंता नहीं युवराज ! मेरा पूर्ण सहयोग आपको प्राप्त होगा। आप तो मेरे बंधु हुए।"

"तो अभी मुझे आज्ञा दीजिए। शीघ्र ही मैं आपकी मुक्ति का प्रबंध करूंगा।"

"शीघ्रता की कोई आवश्यकता नहीं है।" अजातशत्रु ने आश्वस्त स्वर में कहा। विरुद्धक चौंक उठा :

"क्यों ?"

"कुछ कारण हैं, जिन्हें मैं शब्द नहीं देना नहीं चाहता।"

"किंतु विलंब का परिणाम घातक हो सकता है।"

"कदापि नहीं। मुझे अपने महामात्य आचार्य वर्षकार पर पूर्ण विश्वास है।"

"ओह !…अच्छी बात है।… मैं कल पुनः उपस्थित होऊंगा।"

"आप मेरा एक कार्य संपादित कर सकेंगे ?"

"क्यों नहीं।"

"यह पत्र महामात्य वर्षकार के पास शीघ्रातिशीघ्र पहुंचाने की व्यवस्था करनी है।"—अजातशत्रु ने कटिप्रदेश से एक भोजपत्र निकालकर विरुद्धक को दे दिया। विरुद्धक सहर्ष बोला :

"मेरा परम सौभाग्य ! अभी तुरंत दूत को भेजता हूं।"

विरुद्धक शीघ्रतापूर्वक वहां से चला गया। अजातशत्रु उसका जाना देखते रहे। उसके होठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट थिरकती रही। वज्जिरा एवं विरुद्धक के परस्पर प्रतिकूल चरित्र अजातशत्रु के मन में संकल्प बन कर उपस्थित हो गये।

वज्जिरा नित्य ही अपररात्र में अजातशत्रु के पास आती और बिना कुछ मांगे चली जाती थी। अजातशत्रु के मन में प्रेम की पावन धारा अंतः-सलिला की भांति मंद-मंद प्रवाहित होने लगी थी। विरुद्धक भी नित्य ही मध्यरात्रि से कुछ पूर्व आ पहुंचता और अपने पिता के विरुद्ध चलने वाले षड्यंत्र की प्रगति से अजातशत्रु को परिचित करा कर चला जाता था। अजातशत्रु के मन में महत्त्वाकांक्षा का महासागर तरंगित हो उठता था।

मध्यरात्रि का समय था। विरुद्धक दौड़ता हुआ आया और उल्लास-

पूर्ण स्वर में बोल उठा :

"मगध-सम्राट् अजातशत्रु की जय हो !"

"आज कोशल के भावी महाराज बहुत प्रसन्न दीखते हैं !"—अजातशत्रु ने मुस्कराते हुए कहा। विरुद्धक बोला :

"हां सम्राट् ! लगता है, मेरा लक्ष्य मुझे प्राप्त हो गया।"

"सुंदर !"

"अभी मैं महामात्य वर्षकार के दर्शन करके चला आ रहा हूं। श्रावस्ती से एक योजन दूर घने जंगलों में वे शत सहस्र सैनिकों के साथ आ पहुंचे हैं। इधर सभी अमात्यों का सहयोग मुझे प्राप्त हो गया है। महामात्य दीर्घकारायण की दृढ़ता दुविधाग्रस्त हो गयी है। कोशल के सेनाध्यक्ष का आश्वासन भी मेरे ही साथ है।"

"अद्भुत !"

"कदाचित् महामात्य दीर्घकारायण इस सत्य से अवगत हो गये हैं। यहां आते समय मार्ग में मुझे अपने दूत से विदित हुआ कि महामात्य दीर्घकारायण अभी धवलगृह की ओर गये हैं।"

"आचार्य वर्षकार का क्या संदेश है ?"

"कल प्रातःकाल मगध का दूत महाराज प्रसेनजित के दर्शन करेगा।"

"हूं !"

"सम्राट् !"

"कहिए।"

"आप इसी समय कारागार से निकल भागिए। स्वर्ण अवसर है। मैंने इसकी व्यवस्था भी कर रक्खी है।"

"नहीं युवराज ! साधारण-सी परिस्थिति का सामना करने में, रक्तपात की आशंका लेकर, व्यर्थ ही शक्ति का अपव्यय करना श्रेयस्कर नहीं है।...महामात्य वर्षकार की क्या इच्छा है ?"

"उन्होंने तो कुछ विचित्र-सी बात कही, जिसका ओर-छोर मैं देख ही नहीं सकता।"

"वह क्या ?"

"उन्होंने कहा कि कल मध्याह्न के समय मैं सम्राट् अजातशत्रु से

विचार-विमर्श करूंगा।"

"निश्चय ही उनके कथन का आधार मात्र आत्म-विश्वास है।"

"मेरी समझ में तो उनके कथन में चमत्कार-प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"

"सामान्य जन असामान्य व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष से चमत्कृत हो उठते हैं।"

"तो आपकी क्या इच्छा है ?"

"मुझे प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

"और मेरा क्या होगा ?"

"आपकी सहायता करने का आश्वासन दे चुका हूं।"

"आपकी कृपा है सम्राट् ! मैं ही नहीं, समस्त कोशल महाजनपद आपका ऋणी रहेगा। अब मुझे चलना चाहिए। कल के मध्याह्न की आकुल प्रतीक्षा रहेगी।"

अजातशत्रु ने कोई उत्तर नहीं दिया। विरुद्धक वहां से प्रस्थान कर गया। अजातशत्रु कारागार के गर्भ-गृह में चक्कर काटने लगे। निश्चित समय पर राजकुमारी वज्जिरा आ पहुंची। अजातशत्रु ने उसे देखते ही कहा :

"आओ वज्जिरा ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

"क्यों ? सम्राट् को राजपुरुषों से वितृष्णा हो गयी है क्या ?"

"स्वयं से वितृष्णा होने का अर्थ अस्तित्व का समापन है। मैं ऐसी भूल नहीं कर सकता। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा इसलिए कर रहा था कि मुझे इस कारागार से मोह हो गया है।"

"मोह की अनुभूति तो तब होती है, जब वियोग की आशंका हो।"

"तुम्हारी प्रज्ञा-शक्ति अद्भुत है वज्जिरे !"

वज्जिरा अचानक उदास हो गयी। वह अपलक दृष्टि से अजातशत्रु को निहारती रही। उसकी आंखों में अश्रुजल छलक आये। अजातशत्रु उसके निकट आते हुए बोले :

"यह क्या ? तुम्हारी आंखों में आंसू ? तुम में तो मैंने वीराङ्गणा के दर्शन किये हैं।"

"वीराङ्गणा की शिराओं में भी उत्तप्त रक्त की धारा प्रवाहित होती है, उसके हृदय में भी इच्छाओं का तरंगाघात होता है और उसके मस्तिष्क में भी आकांक्षाओं का झझावात चलता है। वीराङ्गणा के भी कोई इष्ट होते हैं, जिसके अभाव में वह निष्प्राण, निरवलब एवं निरध्व हो जाती है। तब आत्मघात के अतिरिक्त उसके समक्ष अन्य मार्ग नही रहता।"

"तुम्हारा तात्पर्य ?"

"नारी तरल द्रव्यों की अजस्र धारा है, जो कूल के अभाव में स्वयं तो विलीन हो ही जाती है, मनोज्ञ सृष्टि को भी विनष्ट कर देती है।

"तुम तो आज ऋषियों जैसी उक्तियां बोल रही हो।"

"कदाचित् वही एक उत्तम मार्ग शेष रह गया है।"

"इसके अतिरिक्त एक और मार्ग शेष है पुत्री !"—महाराज प्रसेनजित का स्वर कारागार में गूंज उठा। दोनों चकित होकर देखने लगे। महाराज प्रसेनजित तथा महामात्य दीर्घकारायण द्वार पर खडे थे। महाराज ने कठोर स्वर में कहा : "देश के साथ द्रोह करने वालों के लिए ही प्राण-दड की व्यवस्था है।"

"और सम्राट् के साथ छल करने वालों के लिए ?"—अजातशत्रु ने मुस्कराकर, किंतु दृढ स्वर में प्रश्न किया। प्रसेनजित की मुख-मुद्रा परिवर्तित हो गयी। उन्होंने मुस्करा कर उत्तर दिया :

"संधि-दंड !"

"उसका आधार क्या हो ?"—अजातशत्रु ने दृढ़ स्वर में पूछा। प्रसेनजित ने दीर्घकारायण की ओर दृष्टिपात किया। दीर्घकारायण महाराज का आशय भाप कर वोले :

' सम्राट् के साथ संधि-वार्ता का उपयुक्त स्थान कारागार नही, धवल-गृह का भुक्तास्थानमंडप है। तत्काल आप मेरे साथ राजकीय अतिथि-गृह मे पधारे। कल प्रात.काल सधि-वार्ता सपन्न होगी।···और राजकुमारी! आप भी अपने प्रासाद मे पधारने का कष्ट कीजिए।"

"आप लोगों के विचार-परिवर्तन का कारण जान सकता हूं ?"—अजातशत्रु ने मुस्करा कर पूछा।

"परिस्थिति।"—दीर्घकारायण ने तत्क्षण उत्तर दिया।

"या मागध सैनिकों का आगमन ?"

"वह तो परिस्थिति का कारण हुआ।···वैसे मैं आचार्य वर्षकार के दर्शन कर आया हूं।"

अजातशत्रु क्षण-भर उन लोगों को देखते रहे। राजकुमारी वज्जिरा कारागार से चुपचाप चल पड़ी। सम्राट् अजातशत्रु ने कहा—

"चलिए।"

सधि-वार्ता की सूचना मिलते ही विरुद्धक विक्षिप्त-सा दौड़ता हुआ राजकीय अतिथि-गृह पहुंचा। अतिथि-गृह के अलिंद में आचार्य वर्षकार विराजमान थे। उन पर दृष्टि पड़ते ही विरुद्धक के मुख से मद्धिम चीत्कार निकल गया :

"आप ?"

"हां युवराज ! मैंने कहा था न कि मध्याह्न वेला में मैं सम्राट् अजातशत्रु से मिलूंगा ?"

"सम्राट् कहां हैं ?"

"धवलगृह मे।"

"धवलगृह मे ?"

"हां ! सुमगली वज्जिरा की अगवानी करने गये हैं।"

"ऐं ? ··· तो क्या ··· महाराज प्रसेनजित ने वज्जिरा का विवाह···?"

"सम्राट् अजातशत्रु से कर दिया। देवी वज्जिरा अब मगध की पट्ट महिषी है और पुनः काशी का प्रदेश मगधपति को 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप में प्राप्त हो गया।"

"और सम्राट् ने मुझे जो सहायता का वचन दिया था ?"

"सहायता का रूप स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म भी हुआ करता है। बाह्य सहायता से देश की क्रांति दूषित हो जाती है; फलस्वरूप प्रजा के स्वाभिमान एवं आत्मबल को आघात पहुंचता है; देश की समृद्धि एव प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।"

"मैं समझ गया महामात्य वर्षकार ! मुझे आपके उपदेश की आवश्यकता नही है।"

"जानता हूं युवराज कि विवेकहीन की महत्वाकांक्षा विनाश का पर्याय है। निरुद्देश्य प्रतिशोध मनुष्य को पशु में परिवर्तित कर देता है।"

"स्मरण रखिए मगध-महामात्य कि अभी आप कोशल की सीमा में हैं।"

"आप क्रोध से दुर्बल हो रहे हैं। मेरा परामर्श स्वीकार करके अपने प्रासाद में पधारिए और शक्ति का संचय कीजिए।"

विरुद्धक क्रोध से तिलमिला गया। उसके मन में कुछ कुभावना उत्पन्न हुई; किंतु आर्य वर्षकार के निकट अश्वसेनाध्यक्ष धनंजय खड़ा था। विरुद्धक की दुविधाग्रस्त भंगिमा को देखकर वर्षकार उसकी मनःस्थिति भांप गये, बोले—

"धनंजय से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है युवराज ! कुछ अभिलाषा हो तो इसे यहां से हटा दूं ?" निस्तेज होकर विरुद्धक तत्क्षण ही वहां से प्रस्थान कर गया।

उलुम्प नगर के शाक्य भगवान बुद्ध को अपने बीच पाकर उल्लास से भरे हुए थे। आबाल-वृद्ध के मुखमंडल पर गर्व की आभा प्रस्फुटित हो रही थी। उनके हाव-भाव एवं वार्तालाप में व्यस्तता तथा उत्साह साकार हो उठा था। नगर को बहुत सुंदर रीति से सजाया गया था।

भगवान बुद्ध के वहां पधारते ही वातावरण परिवर्तित हो गया था। उस ओर होकर जाने वाले सार्थवाह, राजपुरुष, दूत प्रभृति भगवान के दर्शनों

के लिए वहीं रुक गये। नगर के एकशालिक, निषद्या एवं राजकीय अतिथि-गृह में एक के स्थान पर पांच-पांच व्यक्ति आ ठहरे। वीथियों में तिल रखने की भी जगह नहीं बच रही।

संयोग की बात कि उन्हीं दिनों कोशलराज प्रसेनजित का राजकीय यान उस ओर आ निकला। वे राजपुरुषों की कुभावपूर्ण गतिविधियों से क्षुब्ध हो उठे थे। श्रावस्ती नगर षड्यंत्रों से आक्रांत हो रहा था। अजातशत्रु के प्रस्थान कर जाने के कुछ दिन पश्चात् महाराज प्रसेनजित अपने मन को तोष देने के निमित्त साम्राज्य का निरीक्षण करने निकल पड़े। भ्रमण करते-करते वे अनजाने ही शाक्यों के नगर उलुम्प ग्राम जा पहुंचे। यह सुन कर कि शास्ता निकट ही आराम में विहार कर रहे हैं, महाराज प्रसेनजित आराम की ओर अग्रसर हुए। कोशल के महामात्य दीर्घकारायण भी उनके साथ थे। भगवान बुद्ध के समक्ष खड्ग, शल्य आदि लेकर जाना अनुचित था। अतएव छत्र, व्यंजन, उष्णीष, खड्ग और पादुका दीर्घकारायण को सौंप कर महाराज प्रसेनजित अकेले ही गंध-कुटी में गये। महाराज प्रसेनजित एवं भगवान बुद्ध दीर्घकाल से एक-दूसरे से परिचित थे; दोनों समवयस्क भी थे। भगवान बुद्ध महाराज प्रसेनजित को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। शीघ्र ही दोनों एक-दूसरे के साथ विचारों के आदान-प्रदान में तल्लीन हो गये :

इधर दीर्घकारायण अकेले रह गये। वे राज-चिह्नों को कुछ काल तक ध्यानपूर्वक देखते रहे और सोचते रहे : 'मेरे मातुल पराक्रमी बंधुल मल्ल का प्रसेनजित ने इन्ही राज-चिह्नों के चलते छल से बध करवा दिया। मेरे मातुल का दोष मात्र इतना था कि वे कर्त्तव्यपरायण एव न्यायप्रिय होने के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। उनका एक दोष यह भी था कि वे परम वीर थे, महान् योद्धा थे और निश्छल थे। चाटुकार राजपुरुष उनकी लोकप्रियता तथा पदोन्नति देखकर ईर्ष्या से जल उठे। उन लोगों ने इस अविवेकी महाराज प्रसेनजित के कान भरने आरंभ कर दिये कि बंधुल मल्ल राजा बनना चाहता है। और इस कृतघ्न राजा प्रसेनजित ने उन लोगों की झूठी बातों में आकर अपने अनन्य भक्त सेनापति बंधुल मल्ल एवं उनके पुत्रों की हत्या करवा दी। यह सब क्यों हुआ ?···इन्ही राज्य-

चिह्नों पर अधिकार रखने के लिए तो ! और आज ये राज्य-चिह्न मेरे अधिकार में पड़े हैं।'···दीर्घकारायण प्रतिशोध एवं कर्त्तव्यपरायणता के द्वंद्व में पड़कर उद्वेलित हो उठे। युवराज विरुद्धक का निवेदन उन्हें विचलित करने लगा। उनके अतिरिक्त शेष सभी अमात्यों का सहयोग युवराज को प्राप्त था। दीर्घकारायण सोचते रहे: 'विरुद्धक मेरा सहयोग प्राप्त कर कोशल का आर्यपट्ट अधीनस्थ कर सकता है। प्रसेनजित वृद्ध हो चला। वैसे भी एक दिन विरुद्धक कोशल का राजा बनेगा ही। क्यों न मैं इस कृतघ्न राजा प्रसेनजित को यहीं निरवलंब छोड़कर इन राज्य-चिह्नों के साथ श्रावस्ती चल दू ? एक ओर यह राजा भगवान बुद्ध का अनुयायी बनता है, और दूसरी ओर इसके मन-प्राणों पर प्रभुत्व का मोह छाया हुआ है। मैं इसकी हत्या नहीं करूंगा, इसका अधिकार भी किसी अनधिकारी को नहीं सौंपूगा। किंतु, अब इसे कोशल का राजा भी नहीं रहने दूंगा।"

प्रतिशोध की भावना विजयी हुई। दीर्घकारायण उन राज्य-चिह्नों को लेकर श्रावस्ती जा पहुंचे। विरुद्धक की अभिलाषा पूरी हुई। किंतु, दीर्घकारायण एक पल के लिए भी श्रावस्ती में नहीं रुके। उन्होंने विरुद्धक के आर्यपट्ट पर अभिषिक्त होते ही महामात्य के पद तथा नगर को त्याग दिया।

इधर महाराज प्रसेनजित गंध-कुटी से बाहर निकलते ही दीर्घकारायण को अनुपस्थित देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। बाहर खड़े भिक्षुओं से उन्हें उसी क्षण वस्तुस्थिति का ज्ञान हो गया। वे वहां दीर्घकाल तक मौन खड़े, शून्य दृष्टि से पृथ्वी की ओर देखते रहे। 'कहां जायं ? क्या करें ? किसकी सहायता लें ?' आदि प्रश्न उनके मस्तिष्क को झकझोरते रहे। उनके लिए चारों दिशाएं अंधकार मे डूब चुकी थी। वृद्धावस्था में अपनी ऐसी दशा देखकर वे मन-ही-मन रो उठे। 'कहां जायं ?'—यही प्रश्न बारंबार उनकी आंखों के समक्ष मृत्यु की छाया बनकर छा जाता था। कुछ समय बीतने पर अचानक सम्राट् अजातशत्रु का ओजस्वी व्यक्तित्व उस अंधकार में विद्युत् की भांति कौंध गया। वे अकेले ही राजगृह की ओर चल पड़े— निःसबल, निरवलंब, निराश्रित एवं परिक्लांत।

इधर आर्यपट्ट पर प्रतिष्ठित होते ही विरुद्धक शाक्यों का विनाश करने

के लिए असंख्य सैनिकों के साथ कपिलवस्तु जा पहुंचा। नगर के बाहर उसने अपने स्कंधावार की स्थापना कर दी।

विरुद्धक की योजना का समाचार पाकर भगवान बुद्ध अत्यधिक करुणा से भर गये। उन दिनों वे कपिलवस्तु नगर के निकट ही चारिका करते थे। वे अपनी गंध-कुटी का त्याग कर एक छाया-शून्य वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गये।

आक्रमण के एक दिन पूर्व विरुद्धक मार्ग एवं अन्य व्यवस्थाओं का निरीक्षण करने के लिए स्कंधावार से बाहर निकला। ठीक मध्याह्न का समय था। ग्रीष्म के सूर्य की प्रखर किरणों से अंग-प्रत्यंग झुलस रहे थे। लग रहा था, मानो अग्नि-वर्षा हो रही हो। अचानक विरुद्धक की दृष्टि दूर स्थित उस वृक्ष पर जा अटकी, जिसके नीचे भगवान बुद्ध समाधिस्थ थे।

"वहां क्या कोई आजीवक संप्रदाय का उपासक अपनी देह जलाने जा बैठा है?"—विरुद्धक ने अपने महामात्य अम्बरीश से पूछा। अम्बरीश पहचानने का प्रयास करता हुआ बोला :

"दूर से दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है। निकट चलकर देखना चाहिए। हो सकता है कि शाक्यों का कोई गुप्तचर हमारा भेद लेने के लिए कापटिक बनकर वहां आ बैठा हो।"

दोनों अपने-अपने अश्व दौड़ाते हुए उस ओर चल पड़े। किंतु, उस वृक्ष के निकट पहुंचते ही विरुद्धक घबराहट के मारे कांपने लगा। जिन शाक्यों का विनाश करने के लिए वह इतने सैनिक लेकर इतनी दूर आया था उन्हीं शाक्यों के कुल-गौरव भगवान बुद्ध शांत मुद्रा में बैठे थे। वहां उनके अतिरिक्त और कोई नहीं था। घातक लू चल रही थी। वृक्ष में दो-चार सूखी, पत्र-विहीन डालियां आकाश की ओर उठी हुई थीं। विरुद्धक डरता हुआ भगवान के निकट पहुंचा और कांपते हुए स्वर में बोला :

"भंते! यहां तो भीषण गर्मी पड़ रही है। आप इस छाया-शून्य वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हैं? वहां मेरे साम्राज्य की सीमा में उस घने वट-वृक्ष की छाया में पधारिए।"

तत्क्षण शांत, संयत, गंभीर, दिव्य वाणी गूंज उठी :

"ठीक है महाराज ! ज्ञातकों[1] की छाया सुशीतल होती है।"

विरुद्धक इस कथन से निष्प्रभ हो उठा। वह समझ गया कि भगवान अपने बंधु-बांधवों की रक्षा करने आये हैं। उसका साहस जाता रहा। उसके हृदय का पशु मूर्च्छित हो उठा। लोक-नायक भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा जाग्रत हो उठी। वह चुपचाप भगवान की वंदना कर स्कंधावर में लौट आया। दीर्घ काल तक वह उद्विग्न होकर अपने कांडपटमंडप में ही चक्कर काटता रहा। रह-रहकर उसके समक्ष भगवान का विषादपूर्ण मुखमडल कौंध जाता। अचानक विरुद्धक चीखता हुआ बाहर निकला :

"अम्बरीश ! महामात्य अम्बरीश !···सैनिकों को श्रावस्ती लौटने का आदेश दो। शीघ्रता करो।" अम्बरीश इस आदेश से चौककर बोला :

"जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए···"

"मुझे यह उद्देश्य नही प्राप्त करना है अम्बरीश ! मैं शास्ता को अधिक कष्ट पहुंचाने का साहस नहीं कर सकता। आदेश का पालन किया जाये।"

स्कंधावार तोड़ दिया गया। सैनिक श्रावस्ती की ओर लौट चले। संध्या होते-होते ढाई योजन दूर जाकर सैनिकों ने स्कंधावार की स्थापना की। विरुद्धक तब तक सामान्य स्थिति में आ चुका था।

विरुद्धक अपने कांडपटमडप में रत्न-जटित काष्ठासन पर बैठा चिंता में डूबा हुआ था।

"महाराज की जय हो !"

विरुद्धक चौंककर जयकार करने वालों को देखने लगा, जैसे वह पहचानने का प्रयत्न कर रहा हो। अचानक उसकी चेतना लौट आयी। उसने किंचित् मुस्करा कर कहा :

"क्या संदेश है महामात्य अम्बरीश ?"

"मैं अपना खड्ग और राज-मुद्रिका आपके चरणों में रखने आया हूं।" —अम्बरीश ने अत्यधिक गांभीर्य के साथ कहा। विरुद्धक पुनः चौंक उठा :

"यह तुम क्या कह रहे हो ?"

१. भाई-बधों

"ठीक ही कह रहा हूं, श्रीमन् ! श्रमण को महामात्य की नहीं, अग्र-श्रावक[1] की अपेक्षा रहती है।"

"तात्पर्य ?"

"आप राज्योचित कर्म से च्युत हो गये हैं। जो राजा अपने शत्रुओं का दमन नहीं कर सकता, अपराधियों को दंड नहीं दे सकता, वह राजा अव्यवस्था एवं अराजकता का दायी होता है।"

"किंतु, ऐसा आचरण मैंने किया ही कब ?"

"यह भी क्या मुझे बताना पड़ेगा ?" आपने शाक्यों के विनाश का व्रत ले रक्खा था। इसी हेतु आप राजकोष के अपार धन का अपव्यय करके इतने सैनिकों के साथ यहां तक आये और अब आप बुद्ध के डर से भागे जा रहे हैं।"

"क्या करता अम्बरीश ! भगवान बुद्ध की व्यथा देखी नहीं गयी। जिसे समस्त विश्व पूजता हो, जिसकी चरण-धूलि प्राप्त करने के लिए असंख्य जन व्याकुल रहते हों, उसी महापुरुष की हत्या का पाप मैं अपने सिर कैसे ले लूं ? अनासक्त की उपेक्षा समस्त धर्मों के मूल की उपेक्षा है।"

"कौन अनासक्त है ?"

"भगवान बुद्ध।"

"आप मेरी धृष्टता क्षमा करें। ऐसा सोचकर आप अपने भ्रम को ही पुष्ट करते हैं। यदि बुद्ध अनासक्त थे, तो काशी पर अजातशत्रु का आक्रमण रोकने क्यों नहीं गये ? जिस समय चम्पा नगरी जल रही थी उस समय अनासक्त बुद्ध कहां थे ?"

"तुम्हारा कथन तो ठीक है अम्बरीश, किंतु…"

"महाराज ! ये शाक्य इनके बंधु-बांधव हैं। इसीलिए इस गण का विनाश इनसे देखा नहीं गया। दु:ख पर विजय पाने की घोषणा करके भी ये शाक्यों के दु:ख से अधीर हो उठे और दौड़े हुए कपिलवस्तु आ पहुंचे। वस्तुत: ये शाक्य होने के अतिरिक्त आपके पिता के भी मित्र हैं। इसीलिए आपकी जय होते नहीं देख सकते।"

"तुम कहते तो ठीक ही हो। किंतु…किंतु तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

१. प्रधान शिष्य

"मेरी इच्छा क्या ? मैं तो आपकी छाया हूं, आपका अमात्य हूं। जो उचित समझूंगा, वही करने को कहूंगा। आप अपने वचन का पालन न करके प्रजा की दृष्टि में गिर जायेंगे। आपके आदेश का उल्लंघन होगा, आपकी महत्ता नगण्य बनकर रह जायेगी और इसका परिणाम होगा कि आपका साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर रह जायेगा।"

विरुद्धक का पशु पुनः जाग्रत हो उठा। स्कंधावार सुदृढ़ कर दिया गया। आक्रमण की व्यवस्था में सभी राजकर्मचारी प्रवृत्त हो गये। ज्यों ही दूत ने आकर सूचना दी कि भगवान बुद्ध कपिलवस्तु से राजगृह की ओर चारिका करने चले गये हैं, अम्बरीश कुछ सैनिकों को साथ लेकर कपिलवस्तु की ओर चल पड़ा। शेष सैनिक कपिलवस्तु के चारों ओर घात लगाकर बैठ गये।

अम्बरीश ने कुछ शाक्यों को अपनी ओर मिला लिया था। शाक्य गण-संघ में उसकी भेद-नीति सफल हो गयी थी। अम्बरीश ने छल से नगर का महाद्वार खुलवा लिया। शाक्यों ने समझा कि अम्बरीश उनका मित्र बनकर आ रहा है। सब लोग उसके स्वागत-सत्कार में लग गये। तभी विकराल काल के समान कोशलीय सैनिक चारों ओर से आ धमके। विनाश का दृश्य उपस्थित हो गया। देखते ही देखते रक्त की धारा बह चली; अश्वों की हिनहिनाहट से आकाश फट पड़ा। हवा में योद्धाओं के अंग उछलने लगे; शल्यों की नोक पर शाक्य-शिशुओं के शव मचलने लगे। नारियों के चीत्कार से वातावरण भयावह हो उठा, और घायलों एवं मृतकों के बोझ से पृथ्वी सिसकने लगी। रक्त की कीच में हाथियों के पांव धंसने लगे। कुछ प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं ने शाक्यों को संगठित करके विरुद्धक की सेना का प्रतिरोध करना चाहा, किंतु वे गंगा के प्रवाह में तिनके की भांति बह गये। संध्या तक नरमेध होता रहा। वासवखत्तिया के पिता महानाम एवं उसके परिवार को छोड़ सब शाक्यों की हत्या कर दी गयी। बहुत-से शाक्य भाग निकले या कुछ भाग्य से बच गये। फिर भी संध्या तक सतहत्तर सहस्र शाक्य काल के ग्रास बन गये। वहां का दृश्य इतना भयावना हो गया कि विरुद्धक भी उस स्थान पर रात्रि व्यतीत करने का साहस नहीं कर सका। वह अपने सैनिकों के साथ रात्रि में ही वहां से चल पड़ा। उसे अपने गुप्त-

चरों से भगवान बुद्ध का श्राप भी ज्ञात हो गया था। भगवान बुद्ध ने श्राप दिया था कि यदि विरुद्धक तथा अम्बरीश ने शाक्यों का विनाश किया तो स्वय वे दोनो भी एक सप्ताह के भीतर ही विनाश को प्राप्त हो जायेंगे।

विरुद्धक अपनी सेना के अग्रभाग में चल रहा था। अंधेरी रात थी। यद्यपि सहस्रों उल्काए प्रज्वलित थीं, तथापि वातावरण पर अंधकार का आतंक ज्यों-का-त्यों स्थापित था। विरुद्धक रह-रहकर श्राप का स्मरण कर सिहर उठता था। सैनिक क्लांत एवं निर्जीव हो रहे थे। दिन-भर के विकट परिश्रम के पश्चात् ही उन लोगों को प्रयाण करने का आदेश मिला।

अचिरवती नदी के किनारे पहुंच कर सैनिकों का साहस छूट गया। पदाति सैनिक तो एक पग उठा सकने में भी असमर्थ थे। हवा के वेग से उल्काएं कांपने लगीं। अंततोगत्वा विरुद्धक तथा अम्बरीश ने नदी के तट पर ही शेष रात्रि व्यतीत करने का निर्णय किया। शयनासन आदि की व्यवस्था करने की किसी में शक्ति नहीं थी। सबके-सब नदी-तट की रेत पर ही सो गये।

अचानक उत्तर दिशा से काले-काले मेघ उठने लगे, जो देखते ही देखते पूरे आकाश पर व्याप्त हो गये। भयानक झंझावात उठ खड़ा हुआ। उस समय अधिकतर सैनिक गहरी नींद में बेसुध पड़े थे।

विपत्ति अकेली नहीं आती। वत्सराज उदयन पूर्व से दिग्विजय करके लौट रहे थे कि उन्हें कपिलवस्तु के विनाश की सूचना मिली। महत्वाकांक्षी विरुद्धक से वे भली भांति परिचित थे। अपनी दिग्विजय के मार्ग में इस नये अवरोध को उन्होंने आरंभ में ही समाप्त कर देना श्रेयस्कर समझा। कपिलवस्तु के विनाश की दारुण कथा सुनकर वे क्षुब्ध हो उठे। ऐसे क्रूर, प्रबल एव चंड राजा की महत्वाकांक्षा वत्स के लिए भी घातक थी। यही सब विचार कर उदयन विरुद्धक का सामना करने को चल पड़े।

दैव संयोग कि जिस समय वत्सराज उदयन ने विरुद्धक की सेना पर आक्रमण किया, ठीक उसी समय मूसलाधार वर्षा होने लगी। मेघ-गर्जन एवं विद्युत की चकाचौंध में कोशल के सैनिकों ने मृत्यु का साक्षात् नग्न नर्त्तन देखा। भगवान बुद्ध का श्राप उनके तन-मन में परिव्याप्त होकर उंन्हे निष्प्रभ बना चुका था। वे दुर्बल एवं क्लांत तो थे ही; गाजर-मूली

की तरह कटने लगे। वत्स के सैनिक दिग्विजय की मदिरा पीकर मत्त थे, अत्यधिक उत्साहित थे। प्रातःकाल से संध्या तक जो सैनिक निरपराध शाक्य नागरिकों की हत्या में बर्बर बने हुए थे, अब स्वयं चीत्कार करते हुए पीछे भागने लगे। मूसलाधार वर्षा से पहाड़ी नदी अचिरवती में अचानक भयंकर बाढ़ आ गयी; उसके कगारे कट-कट गिरने लगे; और उन्हीं कगारों के साथ सहस्रों सैनिक भी बाढ़ की भेंट हो गये। प्रातःकाल तक वर्षा थम चुकी थी, वत्स के सैनिक शांत हो चुके थे; किंतु, कोशल का एक सैनिक भी सूर्योदय देखने के लिए जीवित नहीं बचा था। विरुद्धक और अम्बरीश भी अचिरवती के प्रबल प्रवाह की भेंट चढ़ चुके थे। कोशल के कुछ सहस्र मृत सैनिको के शव तट पर पड़े थे। वे पानी में भीगकर विचित्र घिनौने और बीभत्स दीख रहे थे। आकाश मे बहुत-से गृध्र मंडराने लग गये थे और अचिरवती के तट पर स्थित वन से श्रृगाल झांकने लगे थे। इस दृश्य को देखकर वत्सराज उदयन मुस्करा उठे और अपने सेनापति से बोले :

"सेनापति रुम्णवान !"

"आज्ञा सम्राट् !

"यह उद्दंड, उच्छृंखल राजा विरुद्धक भयावह वेग से उत्पन्न हुआ और प्रचंड वेग में तिरोहित हो गया।

"प्रत्येक व्यक्ति को स्वनिर्मित पथ का ही अवलंब लेना पड़ता है राजन् !"

"एक बात और है सेनापति ! भाग्य स्वयंभू है। उसे न कोई बना सकता है और न मिटा सकता है। हमारे शास्ता भगवान मक्खलिगोसाल का यही प्रवचन है।"

"सत्य है सम्राट् !" रुम्णवान गंभीर स्वर में बोला और क्षण-भर गृध्रों एवं श्रृगालों को देखता रहा। अचानक वह हंसता हुआ बोला :

"अब हमें यहां से प्रस्थान कर देना चाहिए, जिससे कि इन गृध्रों एवं श्रृगालों को भी अपने भाग्य का फल चखने को मिल सके।"

कुछ काल पश्चात् ही वत्सराज उदयन की सेना वहां से चल पड़ी। गृध्र आकाश से धरती पर उतर आये।

सूर्योदय हो रहा था। राजगृह की वीथियों एवं मुख्य पथों पर चहल-पहल आरंभ हो गयी थी। अपरराात्र के आरंभ में काम पर आये हुए प्रहरी एवं प्रतिहारी अपने-अपने घरों को लौट चुके थे। सूर्य की प्रथम किरणों में स्नान करते हुए राजगृह नगर का सौंदर्य खिल उठा था। चारों ओर शांति एव चेतना की रश्मिया प्रस्फुटित हो रही थीं।

सम्राट् अजातशत्रु धवलगृह की ऊपरी कक्षा में चन्द्रशालिका में बैठे सूर्योदय देख रहे थे। दूर आम्र-कानन के पश्चात् पहाड़ी के पृष्ठ भाग में सूर्य की रक्तिम आभा उद्भासित हो रही थी। उगते सूर्य का मनोहारी संकेत अजातशत्रु में विराट कल्पना की प्रेरणा संचारित कर रहा था। वे एकटक पूर्व दिशा को देख रहे थे और सोच रहे थे कि क्षण-भर पश्चात् ही इस ओर दृष्टि स्थिर कर सकना असंभव हो जायेगा।···

"किसकी आराधना में तल्लीन हैं ?"—यह सुमधुर संगीतमय स्वर सुनकर सम्राट् चौक उठे। उन्होंने घूमकर देखा, पट्ट महिषी वज्जिरा खड़ी थी।

"ओह···तुम !···आओ, मेरे पार्श्व में बैठो।"

"किंचित् मैं भी तो सुनूं कि वह सौभाग्यशालिनी कौन है, जिसने मेरे कर्मठ सम्राट् को निवृत्ति के शैथिल्य में आबद्ध कर लिया है ?"—वज्जिरा ने अजातशत्रु के गले में लता-सी बांहें डालते हुए मुस्कराकर कहा। अजातशत्रु वज्जिरा को आसक्त दृष्टि से देखते हुए अस्फुट स्वर में बोले :

"तुम !"

"असत्य !"

"नहीं, सत्य। मैं तुम्हारे मदिर नयनों में समाहित अपने उज्ज्वल चरित्र को सार्थक करने की उत्कंठा से सदा ही आक्रांत रहता हूं। मेरी जिस महत्वाकांक्षा एवं शौर्य ने मुझे तुम्हारा सान्निध्य उपलब्ध करा दिया, वह महत्वाकांक्षा एवं शौर्य अब तक कल्पना की ही वस्तु बनी हुई है।"

"मेरे समक्ष तो वे साकार हो उठे हैं। मुझे तो अपनी साधना का फल कब का मिल चुका। आपका यह विशाल वक्षस्थल, दीर्घ भुजाए, उन्नत ललाट, और वृषभ स्कंध मेरी असीम कल्पना की सीमा का स्पर्श करने में समर्थ हैं।"

"ये सब व्यर्थ हैं, आर्य !"

"नहीं प्रभो ! इनकी सार्थकता की अनुभूति से मेरे अंग का अणु-अण परिव्याप्त है।"

"वज्जिरे !"

"आज्ञा प्रभो !"

"उदयाचल के सूर्य को देख रही हो ?"

"हा।"

"मैं भी देख रहा हूं। किंतु एक-दो मुहूर्त पश्चात् ही हम उसकी ओर देखने का साहस नहीं कर सकेंगे।"

"तब उसे देखने में हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ न होगा।"

"परंतु उसका साम्राज्य दिग्दिगंत तक परिव्याप्त रहेगा। उसकी सत्ता की कोई उपेक्षा नहीं कर सकेगा, और उसके ताप की अनुभूति से प्रत्येक व्यक्ति चेतन रहेगा।"

"सत्य है आर्य ! तभी तो सूर्य अपना अस्तित्व सार्थक कर पाता है।"

"इसीलिए मैंने कहा कि मेरी शक्ति, मेरा अस्तित्व निरर्थक है।"

वज्जिरा क्षण-भर के लिए विस्मित होकर अपने स्वामी का आक्रोश-पूर्ण मुखमंडल निहारती रही। अजातशत्रु की आंखें जल रही थीं। वज्जिरा की आखे अपने-आप मंद गयी। आखें बंद किये-किये ही वह अस्फुट स्वर में बोली :

"मुझे पराजित करने का भाव आप में भूल से भी उद्‌भूत नहीं होता प्रभो!" अजातशत्रु वज्जिरा का विचित्र स्वर सुनकर चौंक उठे। वे वज्जिरा को देखते ही रह गये। वज्जिरा की आंखें बंद थीं। उसके सरस, सुगढ़, रक्तिम, कोमल, अधरों का उन्मादक सौंदर्य अजातशत्रु की शिराओं मे तरल आमंत्रण की उष्णता बनकर दौड़ गया। उनकी भुजाएं कड़क उठी। चुबनों की रस-धार मे दोनों ही आप्लावित हो गये। विस्मरण की यह स्थिति कुछ काल तक दोनों को संपृक्त किये रही। अजातशत्रु मदिरोन्मत्त स्वर मे बोले :

"एक तो क्या, द्वादशादित्य भी तुम्हें पराजित नही कर सकते। जिस दिन तुम्हें पराजित कर दूगा, उस दिन साम्राज्य की इच्छा समाप्त हो जायेगी। नारी ही वह धुरी है, जिस पर पुरुष की समस्त इच्छाएं चक्र-गति से घूमती रहती है।"

"अंतर का सत्य उद्‌घाटित कर रहे हैं या मात्र मुझे प्रसन्न करने के लिए ऐसा कह रहे है ?"

"अजातशत्रु के बाह्य एवं अंतर में कोई भेद नही है वज्जिरे !"

"और महामात्य वर्षकार की इच्छा के संकेत पर कौन भागता फिरता है ?"

"वज्जिरा की छाया !"

"वज्जिरा के आगमन से पूर्व यह छाया कहां थी ?"

"कल्पना के अधीन।"

"तब तो आज भी आपकी दृष्टि में मैं कल्पना से अधिक महत्व नहीं रखती होऊंगी ?"

"नारी जब कभी कल्पना-गृह से निकल भागने का विचार करती है, तभी पुरुष-नारी के बीच संघर्ष का अवतरण होता है, जो जीवन को विषाक्त बना देता है।"

"सम्राट् क्षमा करें ! नारी की यह परिभाषा आप जैसे पराक्रमी योद्धा के मुख से सुनकर मुझे…"

"तुम्हे ग्लानि होती है; किंतु होनी नही चाहिए। किंचित् मेरी भावना को समझने का प्रयत्न करो। नारी शक्ति है, प्रेरणा है, करुणा है, सौदर्य है। अपने सूक्ष्म गुणों के कारण वह स्वभाव से ही साक्षात् कल्पना के कोमल-

तम, किंतु, उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गयी है। और जो स्वाभाविक है, उसकी उपेक्षा करके हम जीवन में उद्वेलन को ही आमंत्रित करेंगे। जिसका जहां जो स्थान है, उसकी महत्ता भी वहीं है। वास्तव में…"

"सम्राट् की जय हो !" परिचारिका का दूरागत स्वर सुनकर दोनों संभल कर बैठ गये। अजातशत्रु ने ऊंचे स्वर में प्रश्न किया :

"क्या है अम्मा ? निकट आओ।"

"कौमारभृत्य जीवक आपके दर्शन करना चाहते हैं।"—दासी ने निकट आकर कहा। अजातशत्रु विस्मय से भरकर बोले :

"कौमारभृत्य जीवक ? इस समय कहां हैं ?"

"मुखशाला में । कहते हैं, अत्यावश्यक कार्य है।"

"वज्जिरे ! जीवक साधारण कार्य से असमय पधारने वाले व्यक्ति नहीं हैं। तुम अपने कक्ष में जाओ। कुछ काल तक मेरे लौटने की संभावना नहीं है।"

अजातशत्रु के मुखशाला में पहुंचते ही जीवक ने कहा :

बहुत ही दारुण समाचार है सम्राट् !"

"वह क्या ?"

"नगर के महाद्वार के बाहर अतिथिशाला में किसी वृद्ध राजपुरुष का देहांत हो गया है। साथ में उनकी तरुणी रानी हैं जो विलाप कर रही हैं।"

"तो इसमें दारुण समाचार क्या है ?"

"उस देवी के कथनानुसार मृत व्यक्ति स्वयं महाराज प्रसेनजित…"

"आप कहते क्या हैं अगदंकार जीवक ? महाराजा प्रसेनजित बिना संदेश भेजे किस प्रकार राजगृह पधार सकते हैं ?"

"मैं तो उन्हें पहचानता नहीं। इसीलिए आपके पास दौड़ा आया हूं।"

आदेश होने की देर थी। पचास अश्वारोहियों के साथ सम्राट् अजातशत्रु महाद्वार की ओर दौड़ चले। नगर में यह समाचार विद्युत की भांति प्रचारित हो गया था। बहुत-से नागरिक महाद्वार की ओर दौड़ पड़े—कोई पैदल, कोई शकट पर, कोई रथ पर तो कोई अश्व पर।

अतिथिशाला के बाहर सहस्रों नागरिकों की भीड़ लग गयी थी।

अजातशत्रु को देखते ही नागरिकों ने मार्ग दे दिया। नारी का चीत्कार अतिथिशाला के बाहर तक सुनायी दे रहा था। सम्राट् अजातशत्रु विह्वल हो गये थे। वे अश्व से उतर कर त्वरित गति से अतिथिशाला में प्रविष्ट हुए। प्रकोष्ठ का दृश्य देखते ही वे जड़ हो गये। उनकी संपूर्ण स्फूर्ति अंतर्धान हो गयी। क्षण-भर पश्चात् चेतना लौटने पर वे क्रोध एवं प्रतिशोध से गरज उठे :

"ऐसा क्यों हुआ ?"

"युवराज विरुद्धक तथा महामात्य दीर्घकारायण ने षड्यंत्र करके इन्हें पदच्युत कर दिया।"—महारानी मल्लिका ने रोते हुए कहा : "ये निःसंबल, निस्सहाय होकर आपकी सहायता के लिए राजगृह चल पड़े। वृद्ध होने के कारण मार्ग का श्रम इनके लिए असह्य हो उठा। मार्ग में जो कुछ सड़ा-गला खाद्य मिलता गया, ये खाते गये और इसका परिणाम यह हुआ कि यहां पहुंचते-पहुंचते ये मुझ पर वैधव्य का कलंक अंकित कर गये।"

"मैं विरुद्धक को जीवित जला दूंगा; कोशल के नागरिको को उच्छिन्न कर दूंगा, उन्हें मिटा डालूंगा। कल ही मगध की सेना यहां से कोशल के लिए प्रयाण करेगी।"

"धैर्य से बड़ी शक्ति और नहीं होती।"—महामात्य वर्षकार का गंभीर घोष गूंज उठा। अजातशत्रु ने किंचित् खीझ कर कहा :

"आप जानते हैं कि यहां क्या-कुछ घटित हो गया ?"

"इस घटना के पूर्व से ही मुझे इसका आभास मिल गया था।"

"फिर भी आप धैर्य-धर्म का प्रचार कर रहे हैं ?"

"जो आपका धर्म होगा वही बताऊंगा। मैं नहीं चाहता कि विरुद्धक का अधैर्य आप पर छा जाय।"

"किंतु महामात्य…"

"सम्राट् !"महामात्य बीच में ही विनम्र, किंतु, दृढ़ स्वर में बोल उठे : "आपको व्यक्ति एवं परिवार के मोह से प्रभावित नहीं होना चाहिए।…अभी इन बातों पर विवाद उठाने का समय नहीं है। सर्वप्रथम महाराज प्रसेनजित का राजकीय सम्मान के साथ दाह-संस्कार होना

चाहिए। आप महारानी मल्लिका को अपने साथ धवलगृह में ले जायं। मैं महाराज को धवलगृह तक ले जाने की व्यवस्था करता हूं।"

अजातशत्रु आवेश-भरे स्वर में बोल उठे :

"ठीक है महामात्य ! जो आपकी इच्छा है, वही कीजिए। किंतु प्रत्येक समस्या के निदान में आपके परामर्श की आवश्यकता अब मैं अनुभव नहीं करता।"

महामात्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से सम्राट् की ओर देखा। सम्राट् दूसरी ओर देखने लगे। महामात्य ने विनम्र स्वर में कहा :

"बड़ी प्रसन्नता की बात है सम्राट्, कि आपमें इतनी शीघ्र आत्म-विश्वास आ गया। सम्राट् बिम्बिसार ने भी मेरे परामर्श की आवश्यकता अस्वीकार कर दी थी। मैं आज अपने दायित्व से मुक्त हुआ। आप कोशल जायं या अवन्ति, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किंतु, कहीं भी प्रस्थान करने के पूर्व वैशाली का स्मरण रखिएगा। कल उल्काचेल के पास गंगा के तट पर स्थित मगध की खान को लिच्छवियों ने पुनः लूट लिया। अपने सीमांत उल्काचेल में लिच्छवियों ने सैनिक एकत्र करना आरभ कर दिया है।"

"फिर तो हमें भी पाटलिग्राम के दुर्ग का निर्माण-कार्य शीघ्रतापूर्वक संपन्न करवाना चाहिए और वहां पर्याप्त संख्या में सैनिक सन्नद्ध करने चाहिए।"—जीवक ने सुझाव दिया। महामात्य ने मुस्करा कर कहा :

"मैं तो अपने दायित्व से मुक्त हो गया। सम्राट् सब संभाल लेंगे।"—इतना कहकर आचार्य वर्षकार वहां से शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। अजातशत्रु किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। जीवक चिंतित हो उठा। यहां तक कि मल्लिका भी अवाक् होकर अजातशत्रु का मुख देखने लगी। अततोगत्वा जीवक ने भयावह शांति भंग करते हुए दृढ़ स्वर में कहा :

"यह अच्छा नहीं हुआ सम्राट् !"

"इसमें मेरा दोष क्या है ?"—सम्राट् ने चिढ़कर कहा। उनके स्वर में भय एवं ग्लानि का भाव ध्वनित हो रहा था। जीवक ने तत्क्षण उत्तर दिया :

"आपके कथन से महामात्य के गौरव की उपेक्षा हुई।"

"और उनके कथन से सम्राट् का गौरव क्या अक्षुण्ण बना रहा ?"

"सम्राट् का आदेश सर्वोपरि होता है। किंतु, महामात्य का परामर्श प्रजा एवं समिति की प्रतिध्वनि होने के कारण उनुल्लंघनीय है। उसका सम्मान होना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त पूज्य वर्षकार मात्र महामात्य ही नहीं, आपके आचार्य भी हैं। उनका आदर करके वस्तुत: आप अपना ही समादर करेंगे।"

"कौमारभृत्य जीवक का कथन प्रशंसनीय है सम्राट्।"—मल्लिका ने दुखी स्वर मे कहा। अजातशत्रु मौन ही रहे। जीवक ने समझाने के स्वर में कहा :

"मैं महाराज प्रसेनजित के शव की व्यवस्था करता हूं। आप ऋषिगिरि पर्वत पर वासुदेव कृष्ण के मंदिर में पधारें। निश्चय ही महामात्य वर्षकार वहीं चले गये होंगे।"

सम्राट् अजातशत्रु दीर्घ नि:श्वाश छोड़कर वहां से चल पड़े। जीवक के अधरों पर संतोष की मुस्कराहट कांप गयी। वह स्वगत भाषण-सा कर उठा :

"मगध का दुर्भाग्य टल गया।"

राजगृह में हलचल मची हुई थी। प्रासादों का उत्क्रोश वीथियों में गूंज रहा था। जिसे देखिए, वही ऊंचे स्वर में, ओजपूर्ण भंगिमाओं के साथ बातें कर रहा था। वैशाली के प्रति विक्षोभ का भाव राजगृह के ओर-छोर को आच्छादित किये हुए था।

भुक्तास्थानमंडप में सम्राट् अजातशत्रु क्षुब्ध भाव से भद्रासन पर विराजमान थे। सेनापति सुनीथ, नन्दिसेन तथा धनंजय के अतिरिक्त वहां अन्य नायक गण भी उपस्थित थे। सब लोग चिंता में डूबे हुए थे। कोई कुछ बोल नहीं रहा था। वहां पर महाशांति का गाम्भीर्य छाया हुआ था कि अचानक विद्युत-सी कड़कती हुई पट्ट महिषी वज्जिरा वहां आ धमकी :

"यदि आप लोग शस्त्र धारण करने में असमर्थ हैं, तो मैं प्रस्तुत हूं।"

"आर्ये !"—अजातशत्रु चौंककर भद्रासन से उठते हुए बोले। वज्जिरा पूर्ववत् स्वर में बोली :

"इसमें आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं है सम्राट् ! मल्लों के गौरव बंधुल मल्ल एवं दीर्घकारायण के चलते मेरे पिता की वह दशा हुई। इन मल्लों का सर्वनाश देखकर ही मुझे शांति मिलेगी।"

"लिच्छवियों की वैशाली को ध्वस्त किये बिना मल्लों के विरुद्ध कुछ भी कर सकने में हम असमर्थ हैं।"—सेनाध्यक्ष सुनीथ ने विनम्रतापूर्वक कहा। वज्जिरा गरज उठी :

"तो अब तक क्या कर रहे थे ? सुना, आपने 'महाशिला कंटक' और 'रथमूसल' जैसे भयानक अस्त्रों का आविष्कार कर रक्खा है। क्या वे अस्त्र शिशुओं के मनोरंजन के निमित्त निर्मित किये गये हैं ?"

"उनका उपयोग हम वैशाली-अभियान में ही करेंगे।"—सुनीथ ने कहा।

"कब ?"

"हम लोग अभी उसी की योजना बना रहे थे वज्जिरे !"—अजातशत्रु ने गंभीर स्वर में कहा। वज्जिरा ने व्यंग्य किया :

"मुझे आज ही ज्ञात हुआ कि मौन बैठे रहने से ही योजना प्रस्तुत हो जाती है।"

"तुम्हें विश्वास क्यों नहीं होता ?"

"विश्वास होकर समाप्त हो गया आर्य ! महत्वाकांक्षा की ज्वालाओं के पुंज को हृदय से लगाते ही शीतल वासःखंड की अनुभूति से भर उठी हूं। मुझे अपने-आप से ग्लानि होती है।"

अजातशत्रु क्रोध से उबल पड़े :

"तुम्हारा भ्रम अभी दूर हुआ जाता है। मैं वैशाली को उच्छिन्न करके मल्लों को पद-दलित करूंगा।···प्रतिहारी !"

"आज्ञा प्रभो !"

"महामात्य वर्षकार अब तक क्यों नहीं आये ?"

"मैं उपस्थित हूं सम्राट् !"—आचार्य वर्षकार भुक्तास्थानमंडप में प्रविष्ट होते हुए बोले :

"आपकी ही प्रतीक्षा थी महामात्य ! लिच्छवियों का साहस बढ़ता ही जा रहा है। उन्होंने हमारी खान पुनः लूट ली है।"

"मुझे मालूम है।"

"हमें मल्लों को भी अपने अधीन करना है।"

"निस्संदेह।"

"फिर विलंब क्या है ?"

"प्रत्येक शुभ कार्य का समय निश्चित होता है। वैशाली-अभियान का अभी समय नहीं आया है।"

"आपके इस उत्तर से मैं ऊब उठा हूं।"

"ऊबते से विफलता के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं आयेगा।"—महामात्य ने सादर-सस्नेह कहा। वज्जिरा, जो अब तक मौन थी, पूछ बैठी :

"क्या मैं पूछ सकती हूं महामात्य, कि वह समय कब आयेगा जब आप वैशाली पर अभियान करेंगे ?"

"जब हम अभियान करने योग्य हो जायेंगे।"

"आपका यह उत्तर विचित्र है।"—वज्जिरा ने किंचित् रोषावेशित स्वर में कहा। महामात्य ने मुस्कराकर उत्तर दिया :

"देवी, क्षमा करें। विचित्रता की प्रतिमूर्ति तो आप स्वयं हैं। व्यक्तिगत स्पर्धा से प्रेरित होकर आप संपूर्ण मगध को नर-संहार के मार्ग पर धकेल देना चाहती हैं, जबकि आप उस मार्ग की कठिनाइयों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।"

"महामात्य !"—वज्जिरा गरज उठी। महामात्य ने पूर्ववत् स्वर में कहा :

"पट्ट महिषी शांति का अवलंब लें तो अच्छा हो। मैं मगध ही नहीं, संपूर्ण जंबू द्वीप के कल्याण से प्रेरित होकर कोई कार्य करता हूं। आप मल्लों का विनाश चाहती हैं—मात्र विनाश के निमित्त। यह विचित्र क्षुधा है, विनाशकारी महत्वाकांक्षा है। क्रोध से उद्भूत कर्म धर्म को कलंकित कर देता है। आप मगध की पट्ट महिषी हैं—मैं आपकी वंदना करता हूं। किंतु, मगध के विनाश के साथ ही आपका वंदनीय स्वरूप भी विनष्ट हो जायेगा। एक बात और सुन लीजिए। मगध में सम्राट् का आदेश तभी तक अनुकरणीय है जब तक कि उसे समिति एवं अमात्यमंडल की स्वीकृति प्राप्त है। आप सम्राट् को ऐसी प्रेरणा देने का प्रयत्न कभी मत कीजिए, जो समिति एवं अमात्यमंडल की मर्यादा के विपरीत हो।"

"तो क्या आपके राज्य में पट्ट महिषी का कोई महत्व नहीं है ?"

"बहुत महत्व है। तभी तो मैं आपकी वंदना करता हूं। मर्यादा के पालन में मर्यादा की रक्षा होती है। समिति या अमात्यमंडल आपकी ही मर्यादा के प्रतीक हैं। उनका उल्लंघन करके आप रहेंगी कहां ?"—महामात्य के विचार से वहां उपस्थित सभी जन सहमत थे; किंतु, किसी में बोलने का साहस नहीं रह गया था। अचानक, सम्राट् अजातशत्रु अपना मौन भंग करके बोले :

' किंतु, पट्ट महिषी का रोष अनुचित नहीं है।"

"कौन कहता है कि उनका रोष अनुचित नहीं है ? मैं स्वयं मगध का विस्तार करने के लिए व्याकुल हूं।"

"तो बाधा क्या है ?"

"हमारी विवशता। वैशाली की शक्ति अजेय है, वैशाली का दुर्ग अभेद्य है और वहां के लिच्छवि प्रचंड पराक्रमी हैं। मैं मगध के सैनिकों को काल के मुंह में नहीं झोंकना चाहता। जब तक हमें उनकी शक्ति के…"

"सम्राट् की जय हो !"—तभी प्रतिहारी ने आकर निवेदन किया। अजातशत्रु चौंक उठे। बोले :

"क्या है ?"

"एक श्रमण आपसे मिलना चाहते हैं।"

"देखते नहीं, अभी मैं व्यस्त हूं !"

"श्रवण अपने को शास्ता देवदत्त का शिष्य बताते हैं।"

"ओह···शास्ता के शिष्य ! उन्हें शीघ्र सम्मानपूर्वक ले आओ।··· ठहरो। तुम नहीं।···दौवारिक !"

"आज्ञा सम्राट्।"

"आप स्वयं जाकर उन्हें ले आइए।"

दौवारिक के चले जाने के पश्चात् महामात्य ने कहा :

"भिक्षु देवदत्त तो भगवान बुद्ध की अलौकिक शक्ति से पराजित होकर कहीं अंतर्धान हो गये थे ?"

"हां।"

"फिर कहां से आ गये ?"

अजातशत्रु ने कोई उत्तर नहीं दिया। श्रमण के आते ही अजातशत्रु भद्रासन से उठ खड़े हुए और प्रतिसम्मोद के पश्चात् बोले :

"शास्ता कहां हैं ?"

"श्रावस्ती के जेतवन के बाहर पुष्करिणी के पास उनका देहांत हो गया।"

"शास्ता परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ?"

"नहीं। भगवान बुद्ध की हत्या करने में विफल होकर वे इधर-उधर भटकते हुए रोगग्रस्त हो गये। अंततोगत्वा उन्हें ज्ञान हुआ कि भगवान बुद्ध सत्य ही बुद्ध हैं। अतएव, रोगग्रस्त होते हुए भी वे भगवान के दर्शनार्थं जेतवन की ओर चल पड़े किंतु, अपने पाप-कर्मों के कारण वे भगवान के दर्शन नहीं पा सके, मार्ग में ही रक्त का वमन करके चल बसे।"

"यह तो आपने बहुत ही दुखद समाचार सुनाया !"—अजातशत्रु ने विषादपूर्ण स्वर में कहा। महामात्य तत्क्षण बोल उठे :

"यह तो बड़ा ही आनंददायक समाचार है सम्राट् ! देवदत्त को भगवान बुद्ध की अलौकिक शक्ति का ज्ञान तो हो गया।"

"आर्य ब्राह्मण !"—अजातशत्रु उल्लासपूर्ण स्वर में बोल उठे। महामात्य ने किंचित् आश्चर्य के स्वर में कहा :

"आज्ञा !"

"भगवान बुद्ध तो इन दिनों गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते हैं ?"

"हां श्रीमन् ।"

"ठीक है ।"—स्वगत भाषण के स्वर में बोलकर अजातशत्रु ने श्रमण से कहा—"मेरे योग्य कोई सेवा ?"

"मात्र देवदत्त के देहांत की सूचना देने आया था । अब मैं भगवान के भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो चुका हूं ।"

"सुंदर ! मैं एक दिन स्वयं भगवान के दर्शन करने आऊंगा ।" श्रमण के चले जाने के पश्चात् अजातशत्रु ने पुनः उल्लसित स्वर में पूछा : "भगवान बुद्ध को तो वैशाली बहुत प्रिय है ?"

"हां श्रीमन् !"

"कारण ?"

"निश्चय ही वैशाली में कोई अलौकिक शक्ति होगी ।

"और उस शक्ति का रहस्य भगवान बुद्ध जैसे अलौकिक पुरुष से छिपा नहीं रह सकता ।"

"आपका अनुमान निराधार नहीं है ।"

"तो मैं निश्चय ही वैशाली को धूल में मिला दूगा । वैशाली की पुष्करिणी को वहां के बयालीस सहस्र परिवारों के सिरों से पाट दूंगा। उन्होंने मगध की खान लूटी है, महामात्य, मैं संपूर्ण वज्जि-संघ को लूटकर उसे श्मशान बना दूंगा। महामात्य ! ये लिच्छवि अजातशत्रु को दुर्बल मान बैठे हैं ।"

वर्षकार ने शांत स्वर में कहा :

"मैं आपके विचार से सहमत नहीं हूं सम्राट् ! यदि वे अजातशत्रु को दुर्बल समझते तो अपने हाथ-पांव को समेटे रहते ।"

"आपका तर्क तो मुझे रहस्य-जाल-सा प्रतीत होता है ।"

"मेरे तर्क में रहस्य का आभास भी नहीं है । वज्जि-संघ आपकी शक्ति को ही नहीं, आपकी महत्त्वाकांक्षा को भी पहचानता है । वज्जि-संघ जानता है कि युवराज अजातशत्रु ने अंग के मंडलेश्वर-पद से ही संतुष्ट न होकर, मगधपति के पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए अपने पिता तक को कारावास में डाल दिया था ।"

"मैं समझा नहीं।"

"मेरा आशय स्पष्ट है। वज्जि-संघ जानता है कि मगधपति अजातशत्रु समस्त जंबू द्वीप का एकराट् बनने की महत्वाकांक्षा रखता है। इसीलिए वह आपकी शक्ति का असमय एवं प्रतिकूल परिस्थिति में अपव्यय करवा डालना चाहता है।"

"किंतु, मैं अलौकिक शक्ति की बात कह रहा था। आपको शीघ्र ही गृध्रकूट पर्वत पर पहुंचना है। वहां जाकर मेरे वचन से भगवान के पैरों मे सिर दे वंदना करें। मेरी ओर से कुशल-क्षेम पूछें और उन्हें मेरी महत्वाकांक्षा से परिचित करा दें। इस तरह निश्चय ही हमें भगवान के वैशाली-प्रेम का रहस्य मालूम हो जायेगा। और महामात्य…"

"वह रहस्य मुझे पुष्पपाल से ही मालूम हो गया था। आज भगवान के वचन ने उसकी पुष्टि कर दी।"

"तो क्या आप गृध्रकूट पर्वत पर…"

"गया था। वहां चारों ओर अखंड शांति व्याप्त थी। बड़ी कठिनाई से भगवान के दर्शन हुए। अपने शिष्यों—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के परिनिर्वाण से वे अत्यधिक दुखी थे। मेरे मुख से आपकी महत्वाकांक्षा की सूचना पाकर वे किंचित् रुष्ट भी हो गये।"

"उन्होंने क्या कहा?"

"वैशाली के नागरिक सात अपरिहारणीय धर्म का पालन करते हैं। जब तक वे इस धर्म का पालन करते रहेंगे, उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।"

"कौन-से सात अपरिहारणीय धर्म?"

"वज्जि सम्मति के लिए बराबर संथागार में सभा करते हैं; वे एक हो बैठक करते हैं और एक हो उत्थान करते हैं; परंपरा का पालन करते है; गुरुजनों का आदर करते हैं; कुल-स्त्रियों की प्रतिष्ठा करते हैं; चैत्यों की पूजा करते हैं; और अर्हतों की रक्षा करते हैं।"

"फिर आपने क्या निश्चय किया है?"

"वज्जियों को इस अपरिहारणीय धर्म से विचलित करना होगा। शस्त्र-बल से पूर्व भेद-नीति का आश्रय लेना होगा।…सेनापति सुनीथ!"

"आज्ञा आर्य ब्राह्मण !"

"पाटलिग्राम के दुर्ग का क्या समाचार है ?"

"कार्य शीघ्रता से संपन्न हो रहा है।"

"बहुत सुंदर !···सम्राट् से मेरा एक निवेदन है।"

"आपकी इच्छा जानने की देर है आचार्य वर्षकार !"

"मैं कुछ दिनों के लिए राजगृह से कहीं दूर जाकर विश्राम करना चाहता हूं।"

"कब ?"

"शीघ्रातिशीघ्र।"

"ऐसी स्थिति में आपकी अनुपस्थिति से मगध का···"

"कल्याण ही होगा सम्राट् !"

"किंतु···"

"सम्राट् ! मै अपने निर्णय में विघ्न को असह्य मानता हूं।"

सम्राट् अजातशत्रु मौन हो गये। वर्षकार सुनीथ को साथ लेकर भुक्तास्थानमंडप से बाहर हो गये।

मध्य रात्रि बीत चुकी थी। राजगृह के बत्तीसों बड़े द्वार और चौंसठों छोटे द्वार हो चुके थे। मदिरालयों का भीषण उत्क्रोश मंद पड़ चुका था। राजगृह नगर के प्राचीर के बाहर पूर्व दिशा में कौमारभृत्य जीवक का विशाल आम्रवन था। अंधकार का भयावह रूप उस आम्रवन में साकार

हो उठा। हाथ को हाथ नहीं दिखायी दे रहा था। फिर भी वहां दस अश्वारोही किसी की घात में खड़े हुए थे। सबकी दृष्टि राजगृह के पूर्वी द्वार की ओर लगी हुई थी।

आम्रवन में खड़े अश्वारोहियों की शंका निर्मूल नहीं थी। कुछ ही देर में पूर्व का विशाल द्वार भीषण गड़गड़ाहट के साथ खुला। निस्तब्ध रात्रि के अंधकार को चीरती हुई वह भयावह ध्वनि आम्रवन में खड़े सैनिकों को सतर्क कर गयी। सबके-सब सावधान दृष्टि से द्वार की ओर देखने लगे। द्वार पर बहुत-सी उल्काएं प्रज्वलित थीं, जिनके प्रकाश में वहां दो अश्वारोही दीख पड़े। तोरण परसे प्रतिहारी ने नीचे उतरकर उन दोनों अश्वारोहियों के हाथ से मुद्रिका लेकर उल्काओं के प्रकाश में उसे देखा और अश्व पर लदे सामान की ओर एक निरीक्षणात्मक दृष्टि डाली।

कुछ क्षण पश्चात् ही दोनों अश्वारोही आम्रवन की ओर बढ़ चले। किंतु, विधाता वाम था। आम्रवन में पहुंचते ही दोनों अश्वारोही घेर लिये गये। तत्क्षण दोनों में से एक ने कड़ककर प्रश्न किया :

"कौन हो तुम लोग ? मार्ग अवरुद्ध करने की धृष्टता तुम लोगों में हुई कैसे ?"

घात में खड़े अश्वारोही सैनिकों में से एक आगे बढ़ आया और बोला :

"सिंहरथ का नाम सुना है ?"

"कौन सिंहरथ ? सिंहपाद सैनिकों के सेनापति ?"

"हां, सम्राट् अजातशत्रु के निजी अंगरक्षकों का अध्यक्ष—मौल सेनाध्यक्ष।"

"ठीक है आप अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए और हमें अपनी राह जाने दीजिए।"

"आप लोग यहां से एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते।"

"क्यों ?"

"मेरा यही आदेश है।"

"मौल सेनाध्यक्ष सिंहरथ ! यह धवलगृह नहीं है कि आपका आदेश चलेगा।"

"मौल सेनाध्यक्ष का आदेश उन सभी स्थानों पर चलेगा, जहां-जहां मगध सम्राट् अजातशत्रु का आदेश चलता है। किंतु, तुम लोग हो कौन? जानते नहीं कि मेरे साथ व्यर्थ के उत्तर-प्रत्युत्तर करने का परिणाम कितना घातक होगा? तुम दोनों ही बंदी बनाये जाते हो।"

"सावधान मौल सेनाध्यक्ष सिंहरथ! हमें बंदी बनाने का परिणाम भयावह होगा। आपको विदित हो कि हम महामात्य वर्षकार के आदेश का पालन करने निकले हैं।"

"और हम आपको सम्राट् के आदेश पर बंदी बनाते हैं। आपका कल्याण इसी में है कि हमें बल-प्रयोग के अवसर से वंचित रखिए। आप देख रहे हैं कि मेरे साथ दस पराक्रमी योद्धा हैं, जो मेरे इंगित पर आप दोनों का शिरोच्छेद कर सकते हैं।"

सिंहरथ की गर्वोक्ति सुनकर दोनों अश्वारोही अट्टहास कर उठे। उनमें से जो अब तक मौन था, वह निर्भीक स्वर में बोला:

"भंते सिंहरथ! आपके सम्राट् जिस प्रतापी आचार्य के शिष्य हैं, उसी प्रतापी आचार्य के शिष्य होने का हमें भी गौरव प्राप्त है। दस तो क्या, पचास सिंहपाद सैनिकों को परास्त करने की शक्ति अकेले मेरे खड्ग में है। किंतु, हमें सम्राट् की मर्यादा की रक्षा भंग करने की आज्ञा नहीं है। अतएव हम आपके साथ चले चलते हैं।"

सूर्योदय होते ही राजगृह के नागरिक राजघोषणा सुनकर चौंक उठे। नगर में राज-सैनिक घोषणा करते फिर रहे थे: "महामात्य वर्षकार वज्जियों के साथ दुरभिसंधि करते पकड़े गये हैं। आज वाह्यास्थानमंडप में सम्राट् अजातशत्रु उनके अभियोग का परीक्षण करके दंड की व्यवस्था देंगे।" यह घोषणा सुनते ही नगर में अराजकता की-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी। सब लोग काम-धाम छोड़कर बाह्यास्थानमंडप की ओर दौड़ पड़े। धवलगृह के बाहर आबाल-वृद्धों की प्रचंड बाढ़ उमड़ आयी। बाह्यास्थान-मंडप तो क्या, अलिंद एवं सामने का विशाल प्रांगण भी खचाखच भर गया।

नियत समय पर सम्राट् अजातशत्रु बाह्यास्थानमंडप में पधारे। उनकी मुख-मुद्रा अत्यधिक गंभीर हो उठी थी। उनकी आंखों में विषाद का सागर उमड़ रहा था। लगता था, जैसे रह-रहकर वे बलपूर्वक अपनी आंखों में

क्रोध समेटने का विफल प्रयत्न कर रहे हों। यदा-कदा उनके अधर स्पष्ट रूप से कांपने लगते थे, मानो वे मन-ही-मन कोई श्लोक कंठस्थ कर रहे हों। मंडप में अखंड शांति छायी हुई थी। बाहर व्याकुल नागरिकों का उत्क्रोश आकाश का स्पर्श कर रहा था, जिसकी अस्पष्ट ध्वनि से मंडप की शांति भयावह बन गयी थी।

सम्राट् अजातशत्रु भारी मन से उठे और बोले :

"राज-घोषणा आप सब सुन चुके हैं। महामात्य वर्षकार आपके समक्ष उपस्थित हैं। इन्होने अक्षम्य अपराध किया है, जिसका दंड इन्हें मिलना ही चाहिए। आचार्य वर्षकार यदि चाहें तो अपने स्पष्टीकरण के लिए अपनी ओर से साक्षी प्रस्तुत कर सकते हैं।"

सम्राट् के आसन ग्रहण करते ही आचार्य अपने आसन से उठे। उनके मुखमंडल पर स्वाभाविक गाम्भीर्य का भाव परिलक्षित हो रहा था। उनकी आंखो में आत्मविश्वास की ज्योति प्रज्वलित थी, और उनके स्वर में मेघ-गर्जन का-सा प्रभावोत्पादक घोष था। वे स्थिर-चित्त होकर बोले :

"मेरी दृष्टि में आज की सभा एक भद्दे नाटक से अधिक महत्व नहीं रखती।"— महामात्य के इस वाक्य से सभा में हलचल मच गयी। उन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि से मंडप मे एकत्र लोगों को देखा और कहा : "कदाचित् आप लोग मेरे कथन से सहमत नही हैं। किंतु, वर्षकार ने कभी किसी की सह-मति की प्रतीक्षा नहीं की है। मैं साक्षी या प्रतिभू[1] प्रस्तुत करना नितांत अनावश्यक मानता हूं, क्योंकि मैंने कोई अपराध नहीं किया। अपराधी स्वयं सम्राट् हैं, जिन्होने बिना युद्ध की घोषणा किये वज्जि गण-संघ को शत्रु मान लिया है। वस्तुतः वज्जि गण-संघ हमारा मित्र है। अतएव, मैंने मगध के महामात्य के नाते वज्जि गण-संघ के राजा चेटक को उपहार भेजा। मौल सेनाध्यक्ष सिंहरथ ने मेरे दूतों को बदी बनाकर नियम-विरुद्ध कार्य किया है। वास्तव में अपराधी तो सिंहरथ है, जिसने मगध के महा-मात्य की मुद्रिका की मर्यादा का उल्लंघन किया। किंतु, आश्चर्य की बात है कि मृत्यु-दंड का भागी निश्चित होकर जीवन का आनंद ले रहा है, और जिसने जीवन-भर मगध की सेवा की, वह आज अपराधी घोषित किया जा

१. जमानतदार

रहा है।"

"आप सत्य को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर रहे हैं।"—सम्राट् ने कहा : "महामात्य के नाते आप जानते थे कि मगध और वज्जि गण-संघ में सांप-नेवले का वैर है। फिर भी आपने चेटक को गुप्त रूप से उपहार भेजने का प्रयत्न किया। इसके लिए आपने मेरी अनुमति तक नहीं ली। इतना ही नहीं, आपके दूत राजा चेटक के नाम आपका जो पत्र ले जा रहे थे, उस पत से भी आपकी दुरभिसंधि की पुष्टि होती है। आपने चेटक को यह लिखकर कि 'मगध वज्जि गण-संघ की मित्रता का इच्छुक है' अनधिकार चेष्टा की है।"

"मैंने सत्य ही लिखा। मगध में इतनी शक्ति नहीं है कि वह वज्जि गण-संघ से लोहा ले सके।"

"तो क्या हम उन्हें अपनी खान सौंप दें ? गंगा-तट को अपनी अधीनता से मुक्त कर दें ? हल्ल-बेहल्ल जो सेचनक हाथी और मौक्तिक माल ले भागे, उन्हें वापस न मागे ?"

"निश्चय।"

"तो निश्चय ही आप देशद्रोही हैं।"

"देशद्रोही तो आप हैं सम्राट् ! आप मगध को विनाश की ओर खींच ले जाना चाहते हैं। आप अपनी महारानी वज्जिरा की व्यक्तिगत द्वेषाग्नि में पूरे देश की आहुति दे डालने की योजना…"

"वर्षकार !"

"आपका यह चीत्कार मैं आपके जन्म से ही सुनता आ रहा हूं। इसे मैं आपका क्रंदन मानने का अभ्यस्त हो गया हूं।"

"वर्षकार ! आप आर्यपट्ट पर प्रतिष्ठित सम्राट् के समक्ष बोल रहे हैं ?"

"तभी तो संयम से काम ले रहा हूं। अन्यथा…"

"अन्यथा ?"

"आपको मूक कर देने में मुझे क्षण मात्र का भी विलंब नहीं होता।"

"और यदि आप ब्राह्मण न होते, मेरे आचार्य न होते तो…तो…तो मैं इसी सभा में आपका शिरोच्छेद कर देता। जब आप महामात्य के पद

पर रहने योग्य नहीं हैं। अतएव मैं आपको आपके पद से च्युत करता हूं।"

"आप आर्यपट्ट पर विराजमान हैं। अतएव सब कुछ बोल सकते हैं। किंतु, स्मरण रखिए कि आर्यपट्ट शून्य में नहीं, प्रजा की भुजाओं पर टिका रहता है। मैं आप जैसे अदूरदर्शी सम्राट् का महामात्य कहलाने में स्वयं ग्लानि से मरा जा रहा था।...यह रही आपकी मुद्रिका और यह रहा आपका खड्ग। मैं अब इस राष्ट्र का अन्न-जल ग्रहण करने में भी पाप समझता हूं। मैं आज ही मगध का त्याग कर दूंगा। ब्राह्मण हूं। मेरे लिए आश्रय का अभाव नहीं है।"

आचार्य वर्षकार खड्ग एवं मुद्रिका फेंक कर बाह्यास्थानमंडप से बाहर निकल गये। सभा में उपस्थित सभी लोग स्तब्ध एवं संत्रस्त बने रह गये। किसी के मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला। सम्राट् अजातशत्रु अपने मन की व्यथा आंखों में अवरुद्ध किये वर्षकार का निष्क्रमण देखते रहे। विचित्र विक्षुब्ध वातावरण उपस्थित हो गया।

वैशाली के गण-सन्निपात ने बहुमत से निर्णय दे दिया कि मगध के निष्कासित ब्राह्मण वर्षकार को वैशाली में मात्र शरण ही नहीं दी जाय, प्रत्युत उसे सम्मानपूर्वक विनिश्चय-अमात्य के पद पर प्रतिष्ठित किया जाय। इस प्रस्ताव के प्रस्तुत होते ही संथगार में हो-हल्ला मच गया। किसी ने कहा : "वर्षकार महा प्रपंची ब्राह्मण है। उसे वैशाली में प्रविष्ट होने की अनुमति भी नहीं दी जाय।" कोई बोला : "निश्चय ही वह किसी

उद्देश्य से यहां आ रहा है। निष्कासन-दंड एक चाल है।" तो कोई बोला : "वर्षकार दूरदर्शी ब्राह्मण है। और जो भी दूरदर्शी होगा, अपने प्रबल शत्रु से युद्ध करना नहीं चाहेगा।" किसी ने इस कथन का समर्थन करते हुए कहा : "इसके अतिरिक्त वर्षकार प्रतिष्ठित ब्राह्मण है। वह इस प्रकार अपमानित होकर निष्कासन-दंड प्राप्त करने की योजना स्वयं क्यों बनायेगा ?"

अंततोगत्वा वैशाली की परंपरा विजयी हुई। शरण मे आये हुए महापुरुष को सम्मान देने का निश्चय किया गया। विरोधियों को अपना प्रस्ताव लौटा लेना पड़ा।

आचार्य वर्षकार वैशाली में प्रतिष्ठित होकर शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। उनके न्याय की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। जो पहले विरोधी थे, वे भी भक्त बन गये। वर्षकार अवकाश के समय नगर का भ्रमण करते, लिच्छवियों से मिलते-जुलते और उनके सुख-दुःख में सहानुभूति प्रकट करते थे। तब तक विश्व-सुंदरी देवी अम्बपाली भगवान बुद्ध की शिष्या बन चुकी थीं।

संध्या के समय वर्षकार उद्यानों में भ्रमण किया करते थे। यदि किन्हीं दो लिच्छवियों या अन्य कुलों के दो योद्धाओं को एकसाथ जाते देखते तो उनमें से एक को बुलाकर धीमे स्वर में पूछते : "कैसे हैं भंते ?"

"सकुशल हूं आर्य !"

"हां, आपके मुखमंडल से तो वैसा कोई चिह्न प्रकट नहीं होता।" —वर्षकार गंभीर स्वर में कह उठते। लिच्छवि आशंकित होकर पूछता :

"कैसा चिह्न आर्य ?"

"बतलाने योग्य बात नही है।"

"फिर भी ?"

"कुछ नहीं, भूल जाइए इस बात को। जाइए, भ्रमण कीजिए।"

"नहीं, नही, अब तो आपको बताना ही पड़ेगा।"

"अरे वह क्या नाम है उसका···हां, हां, स्मरण आया, सोमदेव। वही कह रहा था।"

"क्या कह रहा था ?"

"आप उससे मेरी चर्चा तो नहीं करेंगे ?"

"कदापि नहीं।"

"वह आपके परिवार के संबंध में कह रहा था कि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। दिन में भोजन करते हैं, तो रात्रि में उपवास रखना पड़ता है और यदि रात्रि में भोजन मिल जाता है, तो दिन की चिंता करनी पड़ती है।"

"नीच ! पातकी ! ऐसा कहता था ?"

"हां ! किंतु, आपने मेरी चर्चा नहीं करने का वचन दिया है।"

"आप निश्चित रहिए आर्य !"

"मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। जाइए, भ्रमण कीजिए। आपके मित्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे भी इस बात की चर्चा मत कीजिएगा।"

"नहीं करूंगा।"

इस प्रकार भेद का बीज अंकुरित होने लगा। जैन एवं बौद्ध श्रमणों के बीच संघर्ष उत्पन्न करने में भी वर्षकार को सहज ही सफलता प्राप्त होने लगी। ब्राह्मणों के अनुयायी तो वर्षकार के भक्त थे ही, व्रात्यों एवं दासों की चेतना को भी वर्षकार ने जागृत कर दिया।

वैशाली के गण-सन्निपात में सात सहस्र सात सौ सात सदस्य थे। वे सभी 'राजूनम्' कहे जाते थे। वैशाली में अभिषेक-पुष्करिणी थी, जिसमें स्नान करने के अधिकारी मात्र ये 'राजूनम्' ही हुआ करते थे।

वर्षकार ने उन सब लोगों में द्वेष का भाव उत्पन्न कर दिया, जो अभिषेक-पुष्करिणी में स्नान करने के अधिकारी नहीं थे। यह संपूर्ण कार्य वर्षकार इस कुशलता से संपादित करते रहे कि किसी को उन पर रंचमात्र भी अविश्वास नहीं हुआ।

गंडकी के पश्चिमी तट पर एक समृद्ध ग्राम था, ब्राह्मणकुंड ग्राम। ब्राह्मणकुंड ग्राम के कुछ उत्तर निर्जन प्रदेश था, जहां अति प्राचीन चैत्यों के खंडहर एवं जंगली लता-द्रुम के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

रात्रि का दूसरा प्रहर आरंभ ही हुआ था कि एक अश्वारोही ब्राह्मण-

कुंड ग्राम से निकला और अपना अश्व त्वरित गति से दौड़ता हुआ उस जनशून्य चैत्यों के खंडहर की ओर अग्रसर हुआ। खंडहर के निकट पहुंचकर अश्वारोही ने अपने अश्व की गति धीमी कर दी। वह धीरे-धीरे खंडहरों से होकर आगे बढ़ने लगा। उत्तरी छोर पर एक बड़ा खंडहर था, जिसमें धूनी की लपटें उठ रही थी। धूनी के पास एक जटाजूटधारी भैरवाचार्य को देखकर अश्वारोही आश्वस्त हुआ और अश्व से उतर कर वहां जा पहुंचा। धूनी के पास बैठे हुए भैरवाचार्य निश्चिंत भाव से आगंतुक को देखते रहे। आगंतुक ने भैरवाचार्य को विनम्रतापूर्वक प्रणाम किया और कहा :

"विलंब के लिए क्षमा चाहता हूं। घाट पर कुछ सैनिक चक्कर काट रहे थे; इसलिए इधर न आकर सीधे कुंडग्राम चला गया। संयोग से वहां मेरे एक संबंधी भी रहते हैं।"

"कोई चिंता नहीं भंते पुष्पपाल! अपररात्र के तृतीय मुहूर्त तक भी मगध की सीमा में प्रविष्ट हो जाना निरापद ही है। आचार्य कैसे हैं?"

"सकुशल हैं भंते जीवक! उन्होंने तो कुछ ही महीनों में चमत्कार उत्पन्न कर दिया। वैशाली ही नहीं, संपूर्ण वज्जि गण-संघ में विद्वेष की ज्वालामुखी सुलग रही है। प्रत्येक कुल प्रतिरोध की ज्वाला में तिलमिला रहा है। एक संप्रदाय दूसरे का शत्रु बना बैठा है।"

"उनका क्या आदेश है?"

"दो मास पश्चात् वन-भोज महोत्सव की तिथि आ जायेगी। उस दिन प्रायः सभी लिच्छवि प्रातःकाल ही वैशाली नगर से दूर महावन में चले जाते हैं और दिन-भर शूकर, हिरण, मोर आदि का शिकार करते हैं। जब तक मांस पकता है, वे लोग नाचते-गाते रहते हैं और मैरेय का पान करते हैं। आचार्य का आदेश है कि उसी दिन मगध की सेना वैशाली पहुंच जाय। उस समय सहस्रों लिच्छवि महावन में उपस्थित रहेंगे। अतएव, पचास सहस्र सैनिक चम्पा से अभियान करें और कौशिकी[1] नदी की राह वैशाली के पूर्व महावन में प्रविष्ट हो जायं। महावन में उपस्थित लिच्छवियों का संहार करके वे मिथिला-विजय करते हुए महलों पर धावा बोल दें। चम्पा

१. कोशी।

से अभियान करने वाली सेना का नायकत्व सिहरथ एवं धनंजय में विभक्त कर दिया जाय। वैशाली-अभियान में स्वयं सम्राट् अजातशत्रु नायकत्व करें। किंतु, यह सब कार्य गुप्त रूप से संपादित किया जाय। चम्पा से अभियान करने वाली सेना की तो किसी को ध्वनि तक नहीं मिलनी चाहिए।"

"आचार्य-प्रवर से कह दीजिएगा कि उनके आदेश का अक्षरश: पालन किया जायेगा। किंतु, आपने यह तो वताया ही नहीं कि बौद्ध भिक्षु किसका साथ देगे ?"

"मगध के भिक्षु क्या सोचते हैं ?"

"वे तो भगवान के महा परिनिर्वाण के पश्चात् आपस में ही एक-दूसरे से उलझ रहे हैं। उन्हें सभालने वाला कोई है ही नहीं।"

"तो वही दशा वैशाली के भिक्षुओं एवं स्थविरों की भी है। प्रत्येक प्रमुख भिक्षु संघ की सत्ता ग्रहण करने को व्यग्र है। आनद के अवशेष प्राप्त करने के लिए सम्राट् अजातशत्रु ने जो व्यग्रता दिखलाई, उससे वैशाली के भिक्षु अजातशत्रु में अत्यधिक विश्वास रखने लगे हैं।"

"यह सब आचार्य वर्षकार के समयोचित परामर्श का फल है। किंतु, इस बात को मात्र तीन व्यक्ति जानते हैं—स्वयं सम्राट्, मैं और सेनाध्यक्ष सुनीथ। अन्यथा संपूर्ण मगध आज वर्षकार के नाम पर थू-थू कर रहा है।"

"आचार्य की साधना एवं त्याग अपूर्व है भंते जीवक !"

"फिर तो अब आपकी ग्लानि मिट गयी होगी भते पुष्पपाल ?"

"हां भंते ! मैं समझता था कि महामात्य मुझसे प्रायश्चित करवाने के लिए मुझे वैशाली भेज रहे हैं। 'मगध के लोग मेरे संबंध में क्या सोचते होंगे ?'—यही सोच-सोच कर मैं ग्लानि से मरा जा रहा था। किंतु, जब परम पूज्य आचार्य वर्षकार ने मगध के हित के निमित्त अपनी समस्त प्रतिष्ठा की बलि दे दी, तब मुझे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ।"

"अब तो अधिक दिन बचे भी नहीं बंधु !"

"मुझे अब दिन अथवा संवत्सर की चिंता नहीं है। सरमा कैसी है ?"

"सकुशल है। आपका स्मरण करके वह बहुत दुःखी हो जाती है। बेचारी द्वंद्व में पड़ी हुई है।"

"कैसा द्वंद्व ?"

"मगध की होने के नाते आपसे घृणा करती है, किंतु बहन के नाते आपके दर्शनों के लिए लालायित रहती है। उसका द्वंद्व अत्यधिक प्रबल हो उठता है, जब मैं आपके प्रति कोई असम्मान प्रकट नहीं करता। क्या करूं ? कैसे कहूं कि तुम्हारे अग्रज वैशाली में मगध का महान कार्य संपादित कर रहे हैं !"

"और···मां सालवती···?"

"कुछ दिन हुए, उनका देहावसान हो गया। मैं उन दिनों काशी गया हुआ था।"

"ओह··· !"

"अच्छा बंधु ! अब आप जाइए। विलंब करना घातक होगा। आचार्यपाद से कह दीजिएगा कि ठीक पंद्रह दिन पश्चात् रात्रि का पहला प्रहर व्यतीत होते ही मैं इसी स्थान पर उपस्थित रहूंगा। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है कि मैं अपना वैद्य का कर्तव्य त्याग कर राजनीति में उलझा हुआ हूं।"

"अच्छी बात है। कदाचित् उस दिन भी मुझे ही आना पड़े। आचार्य का नगर से बाहर आना उपयुक्त नहीं होगा।"

पुष्पपाल के प्रस्थान कर जाने के कुछ समय बाद कौमारभृत्य जीवक भैरवाचार्य के ही वेश में खंडहर से निकल पड़े।

रात्रि का द्वितीय प्रहर व्यतीत हो रहा था। वैशाली की प्रसिद्ध गणिका क्षेमा के प्रासाद से अंतिम अतिथि जा चुका था। क्षेमा शिथिल होकर बैठी कुछ सोच रही थी कि परिचारिका ने आकर सूचना दी—

"विनिश्चय-महामात्य वर्षकार पधारे हैं।"

"ऐं! कौन ?···विनिश्चय-महामात्य वर्षकार ?···इतनी रात्रि व्यतीत होने पर ?···ले आओ।"

यदि वर्षकार के स्थान पर कोई अन्य अतिथि होता, स्वयं गणपति भी होते, तो भी क्षेमा कदाचित् मिलने की अनुमति नहीं देती। किंतु, वर्षकार का क्षेमा पर बहुत बड़ा अनुग्रह था। बात यह हुई कि एक बार क्षेमा ने क्रोध मे आकर एक दासी की हत्या कर दी थी। वज्जि गण-संघ में दासी या दास की हत्या कर देना बहुत बड़ा अपराध माना जाता था। इस घटना से क्षेमा असीम विपत्ति के दलदल मे जा गिरी। किंतु, विनिश्चय-महामात्य वर्षकार ने क्षेमा को किसी विध दंड से मुक्त कर दिया था। अतएव, वर्षकार का आगमन सुनकर क्षेमा किंचित् घबड़ाहट एवं आश्चर्य से भर गयी। वर्षकार के कक्ष में प्रवेश करते ही उसने उठकर उनका अभिवादन किया। वह सम्मानपूर्वक बोली :

"इतनी रात्रि को आप यहां ?"

"क्यों ?···यदि तुम्हे आपत्ति हो तो···"

"नही, नही, यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे यहां पधारे।

तो चिंतावश बोल गयी थी कि इतनी रात्रि व्यतीत होने पर आप किस कारण मेरे यहां पधारे।···आइए, यहां विराजिए।"

"देख ही रही हो क्षेमा कि मैं अब अति वृद्ध हो चला। वय की पुकार पर तो मैं तुम्हारे पास आने से रहा।"

"वही तो।"

"किंतु, वय की पुकार से भी बड़ी वस्तु होती है अभाव की पुकार। इस वृद्धावस्था में मगध सम्राट् ने मुझे निष्कासन-दंड दिया। वैशाली धन्य है, जहां शत्रु-देश के राजपुरुष को भी शरण मिल जाती है। और मुझे तो यहां सम्मान भी मिला। किंतु, यहां मैं बहुतों को जानते हुए भी पहचानता किसी को नहीं। फिर मन कैसे लगे?"

"यह तो सत्य है आर्य! आपके अवकाश का समय तो बहुत कष्ट से कटता होगा।"

"वैशाली में उद्यानों, पुष्करिणियों, कमल-वन आदि का तो अभाव है नहीं। यहां के सहस्रों प्रासाद भी दर्शनीय हैं। बहुत दिनों तक तो इन्हीं वस्तुओं के बीच घूमता रहा। बड़ा आनंद आया। सचमुच वैशाली देवपुरी है।···किंतु, बारंबार एक ही वस्तु को देखते-देखते मन और भी खिन्न हो उठा। कई दिन से सोच रहा था कि अब कहां जाऊं—किससे मिलूं? अचानक तुम्हारा स्मरण हो आया। असत्य भाषण क्यों करूं? संध्या के समय तुम्हारे यहां आने में किंचित् संकोच का अनुभव हुआ।"

"आपने बहुत बड़ी कृपा की कि असमय में इस तुच्छ को स्मरण किया। आज्ञा कीजिए! क्या सेवा करूं?"—क्षेमा कृतार्थ होकर बोली। वर्षकार क्षण-भर क्षेमा को देखते रहे। उस दृष्टि में आमंत्रण, स्नेह, क्षुधा अथवा अनुराग नहीं था। उस दृष्टि में परखने का भाव था। वर्षकार के सूखे होठों पर मुस्कराहट कांप रही थी। रूपगर्विता क्षेमा किंचित् रोमांचित हो उठी। वह स्वयं नहीं समझ पायी कि उसे क्यों रोमांच हो आया। कदाचित् उसके मन के किसी कोने में भय की छाया सुगबुगा उठी थी। वह झेंपती हुई बोली: "कुछ पीयेंगे?"

"नहीं।·· मैंने सोचा कि मध्यरात्रि के पश्चात् प्रायः तुम भी अकेली ही रहती होगी। और मैं तो अकेला हूं ही। इसीलिए, तुम्हारे पास चला

आया। क्यों, सत्य है न ?"

"हां आर्य !"

"क्या तुम्हारे मन में कभी यह व्यग्रता नहीं उपजी कि अकेलापन काटने के लिए किसी के पास चलना चाहिए ?"

"उपजी क्यों नहीं ? प्रत्येक रात को यह व्यग्रता काल-सर्प बन कर मुझे डंसती है।"

"प्रत्येक रात को ?"

"मेरा तात्पर्य उस रात से है, जो मेरे पास अकेली आती है।"

"वही तो।"

क्षेमा चौंक उठी। 'वही तो' : कहकर वर्षकार अर्थपूर्ण मुस्कराहट से क्षेमा की ओर देख रहे थे : क्षेमा को लगा, जैसे वर्षकार सब कुछ जानते हैं। वर्षकार क्षेमा को बेधड़क दृष्टि से देखते हुए बोले : "तुम्हें आश्चर्य हो रहा है कि मैंने यह वाक्य क्यों कहा ? मेरा कार्य ही ऐसा है। भांति-भांति के लोग मेरे पास आते रहते हैं। नगर की कोई घटना मुझसे छिपी नहीं है।"

"जी ?"

"हां क्षेमा !"

"मैं आपका तात्पर्य समझी नही !"

"स्पष्ट है। प्रेम जब स्वार्थ के धरातल पर उपजता है, तब उसमें से ईर्ष्या, घृणा एव पशुता के पल्लव-पुष्प फूट निकलते हैं।"

"आप सत्य ही कह रहे हैं आर्य।"—क्षेमा घबराहट छिपाती हुई बोली। वर्षकार स्थिर-चित्त हो बोलते रहे :

"सत्य को अनुभव करके भी जो असत्य का ही पालन करे, उसे क्या कहोगी ?"

"पापी।"

"तुम क्या हो ?"—वर्षकार ने किंचित् कठोर स्वर में पूछा। क्षेमा भय से कांपने लगी। वह वर्षकार का आशय समझ गयी; कांपती हुई बोली :

"मैं प्रेम में अंधी हो गयी थी प्रभो ! मैंने जान-बूझकर यह अपराध

नहीं किया।"

"जिसके लिए ऐसा जघन्य अपराध किया, उसकी कभी परीक्षा ल है ?"

"प्रेम की परीक्षा नहीं ली जा सकती।"

वर्षकार इस बात पर अट्टहास कर उठे। उनके अट्टहास से वह कक्ष ही नहीं, संपूर्ण प्रासाद कांप उठा। क्षेमा भय से पीली पड़ गयी। वर्षकार हंसते हुए दांत पीसकर बोले :

"जिस प्रेम की परीक्षा नहीं होती, वह प्रेम किसी की हत्या नहीं करवाता, वह प्रेम करुणा, क्षमा, त्याग एवं उदात्त भावों का उत्स होता है। वैशाली के राजपुरुष दस दिन से आश्चर्य में डूबे हुए हैं कि उपनायक कपिल कहां गये ? सैनिकों ने आकाश-पाताल एक कर दिया। किंतु, कपिल का कहीं चिह्न तक नहीं है। उन बेचारों को क्या मालूम कि नायक कपिल प्रेम की बलि चढ़ गया। उन्हें क्या पता कि देवी अम्बपाली की उत्तराधिकारिणी क्षेमा ने वैशाली के पराक्रमी योद्धा को सदा के लिए···"

"महामात्य !"—क्षेमा चीत्कार-सा कर उठी।

"क्यों ? डर गयी ? प्रेम का उन्माद उतर गया ?"

क्षेमा बिलखती हुई वर्षकार के पैरों पर गिर पड़ी। सिसकती हुई बोली :

"रोहण की किसी इच्छा को मैं अस्वीकार नहीं कर सकती प्रभो। उसके बिना मेरा एक-एक पल कल्प बन रहा है।"

"किंतु, तुम्हें निश्चय कैसे हुआ कि कपिल के स्थान पर रोहण ही वैशाली का उपसेनापति बन जायेगा और उल्काचेल से सदा के लिए वैशाली चला आयेगा।"

"यह निश्चय है महामात्य ! कपिल के पश्चात् रोहण का ही स्थान है। वे निश्चय ही वैशाली आ जायेंगे। प्रभो ! आपने पहले भी मुझे क्षमादान दिया है। एक बार और जीवन की भीख मांगती हूं।"

"क्यों जीना चाहती हो ?"

"रोहण के लिए।"

"रोहण तुम्हारा है ?"

"हां, शत प्रतिशत मेरा है।"

"तो एक काम करो।"

"आज्ञा कीजिए।"

"प्रत्येक वर्ष वन-महोत्सव के दिन तुम्हारा रोहण उल्काचेल के निकट ही वन में आनंद लेने चला जाता है। यह उसका पंद्रह वर्षों का नियम है। दस दिन पश्चात् पुनः वन महोत्सव आ रहा है। तुम उसे महोत्सव के दो दिन पूर्व ही यहा बुलाकर अपने पास महोत्सव संपन्न होने तक रोक लो। जिसके सकेत पर तुमने इतना बडा अपराध किया, यदि वह तुम्हारा अनुरोध स्वीकार करके यहां रुक जायगा, तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूगा। अन्यथा तुम दोनों के प्राण मेरी मुट्ठी से निकल भागेंगे।"

"यह तो बहुत ही साधारण परीक्षा है आर्य! मेरा रोहण इसमें निश्चित रूप से सफल होगा।"

"एक बात और। यहां आते समय वह उल्काचेल के शस्त्रागार का कीलक भी अपने साथ लेता आये।...अब तुम विश्राम करो। ग्यारहवें दिन देखने आऊगा कि रोहण और कीलक कहा है? किंतु सावधान! मेरी-तुम्हारी भेट की घटना किसी पर प्रकट न हो, रोहण पर भी नही।"

"जो आज्ञा।"

वर्षकार वहां से सीधे वैशाली के पूर्व स्थित उदयन-चैत्य पहुचे। नगर के महाद्वार से बाहर जाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। विनिश्चय-महामात्य होने के नाते उन्हें किसी भी समय कही भी जाने की अनुमति थी।

उदयन-चैत्य की पुष्करिणी के किनारे एक व्यक्ति की छाया देखकर वर्षकार उसी ओर अग्रसर हुए। छाया के निकट पहुंचकर वर्षकार ने धीमे स्वर में पूछा :

"मदिरा एवं मांस की व्यवस्था कर लाये पुष्पपाल?"

"हां श्रीमन्।"

"सुंदर!"

"क्या क्षेमा के यहां कार्य संपन्न हुआ?"

"वर्षकार किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता।"

"हमें उपसेनापति कपिल के शव की स्थिति का ज्ञान तो है नहीं। यदि

क्षेमा ने…"

"इसकी चिंता मत करो पुष्पपाल ! क्षेमा पूर्णतया मेरी मुट्ठी में है। कल ही किसी को ठीक करना होगा, जो उल्काचेल में व्यापारी बनकर जाय और वन-महोत्सव से एक दिन पूर्व रात-भर सैनिकों को मदिरा पिलाता रहे। रोहण वहां रहेगा नहीं, शस्त्रागार भी बंद ही रहेगा; सैनिक अनुशासनहीन होकर मदिरा एवं नृत्य में डूबे रहेंगे। फिर हमारे सैनिकों को गंगा पार कर वैशाली पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होगी।…अच्छा, अब तुम जाओ। मैं अकेला ही शास्ता अचेल कोर-मट्टक की सेवा में जाऊंगा। उनके आने का समय हो गया।"

पुष्पपाल चैत्य के बाहर आकर अश्व पर आरूढ़ हो नगर की ओर चला गया। महामात्य वर्षकार मांस-मदिरा उठाकर चैत्य के पूर्व चल पड़े। चारों ओर भयावह वन था। पश्चिम में दूर पर वैशाली के प्राचीर की धुंधली छाया दृष्टिगोचर हो रही थी। वर्षकार एक वट-वृक्ष के नीचे खड़े हो गये। उन्हें अधिक देर तक विलंब नहीं करना पड़ा। वर्षकार को लगा, जैसे अचानक ही किसी ने पूरे वट-वृक्ष को झकझोर दिया हो। उस अनुभूति के साथ ही तीक्ष्ण हवा का झोंका आया। वर्षकार अंधकार में आंखें गड़ाये अविचलित भाव से खड़े रहे। कुछ क्षण पश्चात् धम्-धम् करता हुआ एक नंग-धड़ंग नागा आकर उनके सामने खड़ा हो गया।

"कौन है तू ?"—तीक्ष्ण स्वर में नागा ने प्रश्न किया : "क्या करने आया है मेरे साम्राज्य में ?"

"मेरा नाम वर्षकार है शास्ता !"

"वर्षकार ? कौन वर्षकार ? जिसे अजात ने निष्कासन-दंड दिया था ?"

"हां शास्ता !"

"तो यहां क्या करने आया है ? तू तो आजकल लिच्छवियों की चाकरी कर रहा है ? जा भाग यहां से। इन लिच्छवियों ने मेरा तिरस्कार किया, निगंठनाथपुत्त और गौतम की माया में पड़कर अपना सहज स्वभाव गंवा दिया। मुझे इन लिच्छवियों से घृणा है। मैं इनके नगर में पांव नहीं धरता।"

"मुझे विदित है शास्ता! किंतु, मैं तो आपका ही अनुचर हूं—लिच्छ-वियों का नही।"

"फिर वैशाली मे बैठा क्या कर रहा है?"

"आपकी चाकरी।"

"मेरी चाकरी ?"

"हां शास्ता! वैशाली के चारों महाद्वार पर स्थित उदयन-चैत्य, गोत-मक-चैत्य, सप्ताम्रक-चैत्य और बहुपुत्रक-चैत्य के पास आपके लिए मदिरा-मांस रखवा देने की व्यवस्था विशेषकर मै ही करता हूं।"

"अच्छा ! तो तू ही वह विवेकी पुरुष है।"

"हां शास्ता ! मुझे आपकी सातो प्रतिज्ञाएं विदित है। वैशाली की सामान्य प्रजा तो आपकी भक्त है। किंतु, ये तथाकथित सहस्रों लिच्छवि राजा बुद्ध और महावीर के चक्कर मे पड़कर आपके विरोधी हो गये हैं। मेरी तो इच्छा होती है कि मैं इन लिच्छवियों को विनष्ट कर दूं, किंतु लाचार हूं।"

"तेरी इच्छा पूरी होगी वर्षकार ! मै देख रहा हूं—वैशाली जल रही है, उसके प्रासाद ध्वस्त हो रहे है, उसका संथागार टूट रहा है।"

"बस, आपके आशीर्वाद का ही अभाव था। मैने स्वेच्छा से निष्कासन-दंड ग्रहण किया है शास्ता ! वास्तव मे मै अभी भी मगध का ही महामात्य हूं।"

"फिर अपने राजा से आक्रमण करने को क्यों नही कहता।"

"इसी वन-महोत्सव के प्रातः आक्रमण होगा। किंतु, एक कठिनाई है।"

"क्या ?"

"वैशाली नगर के पूर्वी एवं दक्षिणी द्वार···"

"मैं समझ गया। उस दिन चारो ही द्वार खुल जायेगे।···लाओ, कहां है मेरा भोजन ?"

वर्षकार के हाथ से मांस-मदिरा की पोटली लेकर अचेल कोर-मट्टक वहां से झंझा की गति से अंतर्धान हो गये। वर्षकार मुस्कराते हुए नगर की ओर लौट आये।

रात्रि उतर आयी थी । राजगृह की वीथियों में चहल-पहल छा गयी थी। सरमा जीवक की प्रतीक्षा में मुखशाला में बैठी थी । जीवक को नगर से बाहर गये कई दिन व्यतीत हो गये थे । वह दुश्चिंताओं में घिरी हुई अनमनी-सी बैठी थी कि सामने एक भैरवाचार्य को देखकर भय से चीखकर उठ खड़ी हुई । डर के मारे उसकी विचित्र दशा हो गयी । मुखशाला में वह उस समय अकेली थी । भैरवाचार्य धीरे-धीरे सरमा की ओर बढ़ने लगे। सरमा को लगा कि अभी वह मूर्च्छित हो जायेगी । अचानक भैरवाचार्य बोल उठे :

"इस नश्वर जगत में किसकी प्रतीक्षा कर रही है ?"—सरमा चौंक उठी । उसने ध्यानपूर्वक दाढ़ी-मूंछ से आच्छादित विहंसते मुख-मंडल को देखा और दौड़कर भैरवाचार्य के गले में बांहें डाल दीं। भैरवाचार्य ने हंसते हुए कहा : "संसार-त्यागियों को आसक्ति के पंक में खींचना घोर पाप है।" सरमा कृत्रिम क्रोध से भर कर बोली :

"रहने दीजिए अपना प्रवचन ! तीन दिन में लौट आने का वचन देकर गये थे और आज चौथे दिन दर्शन हुए ।"

"देखती नहीं कि किस वेश में गया था ? इस वेश में यदि अश्व से यात्रा करता तो लोग क्या कहते ?"

"आप तो व्यर्थ ही वैद्य हुए । अच्छा होता कि आप गुप्तचर विभाग के अध्यक्ष होते ।"

"देश की सेवा करने के लिए किसी विभाग विशेष मे सम्मिलित होने की आवश्यकता नही होती।...अच्छा, ऊपर चलो। मुझे वस्त्र परिवर्तित करके शीघ्रातिशीघ्र धवलगृह पहुचना है।"

"कहते क्या है आप ? अभी आये और अभी...।"

"अभी ही लौट आऊगा प्रिय ! सम्राट् को आवश्यक सूचना देनी है।"

"अवश्य जाइए ! मेरा क्या महत्व है ! चार दिन से सम्राट् ही आपकी प्रतीक्षा में मरे जा रहे थे।"

"जो मेरी प्रतीक्षा मे मरा जा रहा था, वह तुम्हारी ही तरह कोमल, प्रेममय, सुदर एवं त्यागमय है। अतर इतना ही है कि वह तुम्हारी तरह वक्ता नही है। सम्राट् उसी 'मूक' की अभिव्यक्ति हैं। समझी ?"

"समझ गयी। किंतु, मै कहां जाऊ ?"

"तुम्हे कहां जाना है ? तुम तो भावना हो, कर्म नहीं। जो अंतर स्थूल और सूक्ष्म मे है, वही अतर पुरुष और नारी में है। अतएव आने-जाने का काम तो मेरा है, तुम्हारा नहीं।"

चांदनी रात थी। सम्राट् अजातशत्रु धवलगृह की तीसरी कक्ष्या की चन्द्रशालिका में बैठे हुए चांदनी का आनंद ले रहे थे। वहीं पार्श्व में पट्ट महिषी वज्जिरा एवं अन्य प्रजावतियां विराजमान थीं। राजकुमार उदायी-भद्र भी एक ओर खड़ा होकर नगर को देख रहा था। उदायीभद्र सोलह वर्ष का हो चुका था। सम्राट् ने नगर के गुंबदों, शिखरों एवं आकाश की ओर अनुरक्त भाव से देखते हुए कहा :

"कितनी सुंदर रात है। इच्छा होती है, इस अनुरागमयी सुशीतल चांदनी को पीता रह जाऊं और यह सुधामयी रात्रि कभी समाप्त ही न हो।"—निकट ही उनकी एक प्रजावती खड़ी थी। बोल उठी :

"सचमुच ! यह रात्रि तो विश्वमोहिनी जैसी लग रही है। सम्राट् यदि इसे वधू की भांति अलंकृत एवं सुसज्जित करने का आदेश दे दें, तो आनंद द्विगुणित हो जाय।"

"मेरी तो कुछ और ही इच्छा हो रही है।"—उदायीभद्र दूर से ही

गंभीर होकर बोला। सब लोगों की दृष्टि उदायी की ओर मुड़ गयी। सम्राट् ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा :

"हम कुमार की इच्छा जानना चाहते हैं।"

"पहले सब लोग अपनी-अपनी इच्छा बतायें।"—कुमार ने हंसकर कहा। एक सुंदरी दासी वहीं खड़ी थी। वह बोल उठी :

'आज की रात्रि समज्या-समारोह के योग्य है। वीथियों में कापिशायनी, मैरेय, प्रसन्ना आदि सुराओं की धारा प्रवाहित कर दी जाय, गीत-नृत्य-वादित्र की धूम से आकाश गूज उठे, सुंदरियों एवं···"

"बस, बस, भोग-लिप्सा के परे तुम्हारी इच्छा जा ही नहीं सकती।" —उदायी ने किंचित् तिरस्कार के स्वर में कहा। सम्राट् हसने लगे। कुमार उदायीभद्र क्षण-भर मौन रहकर बोला : "चांदनी के प्रकाश मे सभी पथ आलोकित हो उठे हैं। सृष्टि की व्यापकता का रहस्य उद्भासित हो उठा है। यह निस्सीम आकाश, यह विस्तृत वसुंधरा और यह सर्वव्यापी ब्रह्मांड मुझमें अजस्र शक्ति के अस्तित्व की चेतना जागृत कर रहा है। मेरी इच्छा होती है कि इन समस्त वस्तुओं को मैं अपने अधीन कर लूं। वस्तुतः आज की यह अलौकिक रात्रि मुझे नया क्षेत्र, नया राष्ट्र अपने अधीन कर लेने की प्रेरणा दे रही है। मेरा वश चले तो मैं अभी ही विजय अभियान पर निकल पड़ूं।"

सम्राट् अजातशत्रु विस्मित होकर अपने पुत्र की बात सुनते रहे। हर्ष एवं आशंका से वे भर उठे। उन्हें अपनी किशोरावस्था की महत्वाकांक्षाएं स्मरण हो आयीं। न जाने क्यों, वे मन ही मन कांप उठे। क्या बोलें, क्या न बोलें के धर्म-संकट में पड़े हुए थे कि प्रतिहारी ने कौमारभृत्य जीवक के आगमन की सूचना दी। सम्राट् अजातशत्रु को जीवक का आगमन वरदान जैसा लगा। वे त्वरित गति से नीचे मुखशाला की ओर चल पड़े।

इस घटना के दो दिन पश्चात् ही सिंहरथ और धनंजय कुछ सहस्र सैनिकों के साथ रात्रि में चुपचाप चम्पा की ओर चल पड़े। अंग के मंडलेश्वर के नाम सम्राट् का आदेश-पत्र सिंहरथ के पास था।

पाटलिग्राम के दुर्ग के निर्माण में थोड़ा कार्य शेष रह गया था। उसे एक मास के भीतर सुदृढ़ करवा देने का दायित्व उदायीभद्र को सौंप दिया

गया। उदायीभद्र उत्साहपूर्वक पाटलिग्राम चला गया।

सब कार्य योजनाबद्ध रीति से संपन्न होता गया। एक-एक गुल्म करके शनै:-शनै: सहस्रों सैनिक पाटलिग्राम के दुर्ग मे एकत्र होते रहे। 'रथ-मूसल' एवं 'महाशिला-कटक' जैसे भयावह घातक अस्त्र भी पाटलिग्राम के दुर्ग में पहुंचा दिये गये। सहस्रों नौकाए दुर्ग में ही तैयार करके रख ली गयीं। आदेश की प्रतीक्षा होने लगी।

सम्राट् अजातशत्रु की व्यग्रता बढ़ती रही, और उधर वैशाली के वन-महोत्सव की तिथि निकट आती गयी।

उल्काचेल प्रात: सूना पड़ा था। वैशाली के सीमांत-सैनिक रातभर मदिरा में डूबे रहने के कारण अर्ध-चेतन होकर पड़े थे। अधिकांश लिच्छवि महोत्सव मनाने के लिए वन में चले गये थे। अचानक तूर्यनिनाद की ध्वनि से सभी सैनिक चेतन हो उठे। जहां कुछ क्षण पूर्व सन्नाटा छाया हुआ था, वहां अब प्रलय का-सा वातावरण उपस्थित हो गया। ब्राह्म मुहूर्त की बेला थी। लिच्छवियों ने देखा कि शत-शत सहस्र उल्काओं की बाढ़ गंगा के उस पार से इस पार तीव्र वेग से बढ़ती हुई चली आ रही है। उल्काओं के प्रकाश मे सैनिकों के शल्य, खड्ग आदि चमचमा रहे थे।

उल्काचेल के सैनिक अधिकारी तूर्यनिनाद करते ही रह गये; किंतु, हो-हल्ले के अतिरिक्त और कोई परिणाम नही निकला। शस्त्रागार बद करके सीमांत-नायक रोहण वैशाली में आनंद ले रहे थे। देखते ही

देखते मगध के सैनिक तट पर उतर आये। किसी में प्रतिरोध करने का न तो साहस हुआ और न उत्साह। उल्काचेल के सभी लिच्छवि सैनिक बंदी बना लिये गये। उसी क्षण मगध की सेना प्रलय की गति से वैशाली की ओर बढ़ चली। पदाति तो पीछे रह गये, मात्र अश्वारोही तीर की गति से चल पड़े।

वैशाली में किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि सम्राट् अजातशत्रु अचानक आक्रमण कर देगा। वहां सब लोग निश्चित थे। वैशाली के भी अधिकांश तरुण योद्धा महोत्सव के लिए महावन में चले गये थे। अचेल कोर-भट्टक के प्रताप से नगर के बाहरी प्राचीर के सभी द्वार उन्मुक्त थे। अतएव अजातशत्रु को नगर के पहले प्राचीर को पार करने में रंचमात्र भी असुविधा नहीं हुई।

वैशाली में रणभेरी बज उठी, बजती रही; तूर्यनिनाद से दिशाएं कांप उठीं, कांपती ही रह गयीं; किंतु, जो लिच्छवि एवं अन्य योद्धा अपने घरों में उपस्थित थे, घरों में ही बैठे रहे। वर्षकार की 'भेद' एवं 'प्रदान' नीति वैशाली के प्रत्येक घर में सफल हो गयी थी। अजातशत्रु ने थोड़ी कठिनाई के बाद नगर का दूसरा प्राचीर भी पार कर लिया।

इधर वज्जि गण-संघ के सेनापति सिंह लिच्छवियों के द्वार-द्वार जाकर उनमें उत्साह उत्पन्न करने लगे। गण-संघ के राजा चेटक स्वयं नगर में घूम-घूमकर वैशाली के गौरव का आह्वान करने लगे। वैशाली के अष्ट-कुलिक[1] प्रमुख द्वारों की रक्षा के लिए सैनिक लेकर दौड़ पड़े। सब कुछ हुआ, किंतु, विद्वेष का जो विष वैशालीवासियों के रक्त में व्याप्त था, वह अवसर पाकर स्वरूप ग्रहण करने लगा।

सेनापति सिंह की प्रेरणा पाकर बहुत-से सामान्य सैनिक अपने प्राण उत्सर्ग करने को तत्पर हो गये। अंतिम प्राचीर की रक्षा में वैशाली के सैनिकों ने पूरी शक्ति लगा दी। प्राचीर के देवपथ पर चढ़कर सेनापति सिंह स्वयं युद्ध का निरीक्षण एवं निर्देशन करने लगे। प्राचीर के उस पार मागध सैनिकों की अपार संख्या देखकर सिंह सेनापति चिंतित हो उठे थे। फिर भी वे बाणों की बौछार झेलते हुए प्राचीर की रक्षा करते रहे। संध्या

१. नगराधिकारी

हो गयी। युद्ध बंद हो गया। प्राचीर कई स्थलों पर टूट-फूट गया था। सिंह सेनापति मध्य रात्रि तक प्राचीर को ठीक-ठाक करवाने में व्यस्त रहे। उनके अंग-प्रत्यंग में कई बाण चुभ गये थे। पर्याप्त रक्त प्रवाहित हो चुका था। महावन में महोत्सव मनाने के लिए गये हुए लिच्छवियों का कहीं पता नहीं था। सेनापति सिंह इस बात से अत्यधिक चिंतित हो उठे।

महावन मे पहुंचकर असंख्य लिच्छवियों ने वन को भी नगर में परिवर्तित कर दिया। छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटकर वे शिकार के लिए निकल पड़े। मध्याह्न के समय सब लोग एक स्थान पर एकत्र हुए। मांस पकने लगा। मैरेय की धारा बहने लगी। गीत-नृत्य-वादित्र की ध्वनि से वन के पेड़-पौधे मुखरित हो उठे। उल्लास अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। तभी अचानक सिंहरथ के सैनिक वहां आ पहुंचे। लिच्छवि संभलें-सभलें कि सिंहरथ के सैनिकों ने घातक प्रहार आरंभ कर दिया। जहां कुछ ही क्षण पूर्व सुंदरियों के पांव थिरक रहे थे, मधुर संगीत गूंज रहा था, वहां अब शवों के ढेर लग गये, लिच्छवि नारियों के चीत्कार से लता-द्रुम कांप उठे। वन के जीव-जंतु भय से भाग खड़े हुए। लिच्छवियों ने साहस के साथ शत्रुओं का सामना किया, किंतु व्यर्थ। हत्याकांड की कथा कहने के लिए दो-चार लिच्छवि जीवित बच रहे।

इधर वैशाली की स्थिति भी विषम हो चुकी थी। नगर के पूर्वी भाग की किसी को चिंता नहीं थी। सिंह सेनापति पश्चिमी प्राचीर के पास ही एक शिलाखंड पर विश्राम कर रहे थे। ब्राह्म मुहूर्त का समय था। सिंह आंखें बंद किये चिंता में डूबे हुए थे। तभी एक लिच्छवि अश्वारोही अपना अश्व दौड़ाता हुआ वहां आ धमका और घबराये हुए स्वर में बोला :

"पूर्वी प्राचीर के छोटे-बड़े कई द्वार किसी ने खोल दिये हैं और शत्रु-सेना भीतर घुसी आ रही है।"

पलक झपकने जितना भी विलंब नहीं हुआ, और सिंह सेनापति अश्व पर आरूढ़ हो गये। कुछ सैनिकों को लेकर वे पूर्व की ओर दौड़ चले। किंतु, वैशाली का भाग्य फूट चुका था। सहस्र वर्ष से चली आ रही गौरव-गरिमा-मंडित अजेय वैशाली एकता का सूत्र टूटते ही बिखर गयी।

'रथ-मूसल' एवं 'महाशिला-कंटक' जैसे भयावह अस्त्र के समक्ष वैशाली के विख्यात हाथी एवं प्रचंड योद्धा भी नहीं टिक सके। जिस नगर के वैभव को देखकर देवताओं को ईर्ष्या होती थी, जहां सहस्रों भव्य प्रासाद, प्रभावोत्पादक चैत्य एवं सैकड़ों मनोरम पुष्करिणियां एव उद्यान थे, वही वैशाली श्मशान बन गयी। संथागारों, उद्यानों, पथों एवं वीथियों में शवों का रक्त-रंजित निचोलक बिछ गया।

मध्याह्न बेला होते-होते वैशाली निष्प्राण हो गयी। सम्राट् अजातशत्रु की महत्वाकांक्षा पूरी हुई। राजसत्तात्मक प्रजातंत्र की जननी वैशाली मगध साम्राज्य के उदर में समाहित हो गयी। भावी भारत के राजनीतिक स्वरूप का बीजारोपण देखकर अन्य महाजनपद आतंकित हो उठे।

मगध की जय से संपूर्ण आर्यावर्त्त थर्रा उठा। मगध, काशी, अंग, वज्जि और मल्ल एक छत्र के नीचे सिमट आये। सम्राट् अजातशत्रु की अधीनता स्वीकार करने के लिए छोटे-छोटे जनपद स्वेच्छा से लालायित हो उठे। मगध की शक्ति अजेय हो गयी।

पाटलिग्राम का दुर्ग अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया। युवराज उदायीभद्र की महत्वाकांक्षा आकाश का स्पर्श करने लगी। वृद्ध महामात्य वर्षकार के निर्देशन में उदायी ने दुर्ग के पास ही पाटलिपुत्र नगर का निर्माण करवाना आरंभ कर दिया।

सम्राट् अजातशत्रु चौंक उठे। उदायीभद्र की प्रदीप्त महत्वाकांक्षा की चमक में सम्राट् अजातशत्रु का भविष्य परिलक्षित हो उठा।

○○